लतीफ़ घा[illegible]



रूप दिया जा सकता ... किन्तु नाम पात्र हो कर
का ... मात्र ... शाकाहार निषेध का
अनुपस्थिति के बावजूद विसंगतियों के साथ अर्थपूर्ण सम्पर्क करती है।

लतीफ घोंघी ने नागरिक सम्भावनात्मक सामाजिक राजनैतिक जीवन में व्याप्त विद्रूपताओं का भरपूर और निर्मम अंकन किया है। व्यंग्य लेखन में केवल कस्बाई स्तर से लेकर साहित्यिक इलाके में व्याप्त गुटबंदी तक व्यंग्यकार की निगाह गई है। उनके व्यंग्य लेखन में कथात्मक कौशल भी पाया जाता है लेकिन जहाँ कहीं व्यंग्य विषय को सीधी पकड़ है—लतीफ घोंघी ने अपनी जागरूकता का अच्छा परिचय दिया है।

लतीफ घोंघी की मौलिकता यह है कि अपने कथ्य की प्रस्तुति के लिए न उन्होंने हरिशंकर परसाई की तरह वैचारिक प्रतिबद्धता का सहारा लिया है और न शरद जोशी की तरह शैली के नए प्रयोगों का विनियोग किया है। रवीन्द्रनाथ त्यागी की तरह भाषा का अनावश्यक प्रदर्शन और ... के उदाहरण नहीं हैं। मुस्लिम परिवेश की विभिन्न विसंगतियों का उद्घाटन करने के बावजूद लतीफ घोंघी ने ... कल्पना की तरह भाषिक चमत्कार नहीं पेश किए हैं। इसलिए उनके व्यंग्यों में घटनाओं और पात्रों, परिवेशों और मुखौटों का अनावश्यक दुहराव नहीं लगता। इन व्यंग्य रचनाओं में परम्परागत रूढ़ियों और नई अवस्थाओं के खिलाफ जो संघर्ष किया गया है उसका मार्ग सम्प्रेषण हास्य और व्यंग्य की सामान्य जमीन पर खड़ा है।

हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान/डा. बालेन्दुशेखर तिवारी

रूप [illegible] किना
की आवश्य
नुपास्थान
स्तक करती
[illegible]
गजनात्मक [illegible]
निश [illegible] अक
लेकर साहित्
को विशाल [illegible]
का साहित्य
यक [illegible]
सान्दय [illegible]
[illegible]
काव्य का प
रोगह यथार्थ
भाषा का न
है [illegible]
अध्ययन अ
को नवि [illegible]
लनाफ या
नहीं प्रश्न [illegible]
पात्र पाठ
लाता [illegible]
जीनारूण अ
साग स्पष्ट
[illegible]

यत्र-तत्र

[illegible]
[illegible]

लतीफ घोंघी

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

नक्या
क्षे   अभ्य
अनुपस्थिति
सामूक करना
स
गायनीतक
निश्चन्न अंक
लक्ष्य माप्ति
का निर्वाह ग
का माहुल्य ।
पक्कड़ है —
परिचय न्य

कश्म का प
तिरि विचार
जाओ की त
। स्वान्दन
अध्ययन अे
का विविध
लक्षण याद
नहीं पता नि
पाता पाद
लगता इन
अनास्थास
साग स्था
८६

यत्र-तत्र

लतीफ घोंघी

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

ISBN 81-7056-115-4

प्रकाशक	पंचशील प्रकाशन फिल्म कॉलोनी, जयपुर
संस्करण	प्रथम 1996
मूल्य	सौ रुपये मात्र
टाइपसैटिंग	पंचशील कम्प्यूटर्स, जयपुर
मुद्रक	आराधना ऑफसेट, जयपुर

YATRA-TATRA (Satire & Humour)

By Latif Ghongi

भाई श्रीलाल शुक्ल

को

सादर

ISBN 81-7056-115-9

प्रकाशक	पंचशील प्रकाशन फिल्म कॉलोनी, जयपुर
संस्करण	प्रथम, 1996
मूल्य	सौ रुपये मात्र
टाइपसैटिंग	पंचशील कम्प्यूटर्स, जयपुर
मुद्रक	आराधना ऑफसेट, जयपुर

YATRA TATRA (Satire & Humour)

By Lalit Ghongi

भाइ श्रीलाल शुक्ल

को

सादर

ISBN 81-7056-115-9

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, जयपुर

संस्करण : प्रथम, 1996

मूल्य : सौ रुपये मात्र

टाइपसैटिंग : पंचशील कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक : आराधना ऑफसैट, जयपुर

YATRA TATRA (Satire & Humour)

By Latif Ghonghi

भाई श्रीलाल शुक्ल

को

सादर

Price
Rs. 100

ISBN 81-7056-115-9

प्रकाशक	पंचशील प्रकाशन फिल्म कॉलोनी, जयपुर
संस्करण	प्रथम 1996
मूल्य	सौ रुपये मात्र
टाइपसैटिंग	पंचशील कम्प्यूटर्स, जयपुर
मुद्रक	आराधना ऑफसेट, जयपुर

YATRA-TATRA (Satire & Humour)

By Latif Ghonghi

भाई श्रीलाल शुक्ल

को

सादर



अनुक्रम

अनुक्रम

सम्भावना का गणित

आजकल यह जानकर हार्दिक दु:ख होता कि मैं सम्भावनाहीन आदमी हूँ। आदमी इसलिए कि लेखक हूँ और लेखक चाहे भले कुछ भी न हो, आदमी तो होता है। आदमी इसलिए कि जब बीमार पड़ता हूँ तो मेरे भाग्य अस्पताल आता है। आदमी इसलिए कि मेरे गमन की जगह में खुला होता है। आदमी इसलिए कि यह आबादी बढ़ाने में अपना भरसक योगदान देता है। ये सारे गुण गुप्त हैं। आदमी होने के लिए इनसे अधिक गुणों की जरूरत भी नहीं पड़ती। आदमी यहीं।

पिछले दिनों एक कवि मित्र बीमार पड़ गये। अस्पताल में भरती भी हो गये। कवियों के साथ भी सम्भावना जुड़ी है। यह मुझे उस समय पता चला था, जब अखबारों में उनका 'समाचार' छपा—'कवि श्री सम्भावना के ' प्रकाशित हुआ था। यह बात मैं भाग ही था कि वह मेरे पढ़ने के बाद हों या कवि मित्र बीमार हुए। वे साहित्य में सक्रिय तत्व थे। अस्पताल में बैठे-बैठे ही अनेक साहित्य मित्रों को पत्र लिख दिए, कि मुख्यमंत्री से कहा कि मुफ्त इलाज के लिए पैसे दें। अपने यहाँ के कवियों में कम से कम यह सम्भावना तो बाकी है कि वे बीमार पड़ने वाले कवि को आदर की नजर से देखते हैं। पत्र जब पहुँचने लगे मुख्यमंत्री जी के पास तो सरकार ने तत्काल दिया मुख्यमंत्री ने सहायता कोष से। कवि मित्र अच्छे हो गए और लिख गए सविता के पाठ।

इस एक हजार की सम्भावना ने मुझे बहुत आकर्षित किया। लेकिन यह तो हिन्दी काव्य साहित्य और मेरा दुर्भाग्य था, कि मैं बीमार नहीं पड़ा। कुछ दोस्तों से पूछा—यार, बीमार पड़ने का कोई तरीका बताओ ... जिस कवि ने सम्भावित कविताएँ

नहीं लिखी, वह एक हजार ले गया और हम यहाँ लिख-लिखकर मर गये और कुछ भी नहीं मिला।

मित्र बोले—देशी घी और शुद्ध घी मिलाकर पियो तो तुरन्त बीमार हो जाओगे।

मैंने पूछा—कहाँ मिलेगा अच्छा?

वे बोले—अपने देश में मिलना तो मुश्किल ही है। विदेश से मँगवा लो।

मुझे निराशा हुई कि छोटी-छोटी चीजों के लिए भी हमें विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है। बीमारी के लिए भी शुद्ध माल यहाँ नहीं मिलता। अपनी आत्मनिर्भरता का दावा कितना खोखला है। अब बेचारे लेखक कैसे एक हजार रुपया प्राप्त करें।

मुख्यमंत्री ने सभी साहित्यकारों को आमन्त्रित कर रखा है—"बीमार पड़ो और हमसे सहायता कोष से रुपया ले जाओ।" जिनको पड़ना है वे बीमार पड़ रहे हैं और साहित्य सृजन भी कर रहे हैं। रुपया-लाभ की सम्भावना साहित्यकार को साहित्य से जोड़कर रखती है। मेरी तरह अनेक लेखक हैं, जो केवल इसलिए लिख रहे हैं कि कभी वे बीमार पड़ेंगे तो हजार-दो-हजार रुपया पा जाएँगे।

जब मैंने घर में बताया कि आजकल अपने प्रदेश में लेखकों की इज्जत बढ़ गई है तो घर वाले बहुत खुश हुए। श्रीमती जी ने कहा—अब तुम्हें हजार रुपया मिलेगा तब मैं पाँच फकीरों को खाना खिलाऊँगी। खुदा करे तुम्हें जल्दी रुपया मिल जाय।

लेकिन मुझे लगता है कि मेरे बीमार होने की सम्भावना नहीं है। आपको शायद याद होगा कि मेरा एक व्यंग्य संग्रह 'बीमार न होने का दुःख' प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के पीछे भी मेरी मन भावना यही थी। यह बात मैंने किताब की भूमिका में नहीं लिखी, क्योंकि यह मेरे देश के व्यंग्यकारों की इज्जत का सवाल था। लिखता तो लोग समझते कि हम लेखक हजार-दो-हजार रुपया के लिए मरे जा रहे हैं। कुछ भी हो हिन्दी साहित्य में अपना रुतबा कम नहीं होना चाहिए।

यह किस्सा उन्हीं संघर्ष के दिनों का है जब मैं बीमार होने के लिए जी-तोड़ संघर्ष कर रहा था। भजिया, आलूगुंडा, समोसा, सब खा रहा था। बाजार जाता और सड़ी हुई सब्जी लाता [illegible] [illegible] [illegible] और पूरा कि

टी॰ बी॰ का मगर कौन है? जिसे टी॰ बी॰ होती है उसके साथ कोई नहीं रहता। लेकिन दुर्भाग्य ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जिसकी किस्मत में मुफलिसी कोष का पैसा लिखा होता है उसे ही मिलता है। अब तो हालत यह थी कि साहित्यकार मित्र भी मुँह पर थूकने लगे। कहते—शर्म नहीं आती, साहित्य सेवा कर रहे हो? व्यवस्था को गाली देते हो और करते हो व्यंग्य लिखते हो? देश की सरकार को बदनाम करते हो? अब पड़े हो साले बीमार और ले रहे हो हजार-दो-हजार। कौन रोकता है तुम्हें?

देखिए इस एक हजार की सम्भावना ने मुझे साहित्य में कितना जलील किया।

एक दिन थोड़ा बुखार आया, मैं परेशान हो गया। सोचा—चलो एक बार। सीधे भागा सरकारी अस्पताल। डॉक्टर से बोला—मुझे भर्ती कर लो डॉक्टर साहब मैं मुफलिसी का सवाल हूँ।

डॉक्टर ने मुझे देखा। उन्हें पहली बार पता चला कि इस देश में सम्भावनाओं की भी इलाज होती है। उन्होंने पूछा—इलाज का सवाल क्यों?

मैंने कहा—हम सीधे मुफलिसी से जुड़े हैं।

मेरा यह कहना मेरे लिए घातक सिद्ध हो गया। मुफलिसी का आदमी समझकर उन्होंने मुझे अपनी प्राइवेट बैग में रखा एक इंजेक्शन भी मुफ्त में लगा दिया। कैप्सूल भी दे दी और कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं, मामूली हरारत है। दो घंटे में आप बिल्कुल स्वस्थ हो जाएँगे। अगली बार भी बिल्कुल नौबत नहीं आएगी।

मेरा सम्मान मुझे धिक्कारता। कहा—जा मेरे साले अब होशियारी दिखा अपनी।

कहने का मतलब यह कि अब डॉक्टरों के भरोसे की भी कोई सम्भावना नहीं रही। मेरी जगह दूसरा कोई होता तो पचास का एक नोट पकड़ देता, और भर्ती हो जाता अस्पताल में। आज भी सौ रुपया के फायदे में तो रहता।

मेरी किस्मत में हजार रुपया नहीं था। मुझे आज तक नहीं मिला।

पिछले दो सालों में प्रदेश सरकार ने एक बड़ी सम्भावना फेंक दी लेखकों के सामने। हजार-दो-हजार छोड़िए [illegible] एक मुश्त मिलेंगे [illegible] पा

आओ। बाल-बच्चे खुश रहेंगे, फिर मैंने कहा कि सरकार ने लेखकों के लिए कुछ नहीं किया।

इस सम्भावना को स्नायु में खास गुना रूप उठ गया। कई लेखक खास रहे हैं लेकिन बीमार नहीं पड़ते हैं और ना ही मर गए हैं। उनकी रोग निरोधक शक्ति नगण्य हो गई है। हर साल रास्ता देखते हैं कि इस बार उनका नाम आ जाएगा शिखर सम्मान के लिए। इसी सम्भावना में जी रहे हैं। सम्भावना ही दिन देश के साहित्य को जीवित रखता है। मेरी रोग निरोधक शक्ति तो अभी भी बहुत अच्छी है जिसका उदाहरण मैंने आपको बता दिया है। इस सम्भावना के पीछे और कोई गड़बड़ हो या न हो, साहित्य को जीवित रखने की भावना है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

मैंने फिर घरवालों को बताया कि अब लेखकों की इज्जत अधिक बढ़ गई है और लेखकों को भी पच्चीस हजार रुपया मिल सकता है। तुम लोग मुझे रोज अच्छा खाना खिलाओ क्योंकि मुझे अभी कुछ साल तक जीना पड़ेगा। घरवालों ने कहा जो रूखा-सूखा घर पर मिलता है उसे खाकर जीना है तो जियो, आगे तुम्हारी मर्जी।

सम्भावना आदमी को जीवित रखती है और जैसा कि मैंने पहले कहा। कि मैं आदमी हूँ इसलिए, आज तक जी रहा हूँ। मेरी रोग निरोधक शक्ति चाहे जैसी हो लेकिन पच्चीस हजार की सम्भावना का इसमें पूरा योगदान है, और इसी तरह तो भारतीय व्यंग्य साहित्य का कल्याण होगा।



पापी पेट से परेशान हूँ

अखबार में पत्रिका के समाचार पढ़कर बहुत दु:खी हो रहा हूँ। कमबख्त मेरा पेट है या कोई ट्रांसपोर्ट कम्पनी का गोदाम? जो खाओ, हजम करके धर देता है। हमारे यहाँ इतने नाजुकमिजाज लोग हैं कि केवल समाचार पढ़कर ही उन्हें लूज मोशन हो रहा है, और एक मैं बदकिस्मत आदमी हूँ कि मुझ पर कोई असर ही नहीं होता।

शादी का सीजन लगा हुआ है। प्रीति-भोज के निमंत्रण इतने हैं कि समझ में नहीं आता कि कहाँ जाओ और क्या खाओ। मैं एक भी प्रीतिभोज नहीं छोड़ता हूँ। सब जगह घूम-घूमकर खाता हूँ और सब हजम कर जाता हूँ। वाह रे आदमी! मानो न राक्षस है राक्षस! जिस प्रीतिभोज में खाना खाकर लोग पच्चीस-पच्चीस बोतल ग्लूकोज चढ़वा रहे हैं, वहाँ तेरे पेट में एक मरोड़ तक नहीं आती? तुझे गिद्धों की सब्जी देंगे तो उसे भी तू हजम कर जायेगा। अबे, कुछ तो शरम कर। देख, कितने लोग अस्पताल में पड़े हैं और तू है कि नकटे-जैसा बर्फी और गुलाबजामुन खाता हुआ घूम रहा है। मर जा साले चुल्लू-भर पानी में डूबकर!

कल नगरपालिका वालों का माइक घूम रहा था कि ''सड़े-गले फल और सब्जी न खाएँ। पानी उबालकर पियें। हैजे और पेचिश से बचने के लिए अस्पताल से क्लोरीन की गोलियाँ लाकर अपने घरों के पानी में मिलाएँ, सावधान रहें।'' मैं न अस्पताल गया और न ही मैंने पानी उबलवाया। वही पानी पी रहा हूँ। सस्ती सब्जी लाता हूँ और सस्ते फल खाता हूँ, कुछ नहीं होता मुझे। [illegible] अब आप ही सोचिए कि इसमें आदमी दु:खी नहीं होगा तो क्या होगा

नहीं लिखी, वह एक हजार ले गया और हम यहाँ लिख-लिख के मर गए और कुछ भी नहीं मिला।

मित्र बोले—देशी घी और शुद्ध घी मिलाकर पियो तो तुरन्त बीमार हो जाओगे।

मैंने पूछा—कहाँ मिलेगा भइया?

वे बोले— अपने देश में मिलना तो मुश्किल ही है। विदेश से मंगवा लो।

मुझे निराशा हुई कि छोटी-छोटी चीजों के लिए भी हम विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है। बीमारी के लिए भी शुद्ध माल यहाँ नहीं मिलता। सभी आत्मनिर्भरता का दावा किस मुँह से करते हैं। अब बेचारा लेखक कैसे एक हजार रुपया प्राप्त करे।

मुख्यमंत्री तो सभी साहित्यकारों को आमंत्रित कर रहे हैं—"बीमार पड़ो और हमारे सहायता कोष से रुपया भुनवा लो।" जिनको पढ़ना है, वे बीमार पड़ रहे हैं और साहित्य सृजन भी कर रहे हैं। नफा-लाभ की सम्भावना साहित्यकारों को साहित्य से जोड़कर रखता है। मेरी तरह अनेक लेखक हैं जो केवल इसलिए लिख रहे हैं कि कभी न कभी बीमार पड़ेंगे तो हजार-दो-हजार रुपया पा जाएँगे।

जब मैंने घर में बताया कि आजकल अपने प्रदेश में लेखकों की इज्जत बढ़ गई है, तो घर वाले बहुत खुश हुए। श्रीमती जी ने कहा—जब तुम्हें हजार रुपए मिलेंगे, तब मैं पाँच फकीरों को खाना खिलाऊँगी। खुदा करे तुम्हें जल्दी रुपया मिल जाए।

लेकिन मुझे लगता है कि मेरे बीमार होने की सम्भावना नहीं है। आपको शायद याद होगा कि मेरा एक व्यंग्य संग्रह 'बीमार न होने का दुःख' प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के पीछे भी मेरी मूल भावना यही थी। यह बात मैंने किताब की भूमिका में नहीं लिखी, क्योंकि यह मेरे देश के व्यंग्यकारों की इज्जत का सवाल था। लिख देता तो लोग समझते कि हम लेखक हजार-दो-हजार रुपयों के लिए मरे जा रहे हैं चाहे कुछ भी हो, हिन्दी साहित्य में अपना रुतबा कम नहीं होना चाहिए।

यह किस्सा उन्हीं संघर्ष के दिनों का है, जब मैं बीमार होने के लिए जी तोड़ संघर्ष कर रहा था। भजिया, आलूगुंडा, समोसा, सब खा रहा था। बाजार जाता और सड़ी हुई सब्जी [illegible] जठराग्नि [illegible] और पूछता कि

दो थां का मरीज बना हूं? जिसे दो की होती है उसके साथ कहां पता रहता, लेकिन दुर्भाग्य न मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जिसकी किस्मत में मुख्यमंत्री कोष का पैसा लिखा होता है उसे ही मिलता है। असल कारण यह था कि साहित्यकार मित्र भी मुंह पर थूककर गए। कहते—शर्म नहीं आती साहित्य सेवा कर रहे हो। व्यवस्था का मजा देते हो और कलम से व्यंग्य लिख रहे हो। देश की राजनीति को बदनाम करते हो? अब पता चला प्यारे बीमार और दो ना हजार-दो-हजार। कौन रोकता है तुम्हें?

दोस्तो, इस एक हजार की सम्भावना ने मुझे साहित्य में कितना जलील किया

एक दिन थोड़ा बुखार आया, मैं प्रसन्न हो गया। सोचा—चलो एक हजार। भागा-भागा सरकारी अस्पताल। डॉक्टर से बोला—मुझे भयंकर बुखार है डॉक्टर साहब मेरी इलाज की जरूरत है।

डॉक्टर ने मुझे देखा। उसके पास ही बैठा कोई कि इस देश में लेखकों को ना जाने क्या हो जाता है। उसने मुझसे इलाज का सवाल कैसे

मैंने कहा हम भी मुख्यमंत्री से जुड़े हैं।

मेरा यही कहना मेरे लिए घातक सिद्ध हो गया। मुख्यमंत्री का आदमी समझकर उन्होंने मुझे अपनी प्राइवेट रूम में रखा, एक इंजेक्शन भी अपने से लगा दिया। कम्पाउंडर को दे दी और कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं, आप ठीक हो जाएंगे। घंटे में आप बिल्कुल स्वस्थ हो जाएंगे। भाग्य ने फिर धोखा दिया, कुछ राहत नहीं आयेगी।

मेरी आत्मा ने मुझे धिक्कारा। कहा—डॉक्टर साहब और नहीं चाहिए दवा अपनी।

कहने का मतलब यह कि अब डॉक्टर के रहते भी कोई सम्भावना नहीं रही। मेरी जगह दूसरा कोई होता, तो पचास का एक नोट फेंक देता और भर्ती हो जाता अस्पताल में। साढ़े नौ सौ रुपयों के फायदे में तो रहता।

मेरी किस्मत में हजार रुपया नहीं था। मुझे आज तक नहीं मिला।

पिछले तीन महीनों से प्रदेश सरकार ने एक बड़ी सम्भावना फेंक दी लेखकों के सामने। हजार-दो हजार नहीं पचास हजार का एक पुरस्कार। शिखर सम्मान था

नहीं लिखा, वह एक हजार ले गया और हम यहाँ लिख-लिख के मर गये और कुछ भी नहीं मिला।

मित्र बोले—देशी घी और शुद्ध घी मिलाकर पियो तो तुरन्त बीमार हो जाओगे।

मैंने पूछा—कहाँ मिलेगा भइया?

वे बोले—अपने देश में मिलना तो मुश्किल ही है। विदेश से मँगवा लो।

मुझे निराशा हुई कि छोटी-छोटी चीजों के लिए भी हमें विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है। बीमारी के लिए भी शुद्ध माल यहाँ नहीं मिलता। अपनी आत्मनिर्भरता का नारा कितना खोखला है। अब बेचारा लेखक कैसे एक हजार रुपया प्राप्त करे।

मुख्यमंत्री तो सभी साहित्यकारों को आमंत्रण कर रहे हैं—"बीमार पड़ो और हमारे सहायता कोष से रुपया भुनवा लो।" जिनका पता है वे बीमार पड़ रहे हैं और साहित्य सृजन भी कर रहे हैं। अर्थ-लाभ की सम्भावना साहित्यकार को साहित्य से जोड़कर रखता है। मेरी तरह अनेक लेखक हैं जो केवल इसलिए लिख रहे हैं कि कभी वे बीमार पड़ेंगे तो हजार-दो-हजार रुपया पा जाएँगे।

जब मैंने घर में बताया कि आजकल अपने प्रदेश में लेखकों की इज्जत बढ़ गई है तो घर वाले बहुत खुश हुए। श्रीमती जी ने कहा—जब तुम्हें हजार रुपया मिलेगा, तब मैं पाँच फकीरों को खाना खिलाऊँगी। खुदा करे तुम्हें जल्दी रुपया मिल जाए।

लेकिन मुझे लगता है कि मेरे बीमार होने की सम्भावना नहीं है। आपको शायद याद होगा कि मेरा एक व्यंग्य संग्रह 'बीमार न होने का दुःख' प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के पीछे भी मेरी मूल भावना यही थी। यह बात मैंने किताब की भूमिका में नहीं लिखी, क्योंकि यह मेरे देश के व्यंग्यकारों की इज्जत का सवाल था। लिख देता तो लोग समझते कि हम लेखक हजार-दो-हजार रुपया के लिए मरे जा रहे हैं चाहे कुछ भी हो, हिन्दी साहित्य में अपना दबदबा कम नहीं होना चाहिए।

यह किस्सा उन्हीं संघर्ष के दिनों का है जब मैं बीमार होने के लिए जी तोड़ संघर्ष कर रहा था। भजिया, मालपुआ, समोसा सब खा रहा था। बाजार जाता और कभी पूरी [illegible] और पूछता कि

रा थी [illegible] कौन है [illegible] जिस दा थी हालत में उसके साथ कोई नहीं रहना लेकिन दुर्भाग्य ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जिसकी किस्मत में मुफ्लिसी काफ का पैसा लिखा होता है उसे ही मिलता है। अब तो हालत यह थी कि [illegible] मेरे मुँह पर थूकने लगे। कहते—शरम नहीं आती, साहित्य [illegible] हो गये हो? [illegible] को गाली [illegible] और [illegible] लिख [illegible] देश की राजनीति को बदनाम करने का नया पता तो मारे बाजार और [illegible] हजार-दो-हजार। कौन रोकता है तुम्हें?

इसलिए, [illegible] भी सम्मानित न मुझे साहित्य में [illegible] किया।

एक दिन [illegible] बुखार आया, मैं [illegible] गया। सात्र — [illegible] एक हजार। सीधे भागा सरकारी अस्पताल। डॉक्टर से बोला—मुझे [illegible] डॉक्टर साहब [illegible] मेरी इज्जत का सवाल है।

डॉक्टर ने मुझे देखा। उन्हें पहली बार पता चला कि इस देश में [illegible] की भी इज्जत होती है। [illegible]

मैंने कहा—हम साथ मुख्यमंत्री पर बैठे हैं।

मेरा इतना कहना मेरे लिए [illegible] सिद्ध हो गया। मुख्यमंत्री का आदमी समझकर [illegible] अपनी प्राथमिकता से [illegible] इंजेक्शन भी मुफ्त में लगा दिया। [illegible] कहा [illegible] चिन्ता की कोई बात नहीं मामूली [illegible] है। दो घंटे में आप बिल्कुल स्वस्थ हो जाएंगे। पहली कौन की बिल्कुल [illegible] नहीं [illegible]।

मेरे आत्म ने मुझे धिक्कारा। कहा— [illegible] और [illegible] दिखा [illegible]।

[illegible] का [illegible] कि अब डॉक्टर के [illegible] को भी कोई [illegible] नहीं हो। मेरी जगह दूसरा कोई होता तो पचास का एक नोट फेंक देता और भागी [illegible]। [illegible] साढ़े नौ सौ रुपयों के [illegible] में तो रहता।

मेरी किस्मत में हजार रुपए नहीं था। मुझे आज तक नहीं मिला।

पिछले तीन सालों में प्रदेश सरकार ने एक बड़ी संख्या वाला बैंक दो लड़कों के सामने। हजार-दो-हजार [illegible] पच्चीस हजार की एक-एक। [illegible]

[illegible] भी खुश [illegible] फिर भी कहना कि [illegible] ने [illegible] के लिए कुछ नहीं किया।

अब सम्भावना का रोग पच्चीस साल [illegible] हो गया। कई [illegible] लोग रहे हैं लेकिन बीमार नहीं पड़ रहे हैं [illegible] हो भर रहे हैं [illegible] की [illegible]। [illegible] हो गए हैं, [illegible] ऐसा लगता है कि इस बार उनका नाम भी अपना [illegible] सम्मान के लिए। इसी सम्भावना में जी रहे हैं। सम्भावना [illegible] देश के साहित्य को [illegible] है। [illegible] निर्णायक शक्ति [illegible] भी बहुत [illegible] है, जिसका [illegible] मैंने आपको बता दिया है। इस सम्मान [illegible] और [illegible] भावना [illegible] साहित्य का [illegible] को [illegible] है इस [illegible]

फोन फिर बजा। [illegible] बताया कि अब नाटकों का [illegible] अधिक [illegible] से [illegible] रुपया मिल सकता है। तुम लोग [illegible] अच्छा खाना खिलाना क्योंकि मुझे अभी [illegible] नाटक लाना है। घरवाली ने कहा— जो कभी-कभार [illegible] है, उसे खाकर जीना है [illegible] आगे तुम्हारी [illegible]।

सम्भावना आदमी को जीवित रखती है [illegible] कि मैं [illegible] हूँ [illegible] और [illegible] लेकिन पच्चीस [illegible] सम्भावना [illegible] है, और इस [illegible] भारतीय [illegible] को [illegible] होगा।



पापी पेट से परेशान हूँ

अखबारों में गन्दगी के समाचार पढ़कर बहुत दुःखी हो रहा हूँ। कभी कहीं नाला मर रहा है या कोई ट्रांसपोर्ट कम्पनी का गोदाम। जो जी आये, गन्दगी करके धर देता है। हमारे यहाँ इतने नाजुकमिजाज लोग हैं कि केवल समाचार पढ़कर ही उनका जी खराब हो जाता है और एक मैं ऐसा बेशर्म आदमी हूँ कि मुझ पर कोई असर ही नहीं होता।

शादी का मौसम लगा हुआ है। प्रीति-भोज के निमन्त्रण आते हैं कि समझ में नहीं आता कि कहाँ जाऊँ और क्या खाऊँ। मैं एक भी भोज नहीं छोड़ता हूँ। सब जगह घूम-घूमकर खाता हूँ और सब हजम कर जाता हूँ। इधर अखबारों में, मगर हैजे-पीलिया के [illegible] फैलने की खबर। अक्सर लोग पश्चिम-पश्चिम [illegible] [illegible] कहते हैं कि वहाँ तो पेट भर एक मरीज तक नहीं आती। मुझ निगोड़े को सब्जी [illegible] भी यहाँ स्वाद कम आयेगा। अरे, कुछ तो शर्म करो, देखो कितने लोग अस्पताल में पड़े हैं और तुम हो कि चटपटे-मसालेदार और गुलाबजामुन खाता हुआ घूम रहा है। मर जा सारे चुल्लू-भर पानी में डूबकर।

मेरे नगरपालिका वालों का माइक घूम रहा था कि "[illegible] सड़े-गले फल और [illegible] न खाएँ, पानी उबालकर पियें। हैजे और पीलिया से बचने के लिए, अस्पताल से क्लोरीन की गोलियाँ लेकर अपने घरों के पानी में मिलाएँ, सावधान रहें।" मैं न अस्पताल गया और ना ही मैंने पानी उबलवाया। नल का पानी पी रहा हूँ, सस्ती सब्जी लेता हूँ और सड़े फल खाता हूँ। कुछ भी नहीं होता मुझे। हैजा तक छू नहीं पाती।
अब आप ही सोचिए कि हमसे ज्यादा दुःखी और कौन [illegible] होगा

मेरे सभी मित्र पेचिश से निपट चुके। कुछ मित्र बीमारी में हैं। बात करते हैं और गर्व से कहते हैं, "यार, आज सुबह सुबह लूज मोशन हो गया... मैं तो पानी उबालकर ही पीता हूँ... अपनी हैल्थ का ध्यान रखना चाहिए... तुम्हारा क्या हाल है?"

इसी मौके पर मैं झूठ बोल देता हूँ कि मैं दिन में दस बार जा रहा हूँ। मित्र के सामने अपनी पेचिश को सजाता हूँ। वे कहते हैं, "यार, अजीब आदमी हो... इस बार में तो आदमी मर भी जाता है और तुम हो कि बिल्कुल स्वस्थ लग रहे हो।"

मैं कहता हूँ, "योगासन कर रहा हूँ न।"

वे पूछते हैं, "क्या लूज मोशन के लिए भी कोई आसन होता है... हमने तो 'योगा फॉर हैल्थ' में तो आज तक नहीं देखा। कहाँ से सीख लिया तुमने यह आसन?"

कुल मिलाकर इस जिरह से मेरे पास खुशी आती है और उन्हें ऐसा लग जाता है कि मुझे कुछ नहीं हुआ। मुँह पर तो वे कुछ नहीं कहते लेकिन मन-ही-मन सोचते होंगे कि मैं कितना घटिया आदमी हूँ। यदि इस सीजन में आपको एक भी लूज मोशन नहीं हुआ होगा तो आप मेरी स्थिति समझ सकते हैं। पूरे शहर में लोग केवल पेचिश की ही चर्चा कर रहे हैं। गैस्ट्रोएंट्राइटिस बनाम...उसके बारे में कोई कुछ नहीं कहता। लोग केवल इसी में लगे हुए हैं कि कौन मर गया है और कौन अस्पताल में पड़ा है।

चार लोगों के बीच बैठना मुश्किल हो गया है। जहाँ बैठो वहाँ केवल पेचिश वाले लोग ही होते हैं। अपने-अपने अनुभव बताते हैं कि उन्होंने पहले मोशन में क्या किया। वे कितनी बार इलेक्ट्रॉल ले रहे हैं, और कौन-कौनसी गोलियाँ खा रहे हैं। न भाजपा की बात और न जनता दल की बात। चारों तरफ केवल लूज मोशन ही है।

स्वास्थ्य विभाग सतर्क हो गया है। हर मरीज को पहले लूज मोशन की गोली खिलाने के बाद ही उससे पूछा जाता है कि क्या शिकायत है। एक पड़ोसी का मरीज भी अस्पताल में भर्ती हो गया है। लोग पूछते हैं, "तुम कैसे आ गए भइया?"

वह कहता है, "पर्ची बदल गई... मेरा लड़का मलेरिया लेकर चला गया और मुझे डॉक्टर ने जबरदस्ती अस्पताल में भर्ती कर दिया है।"

पापा पेट से परेशान हैं

"तुमने डॉक्टर को बताया नहीं?"

"बताया था... लेकिन वे मानते ही नहीं। मैं कहता हूँ कि साहब, मैं केवल एक बार ही जाता हूँ, लेकिन वे कहते हैं कि मेरी पर्ची में तो चार बार लिखा है। अब बताओ मैं क्या करूँ?"

"डॉक्टर से कहो कि तुम्हें अस्पताल से छुट्टी दे दें।"

"कहा था, लेकिन डॉक्टर कहते हैं कि पेचिश और हैजे का सीजन चल रहा है... कहीं कुछ हो गया तो पूरी जिम्मेदारी उन पर आ जायेगी, इसलिए वे रुककर इलाज कर रहे हैं।"

मैं सोच रहा हूँ कि अस्पताल में किसी की पर्ची बदलवाकर मैं भी अपने पर लगा कलंक धो डालूँ ताकि लोगों को पता लग जाए कि ऐसा आदमी नहीं हूँ कि मुझे कुछ भी न हो। देश में पेचिश हो और इसमें मैं भागीदार न बनूँ ऐसा हो ही नहीं सकता। इच्छाएँ हैं, महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, लेकिन इस पेट के कारण सब बेकार हो जाती हैं। सब खा रहा हूँ लेकिन कुछ नहीं होता। इसे कहते हैं दुर्भाग्य।"

कुछ लोग बैठे बातें कर रहे थे। हिसाब लगा रहे थे कि कितने लोगों की हालत गम्भीर बताई गई है। सरकार रोकथाम के लिए क्या उपाय कर रही है। अखबार में जो एक समाचार था इसलिए खुश हो गए थे कि दो लोग अस्पताल में 'जयहिन्द' हो गए थे, तीसरे की हालत गम्भीर थी। वे इसके पीछे लगे थे कि कल परसों तक और ने फोन लगाकर... ले लें। उनका अखबार छापे कि तीन लोग पेचिश से मरे, बाकी... में ... दी गई। इसलिए सबसे अधिक उत्साहित वे लोग रहे थे।

मैंने सभी को नमस्कार किया। एक ने मुझसे पूछा, "और सुनाओ क्या हाल हैं?"

मैंने कहा, "बन्दा यहीं मजिस्ट्रेट बना है। बाबाजी को तो कम-से-कम... होना चाहिए था।"

दूसरे सज्जन नाराज हो गए, बोले, "तुम अजीब आदमी हो... यहाँ लोग पेचिश से मर रहे हैं और तुम्हें बाबाजी की पड़ी है।"

इसके बाद पेचिश की कोई बात नहीं हुई। मैं किसी मौसी की बात... अब

थे लाख इसके पहले घर उपचार की बात शुरू कर दी थी। स्थिति यह थी कि मुश्किल अलग-अलग पल रहे थे। यहाँ तक कि वो सज्जन अस्पताल में जुड़े थे वे भी आज परिवार से जुड़ गए थे। कौन सजा आ गया है, कौन आ रहा है [illegible] लगे। अस्पताल से [illegible] है और [illegible] जाता है के सिवाय कुछ सोचने को [illegible] रहा था।

[illegible] आता था लोग पूछते, "और मुन्नाओ, क्या हाल है?"

[illegible] कहता, "यार सुबह से यह सोच रहा हूँ।"

[illegible] दूसरा पूछता, "कितना खर्च [illegible] हो गई?"

[illegible] बताता था और प्रसन्न होता था कि वह पीछे नहीं है। अपनी बीमारी के [illegible] को सब भी [illegible] था। [illegible] कि उनके [illegible] कितने लगे कितनी बार [illegible] है। लोगों को यह जानने में सुख हो गया था कि [illegible] कितने रुपयों की दवाई खरीदकर घर में रखी है।

एक सज्जन गर्व से बता रहे थे कि [illegible] सैकड़ों रुपयों की दवाएँ लग गईं, [illegible] पैसा पानी की तरह बहाया [illegible] दिए। वे [illegible] के अनुभव और अस्पताल के संस्मरण सुना रहे थे और [illegible] घेरकर बैठे थे।

इसी तरह ऐसे कुछ लोग भी थे जो इसलिए चिंतित थे कि अस्पताल से छूटने के बाद दो दिन से न एक बार भी नहीं गए। डॉक्टरों से कहते हैं [illegible] गोली दे दें, लेकिन डॉक्टर डर रहे हैं कि [illegible] होने पर फिर कहीं [illegible] अस्पताल में भर्ती करना न पड़ जाए। [illegible] पेट में कुछ नहीं है इसलिए [illegible] कहाँ से [illegible] डॉक्टर भी [illegible] का सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे पाते हैं।

[illegible] था। [illegible] [illegible] में इसी तरह [illegible] रहा था। [illegible] गरीबों को कुछ नहीं होता। होता भी है तो पता नहीं चलता। कुछ दिन पहले एक गरीब आदमी को सुबह चार बजे दस्त लगने शुरू हुए और वह एक घण्टे में चल बसा। किसी ने यह कोशिश नहीं की कि उसे अस्पताल ले जाया जाए। जहाँ वह पड़ा था वहाँ लोग रात-भर काम करते रहे। अस्पताल भी बिल्कुल पास ही था। लेकिन किसी को फिक्र नहीं थी उस गरीब की। मैं उस गरीब आदमी की मृत्यु पर कम से



जाता है। स्वाभिमानी आदमी था, क्या हुआ जो गरीब था। किसी को पता नहीं चला कि वह कैसे मर गया। किसी ने यह जानने की कोशिश भी नहीं की।

आज एक सप्ताह होने पर वह सर्जिकल वार्ड में भर्ती हो गए हैं। पैसा पानी की तरह बहा रहे हैं। सरकारी अस्पताल के डॉक्टर मरीजों को छोड़कर प्राइवेट नर्सिंग होम में आ रहे हैं [illegible] कोशिश से नौकरी हो रही है। [illegible] पथरी जो करवा दी, [illegible] करवा ली, [illegible] कोई कमि [illegible] न हो जाए। [illegible] पैसे लगे।

मैं सोचता हूँ कि यदि मुझे पथरी का रोग न होता क्या होता? शायद [illegible] कुछ भी नहीं हो रहा है। समाज में रहकर मुझे इस बात का दुख जरूर हो रहा है कि मुझे कुछ नहीं हुआ। लेकिन कभी-कभी सोचता हूँ तो लगता है 'फेट' वाला मेरा [illegible] है। [illegible] लगता है कि मैं [illegible] जाता हूँ।

मैं लेट जाता हूँ। मुझे नींद आ जाती है। मैं [illegible] करता हूँ कि मुझे कुछ नहीं होगा। जिस पेट में [illegible] सारी [illegible] मिलावटी चीजें [illegible] हों, उस पेट में कभी कोई [illegible] नहीं आयेगा। [illegible] मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। यह बात और है कि मैं [illegible] रहा हूँ। बीमार लोगों के [illegible] शिकार रहा हूँ। मुझे [illegible] नहीं हो रहा है कि लोगों ने [illegible] किये। छोटी-मोटी बीमारियों में हजारों रुपए डॉक्टरों को दे दिए।

मुझे पथरी हुई तो मैं आपको सूचित करूँगा।

नवीनतम [illegible] अपनी [illegible] प्रकाशन में [illegible] रखा है। सारे और किसी का प्रकाशन न था। [illegible] किसी लेखक की पाचनशक्ति [illegible] हो जाए, इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है? वैसे इच्छा तो यही होती है कि अस्पताल में भर्ती हो जाऊँ लेकिन इस पापी पेट का क्या करूँ जो साथ नहीं दे रहा है?

सरकारी अस्पताल आपका स्वागत करता है

अस्पताल वह स्थान है, जहाँ भारतीय नागरिक को जीवन और मृत्यु से संघर्ष करने का सुनहरा अवसर प्राप्त होता है। इसमें अन्य कोई लाभ हो या न हो, लेकिन आदमी की सहन शक्ति बढ़ती है। सरकार की भी कोशिश यही रहती है कि हर नागरिक को यह सुविधा उपलब्ध कराई जाए। इसे मैं सरकार की दूर-दृष्टि ही मानता हूँ कि अपने यहाँ का एक गाँव भी अस्पताल है और गाँव कि नियम है, हर अस्पताल में भी चार डॉक्टर हैं। इन की मृत्यु-दर देखकर ही उन्हें सेवा का अवसर दिया गया है। यह बात और है कि देश में ऐसे भी अस्पताल हैं जो केवल ऊपर वालों की कृपादृष्टि से ही चलते हैं। ऊपर वालों को कुछ महत्त्व न लगाना है, और वह मरीज का मरहम-पट्टी करता है।

अब सरकार ने यह निम्नतम माना है और हर नागरिक का दायित्व है कि वह एक बार अवश्य सामने आए और सरकारी डॉक्टरों को सेवा का अवसर दे। कुछ वर्षों बीमारियों भी विदेशों से आयात की जा रही हैं ताकि किसी को इस बात की शिकायत न हो कि वे बीमार नहीं हुए। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं तो आभार ही ले लिए हर रोज हुआ हूँ। जिस मेटरनिटी होम से मैंने इस पवित्र धरती पर अपने चरण रखे थे वह आज भी देश की आबादी बढ़ाने में अपना सक्रिय योगदान दे रहा है।

जितना लाभ मैंने सरकारी अस्पताल का लिया है, शायद ही किसी ने लिया हो। मुझे तो अब तक कोई सम्मानित सम्मान मिल जाना चाहिए था, लेकिन अपनी प्रदेश की तरफ देखने वालों की नजर ही नहीं रुकती। एक दिमाग से देखा जाए तो सरकार

अस्पताल से घर को कभी नहीं चल रहा है। अब तो स्थिति यह है कि डॉक्टर साहब मुझे दूर से देखकर ही समझ जाते हैं कि आज मुझे कौन-सी बीमारी है। वे बेचारे तो बहुत चाहते हैं कि मुझे तमाम बीमारियों से एक साथ छुटकारा मिल जाए, लेकिन मैं हूँ कुछ इतना अधिक बेशरम हूँ कि उन्हें यह मौका देना नहीं चाहता हूँ। जो सरकारी अस्पताल का लाभ पाने आ रहा है, तो मेरे लिए अमृत सिद्ध हो जाता है। मैं दवा पाता हूँ और बच जाता हूँ। लोग मुझे देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि मैं आज तक कैसे जिंदा हुआ हूँ। मैं उनसे कहता हूँ—सरकारी अस्पताल का इलाज करवाओगे, तो मृत्यु से लड़ने की अच्छी प्रैक्टिस हो जाएगी। बीमारियों से लड़ोगे तो सरकारी अस्पताल बन जाओगे। [illegible] आत्मविश्वास बढ़ाता है, जो तुम्हारा स्वागत है। [illegible] बीमारी से [illegible] आत्मविश्वास की कमी से [illegible] सरकारी अस्पताल में एक बार आकर देखो कि तुम्हारा रोग-निरोधक शक्ति कितनी बढ़ती है। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर के पास रहने वालों की रोग-प्रतिरोधक शक्ति पर कभी भी विश्वास नहीं होता। बीमारियों से लड़ना खुद सीखो, ताकि सरकार को भी इस बात पर गर्व हो कि वह अपने कार्यकाल में मृत्यु-दर घटा सकती है।

यह सौभाग्य अपने अस्पताल में है, इसलिए मैं जिन्दा हूँ। मुझे अपनी रोग-निरोधक शक्ति पर पूरा विश्वास है, और मैंने यह विश्वास [illegible] अलग से सरकारी अस्पतालों से ही अर्जित किया। अस्पताल का हर [illegible] मुझे पहचानता है। मुझे देखकर ही उनकी बाछें खिल जाती हैं, 'आ गया अपना [illegible] अब [illegible] दिनों की फुरसत है।'

दुर्भाग्य से मैं पिछले पन्द्रह दिनों में एक बार भी बीमार नहीं पड़ा। मुझे भी इस बात की पीड़ा थी। मेरे बिना सरकारी अस्पताल का क्या होगा? डॉक्टर किसकी सेवा करेंगे? [illegible] लिए जो सरकारी दवाइयाँ [illegible] उन्होंने भर रखी हैं, उनका क्या होगा? सरकार भी कहेगी कि क्या इसी दिन के लिए हमने तुम्हारे शहर में अस्पताल खोला था? शरम नहीं आती, मुस्टंड होकर चुप रहते हो? हम तुम्हारे लिए इतना पैसा खर्च करते हैं, डॉक्टरों को पालते और तुम हो कि बीमार ही नहीं पड़ते? क्या यही है तुम्हारा नैतिक धर्म? क्या यही है तुम्हारी सरकार के प्रति आस्था? धिक्कार है तुम्हें! बीमार होकर सरकारी अस्पताल नहीं जा सकते तो किसी कुएँ, बावड़ी में डूबकर मर जाओ।

... भाग से ... ना कर ... मुझे ना ... रहा था ... अस्पताल के द्वार ... अपने ... है ... जीवन का ... में आ गया और यह काम मेरे लिए बहुत अधिक चुनौती भरा था। अपने यहाँ पन्द्रह दिनों तक कोई अलौकिक स्वस्थ रह जाए तो यह बात गिनीज बुक में आ जानी चाहिए। और मैं डर रहा था कि कहीं गिनीज बुक वाले मेरे पीछे न पड़ जाएँ। वैसे भी मैं मोटा बनाया गया हूँ। यदि नाम कहीं इस किताब में छप गया तो सरकार कहीं यह न समझ ले कि अपने यहाँ अस्पतालों की जरूरत ही नहीं है। ऐसा हुआ तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा मेरी आत्मा मुझे धिक्कारेगी सो अलग।

मैं सड़क पर चलता और हर युवा मोटरसाइकिल वाले को देखकर निवेदन करता—अरे भाई! एक टक्कर और मार दो मुझ पर भी दया करो ... मैं पन्द्रह दिन से सरकारी अस्पताल नहीं गया हूँ ... कुछ तो रचनात्मक कार्य करने दो ... प्रधानमंत्री को इस युवा शक्ति पर इतना भरोसा है और तुम किसी को टक्कर भी नहीं मार रहे हो ... क्या हो गया है भाई तुम्हें ... हर मोटरसाइकिल वाला हॉर्न मारकर निकल जाता। यही सिलसिला फिर पन्द्रह दिनों तक चला। कोई दुर्घटना नहीं हुई। मैं रोज घर से यही सोचकर निकलता कि मुझे सड़क से लोग उठाकर सरकारी अस्पताल ले जाएँगे और डॉक्टर साहब प्रसन्न होकर कहेंगे—कहाँ थे इतने दिनों तक? तुम्हारे वियोग में इस अस्पताल का हर कोना आँसू बहा रहा है ... हमारी अँगुलियाँ मचल रही हैं ... हमारे ... फड़फड़ा रहे हैं ... भूल ही गए थे हम।

अपने देश में दयालु लोगों की कमी नहीं है। एक युवा को मुझ पर दया आ गई और उसने अपनी राजदूत चढ़ा दी मुझ पर। लोग उसे मारने दौड़े तो मैंने कहा—इसे मत मारो ... इसी के कंधों पर राष्ट्र का भविष्य है ... मैं तो इस रचनात्मक कार्य की प्रतीक्षा एक महीने से कर रहा था ... इसने मेरी आत्मा की आवाज सुनी है ... यह महान है ... ऐसे लोगों का सरकारी अस्पताल में अच्छा योगदान रहता है ... मुझे सरकारी अस्पताल ले चलो ... एक महीने से व्याकुल हूँ ... मैं देश की युवा शक्ति को नमन करता हूँ।

फिर मैंने उस युवा को धन्यवाद देने की गरज से कहा—भाई, मेरी टाँग की चिन्ता तू मत कर ... सरकारी अस्पताल हम जैसे लोगों की टाँग जोड़ने के लिए ही ... खोले हैं। तू ... देख ले कि तेरी राजदूत कहीं से टूटी तो नहीं है ...

तो मुझसे पच्चीस–पचास रुपया आप ले लें और दो–चार महीने में मुझे अस्पताल आने का सौभाग्य प्रदान करते रहें।

लोगों ने मेरी उदारता की सराहना की। बोले—ऐसे भारतीय नागरिकों पर हम गर्व है। तुम जैसे दस–बीस लोग इस शहर में हो जाएँ तो जरूर दुर्घटनाओं को एक रचनात्मक दिशा मिलेगी।

इसके बाद कुछ लोगों ने मुझे सरकारी अस्पताल में लाकर डाल दिया। पता चला कि चार में से दो डॉक्टर नसबंदी कैम्प में बाहर गए हैं। ठीक है। आबादी कम करना ज्यादा जरूरी है। अभी हड्डी नहीं भी जुड़ेगी तो देश का विकास नहीं रुक जाएगा। एक डॉक्टर जो बचा था, वह पोस्टमार्टम करने गया था। अब बचा एक तो उसके सामने मरीजों की इतनी लम्बी भीड़ थी, कि मुझे लगा इस भीड़ को निपटाने तक तो मेरी हड्डी अपने आप जुड़ जाएगी। लोगों ने उससे निवेदन किया कि केस सीरियस है और वे मुझे जल्दी देख लें।

मैं जानता हूँ कि वे बेचारे पहली बार सरकारी अस्पताल में आए थे। सब कुछ होता है लेकिन मरीज देखने में सरकारी अस्पताल में कोई जल्दबाजी नहीं होती। डॉक्टर आराम से आता है और पूरे आत्मविश्वास के साथ आता है कि मरीज जीवित होगा। मुझे लोगों ने सरकारी अस्पताल में रखी एक लकड़ी की बेंच पर लिटा दिया था। मैंने लोगों से कहा—मेरे लिए सुरेन्द्र मोहन पाठक का कोई जासूसी उपन्यास ला दो। डॉक्टर साहब अभी व्यस्त हैं, उन्हें डिस्टर्ब मत करो।

लोगों ने वैसा ही किया। असगर भाई की बुक स्टाल से वे एक उपन्यास माँगकर ले आए। मैंने कहा—अब आप लोग घर जाइए। मुझे सरकारी अस्पताल का अच्छा अनुभव है। हाँ, मेरे घर खबर कर दीजिएगा कि वे किसी बात की चिन्ता न करें, मैं सरकारी अस्पताल में हूँ।

आधे से अधिक उपन्यास पूरा कर लेने के बाद डॉक्टर साहब मेरे पास आए। मुझसे पूछा—चोट कहाँ लगी है?

मैंने दाहिने पैर की ओर इशारा किया। उन्होंने कहा—लगता है हड्डी टूट गई है। आप ऐसा कीजिए कि किसी प्राइवेट डॉक्टर के पास एक्सरे करवा लीजिए

तो इन्हें [illegible] में इस सूची [illegible] होगा। एकाएक तो हम [illegible] यहाँ के देते लेकिन जल्दी दिनों में फिल्म [illegible] होगा।

मैंने कहा— डॉक्टर साहब, मैं सरकारी अस्पतालों पर आस्था रखने वाला आदमी हूँ। आप ना जितने दिन चाहें [illegible] लिए हमें यहाँ [illegible] होगा कि गलत हुई [illegible] मुझे इस बात की बिल्कुल चिन्ता नहीं है। मैं इस बीच सरकारी अस्पताल में जाऊँगा। या फिर आप कहें तो मैं कुछ दिनों तक फिल्म का इंतजार करूँ। मुझे ऐसी कोई जल्दी नहीं है। [illegible] के भरोसे भी तो लोग जी रहे हैं इस देश में।

डॉक्टर साहब ने मेरी ओर देखा। मैं जासूसी उपन्यास पूरा करने में लगा था। मुझे विश्वास था कि रविवार आने तक मैं उपन्यास पूरा कर लूँगा। सरकारी अस्पताल का अनुभव मेरे साथ था। पैर की हड्डी जब जुड़ेगी तब जुड़ेगी। मैं सरकारी अस्पताल में हूँ यही मेरे लिए गौरव की बात था। जीवन और मृत्यु में चयन करना तो मुझे आता ही था।



हम लिफाफे हैं

अब इससे बड़ी प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है कि सम्बन्धों की पहचान लिफाफों से होने लगी है। मुझे कभी-कभी लगता है मैं स्वयं में केवल एक लिफाफा ही रह गया हूँ जिसमें दस का एक नोट और एक रुपये वाला सड़ा हुआ नोट है जो मेरी कीमत का आकलन है। हर आशीर्वाद समारोह में अपनी सामने की जेब में एक लम्बा लिफाफा लेकर जाता हूँ और वर-वधू को आशीर्वाद के साथ-साथ एक सड़ा हुआ नोट दस रुपए वाले नोट में लपेटकर दे आता हूँ। आगे तुम्हारा दाम्पत्य जीवन सुखी रहे या न रहे, मेरी जिम्मेदारी नहीं है। क्योंकि तुमने बुलाया और हम चले आए हमारे आशीर्वाद के भरोसे मत रहना। अब हम अदद यही लिफाफे हैं जिसमें बन्द सम्बन्ध व्यापार वाले हैं। अपने पिताजी से कह देना कि हमने लिफाफा दिया है और केवल मुँह मीठा ही किया है। औरों की तरह भकोस कर नहीं खाया है। क्यों?

मुंडन-समारोह से लेकर जन्म-दिन और विवाह-समारोह तक हमारे सम्बन्धों के बीच केवल यह लिफाफा ही बचा है जिसे लेकर हम गौरवान्वित हो लेते हैं। या इस तरह कहें कि हम लिफाफों में गौरवान्वित होने वाले लोग हैं, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। क्यों? आपने निमंत्रण भेजा है तो कुछ सोच-समझकर ही भेजा होगा। अब बिना सोचे-समझे निमंत्रण भेजने के दिन लद गए। गणमान्य लोगों की सूचियाँ बदल गई हैं और गणमान्य भी बदल गए हैं। आज वे आते हैं, भोजन में खाते हैं और हाथ हिलाते हुए चले जाते हैं। और लिफाफा? ऐसे दादा लोगों से लिफाफा माँगते हो? बेटा, तुम्हारे समारोह का सत्यानाश कर देंगे। कहो तो दो-चार लोगों को चुन करके भिजवाएँ तो हंगामा होगा कि लिफाफा लेना भूल जाओगे। क्यों?

निमन्त्रणों से निजात [illegible] करता हूँ कि मैं ऐसा आदमी रहा हूँ [illegible] [illegible] लिए किसी समारोह [illegible] का एक टुकड़ा खाना [illegible] लिए मिठाई खाने के [illegible] घर [illegible] जो मुझे बुलाना चाहे, [illegible] उसके निमंत्रण खाली नहीं जाएगा। क्या यह बात आप है कि इन लिफाफों के कारण लोग इस माह का बजट गड़बड़ा गया है। अब मैं रोज किल-किल होता है। लेकिन क्या [illegible] क्या? समाज में जीना है तो सम्बन्ध तो बनाकर रखना ही पड़ेगा। घर में झूठ बोलकर बच्चों को बहला लोगे लेकिन जहाँ भी जाना हो लिफाफा तो देना ही पड़ेगा। क्या यह [illegible] भी अच्छा लगता जानता है कि समारोह के बाद जब पिता-पुत्र लिफाफे खोलते हैं तो कैसी बातें करते हैं। उसका [illegible] प्रस्तुत है—

—पापा, ये भी लिफाफा वाला कौन है? देखिए जरा

—बेटा व्यापारी है। बड़ा लेखक है।

—बहुत फटीचर आदमी है पापा, इसका पाँच रुपए निकला है लिफाफे में [illegible] बहुत खाया है पापा इस आदमी ने। आप ऐसे लोगों को बुलाते क्यों हैं पापा।

—बेटा, हम धर्म और प्रवृत्ति के लोग हैं [illegible] भिखमंगों को बाँटना पड़ता है। इससे अच्छा है दो-चार रुपये लोगों के पेट में चला जाए।

—और ये साहब कौन हैं? देखिए तो ज़रा [illegible] लिफाफा इतना लम्बा और अन्दर कुछ नहीं।

—दिखाओ मुझे।

(पापा लिफाफा देखते हैं, नाम पढ़ने की कोशिश करते हैं लेकिन नाम इस तरह लिखा गया है कि समझ में नहीं आता। पापा लिफाफा उलट-पलट कर देखते हैं, खाली है। बिल्कुल खाली।)

—लोगों को इतनी भी समझ नहीं है कि किसी समारोह में खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। सम्बन्ध बनाने की बात करते हैं साले समाज में [illegible]।

(पापा गुस्से से लिफाफे के टुकड़े कर डालते हैं।)

—पापा, लोग लिफाफों पर अपना नाम साफ क्यों नहीं लिखते?

—अरे चुप! इतना बड़ा हो गया, शादी हो गई लेकिन इतना भी नहीं जानता।

—पापा, मुझे तो यह किसी बुद्धिजीवी का लिफाफा लगता है।

—भाड़ में गया बुद्धिजीवी! दूसरा लिफाफा खोल।

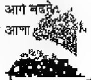
(बेटा दूसरा लिफाफा फाड़ता है। ग्यारह रुपए। दस का एक नोट और एक वाला सड़ा हुआ नोट)

—जरा पढ़ो किसका! सब मतलबी हो गए हैं! इसकी बेटी की शादी में मैं इक्कीस दे आया था! कुल ग्यारह दिया साले ने! जानता हूँ उसे। ऐसे सामाजिक सम्बन्धों को याद करता है? ऐसे निभाया जाता है सम्बन्ध?

आपको विनम्रतापूर्वक बताना चाहता हूँ कि पाँच रुपए वाला लिफाफा मेरा भी था। भूल मुझसे यह हो गई कि मैंने अपना नाम टाइपराइटर में स्पष्ट लिख दिया (आदत है। हाथ से लिखी रचना वापस हो जाती है।) इसके बाद मैंने अपनी रेटिंग भी पाँच से बढ़ा दी। मैं हो गया उससे कुछ अधिक। पाँच की जगह ग्यारह रुपए, लिफाफे की कीमत पचास पैसे अलग। यानी कि एक आशीर्वाद का मूल्य मात्र ग्यारह (लिफाफा-खर्च सहित)। मेरा ख्याल है यही रेट चल रहा है मध्यमवर्गीय समाज में। अपने कोई लखपति या करोड़पति तो हैं नहीं! ग्यारह में भी बजट खराब हो गया है क्योंकि इस बार शादियाँ अधिक हुईं। अब तो लड़का हो या लड़की, सब बराबर हैं। ग्यारह से कम में कोई नहीं छूटता। क्यों?

बहुत लोगों को पता लग गया है कि मैं ग्यारह वाला लिफाफा हूँ। कई लोग समारोह के बाद मेरा लिफाफा आते ही कहते हैं, "अरे इसे खोलो मत! यह तो ग्यारह वाला है।"

सच कहते हैं। ग्यारह रुपए में आता क्या है? आइसक्रीम खाओगे तो उसमें भी एक रुपया मिलाना पड़ेगा यदि दो लोग हुए तो। किसी बड़े होटल में बैठ जाएँ दो लोग तो बीस रुपए से कम का बिल नहीं आएगा। इस तेज गति से हम आगे बढ़ते रहे तो वह दिन भी दूर नहीं जब भिखारी भी आपसे ग्यारह से कम की आशा रखेगा। क्यों?



—जिंदगी-भर यही तो किया है तुमने... अपने बच्चों की मिट्टी-पलीद हो, समझते हो।

—जरा लिफाफा लाना एक... और सुनो...।

—क्या?

—मुझे जरा पचास रुपए दे देना... तुम लोग चलो, मैं जरा देर से आऊँगा।

और का हाल यह है कि मैंने लिफाफे पर 'हार्दिक शुभकामनाओं सहित' टाइप किया, फिर एक कोने में अपना नाम टाइप करने के बाद सोचने लगा कि एक नोट मिल जाता तो अच्छा लगता। सौ का नया नोट देना अच्छा नहीं लगता। जाने मैं अपने सामाजिक संबंधों का कितना ... हूँ। अब सोच रहा था कि कौन यहाँ के संबंध को ... लिफाफा खोलकर रख लेगा श्रीमान ... क्योंकि यह ... है, ... गया।

तभी छोटी मुन्नी आ गई। उसकी आँखों में एक कौतूहल था। वह मुझे देखती रही। मैंने लिफाफा जेब में डाल लिया। उसे प्यार करते हुए कहा, "जाओ मत खोलो... इसे दिल्ली जाएगा, तब तुम्हारे लिए बढ़िया फ्रॉक ला दूँगा।"



मैं बड़ी विनम्रता से निवेदन करता हूँ कि मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ। बिना लिफाफा दिए किसी समारोह में मिठाई का एक टुकड़ा खाना भी पाप बिना मिठाई खाने के बराबर है। जो मुझे बुलाना चाहें, कृपया सोचकर बुलाएँ। उनका निमंत्रण खाली नहीं जाएगा। क्या यह बात आप नहीं जानते कि इन लिफाफों के कारण मेरा इस साल का बजट गड़बड़ा गया है। और ये रोज किल-किल होती है। लेकिन क्या करूँ। सभ्य समाज में रहना है तो सम्बन्ध तो बनाकर रखना ही पड़ेगा। घर में झूठ बोलकर बच्चों को बहका लेंगे। लेकिन जहाँ चार लोग हों, लिफाफा तो देना ही पड़ेगा। क्या? मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि समारोह के बाद जब पिता पुत्र लिफाफे खोलते हैं तो कैसी बात करते हैं। उसकी प्रति संलग्न है—

—पापा, ये भूरे लिफाफे वाला कौन है? देखिए जरा

—बेटा कलाकार है। बड़ा लेखक है।

—बहुत फटीचर आदमी है पापा। देखो पाँच रुपया निकला है लिफाफे में। मैं समझ रहा था... बहुत खाया है पापा इस आदमी ने, आप ऐसे लोगों को बुलाते क्यों हो पापा?

—बेटा, हम धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। बेचारों को भिखमंगों को बाँटना पड़ता है, इससे अच्छा है दो-चार ऐसे लोगों के पेट में चला जाए।

—और ये साहब कौन हैं? देखिए तो सही। लिफाफा इतना लम्बा और अन्दर कुछ नहीं।

—दिखा तो मुझे।

(पापा लिफाफा देखते हैं, नाम पढ़ने की कोशिश करते हैं लेकिन नाम इस तरह लिखा गया है कि समझ में नहीं आता। पापा लिफाफा उलट-पलट कर देखते हैं। खाली है। बिल्कुल खाली।)

—लोगों को इतनी भी समझ नहीं है कि किसी समारोह में खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। सम्बन्ध बनाने की बात करते हैं साले समाज में... ऊँह।

(पापा गुस्से में लिफाफे के टुकड़े कर डालते हैं।)

—पापा, लोग लिफाफों पर अपना नाम साफ क्यों नहीं लिखते?

—अबे चुप! इतना बड़ा हो गया, शादी हो गई लेकिन इतना भी नहीं जानता।

—पापा, मुझे तो यह किसी बुद्धिजीवी का लिफाफा लगता है।

—भाड़ में गया बुद्धिजीवी... दूसरा लिफाफा खोल।

(बेटा दूसरा लिफाफा फाड़ता है। ग्यारह रुपए। दस का एक नोट और एक वाला मुड़ा हुआ नोट।)

—जरा मुझे दिखा... सब मक्खीचूस हो गए हैं... उसकी बेटी की शादी में मैं इक्कीस दे आया था... अच्छा लगा ऐसा मारूँ न... जानता हूँ उसे। बड़ा सामाजिक व्यवस्था की बात करता है... ऐसे निभाया जाता है सम्बन्ध?

आपसे विनम्रतापूर्वक बताना चाहता हूँ कि पाँच रुपए वाला लिफाफा मेरा था। भूल मुझसे यह हो गई कि मैंने अपना नाम टाइपराइटर से साफ लिख दिया। आदत है। हाथ से लिखी रचना वापस आ जाती है। इसके बाद मैंने अपनी हैसियत का प्रतिशत बढ़ा दी। सौ क्या, उससे कुछ अधिक। पाँच की जगह ग्यारह रुपए। लिफाफे की कीमत पचास पैसे अलग। जान लिया कि आशीर्वाद का मूल्य मात्र ग्यारह, लिफाफा-स्वर्ण मण्डित। मेरा ख्याल है यह रेट चल रहा है मध्यमवर्गीय समाज में। अगर कोई लखपति या करोड़पति तो है नहीं... ग्यारह में ही बजट खराब हो गया है क्योंकि इस बार शादियाँ अधिक हुईं। अब तो लड़का हो या लड़की, सब बराबर हैं। पर फिर भी कम में कोई नहीं छूटता। क्या?

बहुत लोगों को पता लग गया है कि मैं ग्यारह वाला लिफाफा हूँ। कई लोग समारोह के बाद मेरा लिफाफा आते ही कहते हैं, "अरे मत खोलो इसे... यह तो ग्यारह वाला है।"

सच कहते हैं। ग्यारह रुपए में आता क्या है? आइसक्रीम खाओगे तो उसमें भी एक रुपया मिलाना पड़ेगा यदि दो लोग हुए तो। किसी बड़े होटल में ब्रेकफास्ट लोग तो बीस रुपए से कम का बिल नहीं आएगा। इस तेज गति से हम आगे बढ़ते रहे तो वह दिन भी दूर नहीं जब भिखारी भी आपसे ग्यारह से कम की आशा नहीं रखेगा। क्या?

सोचता हूँ पिताजी का नाराज होना स्वाभाविक है। सबका खर्चा-पानी का खर्च काटकर यदि हजार-पाँच सौ न बचे तो ऐसी नौकरी से क्या फायदा? कम-से कम जितना खा रहे हो उतना तो देते जाओ घर बाप। मालूम है बाजार में दो रुपए प्लेट से कम कुछ नहीं मिलता। लेकिन समझदार आदमी रहे कहाँ? पहले जमाने में लोग अपनी हैसियत में देते थे और अपनी हैसियत में ही खाते थे। खाने में तो हमने बढ़ा दी, लेकिन इन में क्या तुक होते हैं तुम्हारे ... पार्टी। अगले का भी तो ख्याल रखो। केवल खिलाने के लिए आमंत्रित नहीं किया है उसने। अपनी बूढ़ी बीमारी का ध्यान रखो ... तुम्हारा क्या है, खाओगे और निकल लोगे। लेकिन समाज में सम्बन्ध खाने और निकालने से नहीं, लिफाफे से बनते हैं। क्यों?

अब मैं गम्भीरता से विचार कर रहा हूँ कि ग्यारह की जगह में इक्कीस का हो जाऊँ। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जब से नगर में बहुचर्चित हो गया तो मुझे शर्म आने लगी। मन कहने लगा—अब इक्कीस किसी आदमी से ... कोई अच्छा-सा कुआँ ... बड़ा लेखक बना फिरता है ... गाँठ में पैसे नहीं छूटते तो बड़े लेखक होने का मोह क्या पालता है? कोई जिन्दा फनकार आएगा तो उसे इक्कीस रुपए दे देगा, लेकिन समाज में सम्बन्ध बनाने के लिए इक्कीस देने में जान पर आती है? दैनिक अखबार वालों ने पारिश्रमिक बढ़ा दिया, लेकिन तू अभी तक ग्यारह का आँकड़ा ही याद रखा है? अब कुछ तो शरम कर! क्यों लेखकों को ... कर रहा है?

आज शाम मुझे रिसेप्शन का आमंत्रण है। घर पर छोटी मुन्नी फ्रॉक लाने की जिद कर रही है। जब से एक पत्रिका का पचास रुपए का मनीआर्डर आया है ताने शुरू हो गए हैं। नमूना की पंक्ति समान है—

—बस दोस्तों में बड़ा दाम ... कभी घर की परवाह की हो तब तो ... मुन्नी पास हो गई ... तुमने कहा था कि पास होने पर बढ़िया फ्रॉक दोगे ... लेकिन तुमने तो केवल बच्चे पैदा करना है ... यह नहीं कि बच्चों का शौक भी पूरा करें ... जाओ उसे और खरीद दो अच्छी-सी फ्रॉक।

—लेकिन साठ-सत्तर में कम में अच्छी फ्रॉक कहाँ आती है ... आने दो कोई तगड़ा मनीआर्डर ... फिर ला देंगे।

ग्राम लिफाफे हैं

—ज़िन्दगी-भर तमाशा ही किया है तुमने ... अपने बच्चों को मिट्टी-पत्थर ही समझते हो।

—मेरा लिफाफा लाना एक ... और सुनो ... ।

—क्या?

मुझे ... पच्चीस रुपए दे देना ... तुम लोग खा लेना ... मैं आज देर से आऊँगा।

आज का हाल यह है कि मैंने लिफाफे पर 'हार्दिक शुभकामनाओं सहित' टाइप किया। फिर एक कोने में अपना नाम टाइप करने के बाद सोचने लगा कि एक कार्ड मिल जाता तो अच्छा होता। ऐसे का नगद भेंट देना अच्छा नहीं लगता। आप में अपने सामाजिक सम्बन्धों को ऊपर उठा रहा हूँ। सब मन करता कि अपने यहाँ के देखने लगें ... लिफाफा खोलकर देख लेना श्रीमान ... क्या 'पूरे इक्कीस' इक्कीस! क्या?

तभी छोटी मुन्नी आ गई। उसकी आँखों में एक फ्रॉक तैर रहा था। वह मुझे देखती रही। मैंने लिफाफा जेब में डाल लिया। उसे प्यार करते हुए कहा, "जाओ बेटे खेलो ... हम दिल्ली जाएँगे, तब तुम्हारे लिए बढ़िया फ्रॉक ला देंगे।"



साहब के जूते

जिस दिन से [illegible] साहब के कीमती जूते चोरी हुए [illegible] दिन कुछ फौजदारी अदालत के सभी बाबू [illegible] हो गए। सब बड़े बाबू कचहरी [illegible] जाते थे, लेकिन आज सब [illegible] आ गए। जब किसी की श्रद्धांजलि दी जाती है [illegible] जाता है। सभी जानते हैं कि इसके बाद छुट्टी हो जाती है। शायद उन्होंने सोचा हो कि न्याय विभाग के [illegible] हैं उनके लिए श्रद्धा-सुमन तो अर्पित करने ही होंगे।

अखबार में समाचार छपा था कि एक जज साहब के जूते [illegible]। क्या [illegible], यह समझ में नहीं आता। साहब ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाई कि उनके जूते चोरी हो गए। पुलिस वालों ने रिपोर्ट [illegible] मैं समझता हूँ कि पुलिस विभाग को [illegible] आत्मनिर्भर होना चाहिए। देश में रोज कितने जूते चोरी होते हैं, लेकिन मैंने आज तक ऐसा कोई समाचार नहीं पढ़ा कि पुलिस वालों ने कोई जूता-चोर पकड़ा हो। लेकिन इस बार पकड़ना पड़ेगा। साहब की इज्जत का सवाल है [illegible] लोग कहेंगे कि पुलिस वाले जूते के लायक भी नहीं रहे।

[illegible] मुझसे बोले "[illegible] वकील साहब [illegible]

इसके बाद [illegible] यह कहना चाहते थे कि देश कहाँ जा रहा है और चरित्र का स्तर कितना गिर गया है लेकिन तभी उन्हें याद आया कि बीड़ी पीनी है। उन्होंने जेब से बीड़ी का बण्डल निकाला और पैन्ट की जेब में माचिस तलाशने लगे। माचिस नहीं मिली। वे छटपटाने लगे।

मैंने पूछा, "क्या हो गया बन्नी बाबू?" वह बोले, "साले बच्चे बदमाश हैं... गाल में माचिस की तीली रगड़ देते।"

मैंने मज़ाक से पूछा, "क्या इरादा है बन्नी बाबू, मुफ्त-मुफ्त कहाँ झाड़ा मारने का विचार है?"

बन्नी बाबू जरा झेंप गए। झाड़ा मारने का मतलब वे समझ गए थे। पिछले कई महीनों से अदालतों में थे। कितने ही लोगों के खिलाफ नॉन-बेलेबल वारंट लगाए थे। जिस तरह गली बाबू होते हैं, लोग उन्हें बन्नी बाबू ही कहते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि कहाँ मारी जाती है। वह कुछ सोचकर बोले, "वो बात नहीं है वकील साहब। आपने ज्ञान का पेपर पता।"

मैंने कहा, "अच्छा? क्या फिर आज किसी साहब का जूता खो गया?"

बन्नी बाबू ने, मानो मन में उठते हुए आवेश से मुक्ति माँगते हुए और सभी मुस्कराकर पीक थूकते हुए कहा, "वो बात नहीं है वकील साहब, अपने साहब के जूते चोरी हो गए।"

मैंने पूछा, "कौन साहब? बड़े साहब या छोटे साहब?"

बन्नी बाबू बोले, "नये आये कोई मजिस्ट्रेट साहब टेन में जा रहे थे कि एक चोर ने उनके जूते चुरा लिए। अब आप ही बताओ क्या बचा? जब साहबों के जूते भी नहीं बच रहे हैं तो बाबूओं का क्या होगा?"

मैंने बन्नी बाबू की बात का मज़ा लेते हुए पूछा, "क्यों हो बन्नी बाबू, अब तो बताओ कैसे चोरी हुए होंगे जूते?"

बन्नी बाबू बोले, "वही तो तब से मैं भी सोच रहा हूँ। मैं तो जब भी ट्रेन में चलता हूँ, अपने जूते सिरहाने रखकर ही सोता हूँ। क्या भरोसा, ट्रेन में कई तरह के लोग सफर करते हैं। हो सकता है साहब ने सोते समय जूते बर्थ के नीचे ही रख दिए हों।"

मैंने कहा, "अब लापरवाही के दिन नहीं हैं बन्नी बाबू। अपने सामान की परवाह नहीं करोगे तो यही होगा।"

बन्नी बाबू की बीड़ी शायद तब तक जल गई थी। उन्होंने बीड़ी को ओर देखा।

शायद कहना चाहते थे कि एकाध कदम की गुंजाइश हो तो आगे सरें। नन्दी बाबू किसी भी वस्तु के पूर्ण उपयोग में विश्वास रखते हैं। आखिर नमक निचोड़ दो। जब तक थोड़ा भी बुआ निकलता जाय तब तक, उसे मत छोड़ो।

नन्दी बाबू बोले, ''ठीक कहते हो वकील साहब, मैं तो अपना चप्पल अदालत में भी नहीं उतारता ... ऐसा मौका कोई मार होगा।''

मैंने कहा, ''आपका चप्पल और आगे का भाग नन्दी बाबू ... बड़ा याराना है। मुझे मालूम है कि आप गल-फाउण्ट जानते हो। अदालत के नन्दी बाबू हो। कौन मारेगा?''

अपनी तारीफ सुनकर वे मुस्कुराए, फिर अपने पैर की चप्पलों की ओर देखकर बोले, ''ठीक कहते हो वकील साहब, नन्दी बाबू की चप्पल किसी का इन्तजार नहीं करेगी, आर-पार निकल जाएगी।''

इसके बाद नन्दी बाबू फिर हँसने लगे।

मैंने आदमी के जूतों का छोर पकड़ते हुए कहा, 'क्यों जी नन्दी बाबू यह तो बताइए कि क्या पुलिस वाले जूता-मार को पकड़ भी लेंगे?''

नन्दी बाबू फिर से आ गए। बोले, पकड़ना तो पड़ेगा। कोई मामूली आदमी का जूता थोड़े है। न्यायिक पदाधिकारी का सवाल है वकील साहब। पुलिस वाले कहीं से भी अभियुक्त पकड़ लायेंगे और 379 का चालान भी पेश करेंगे। मुन्सिफ से कड़ी कार्यवाही और जुर्माना भी दिला देंगे। कोई मजाक थोड़े है ... नहीं किसी जज साहब का जूता ले जाना।''

शायद इसके बाद नन्दी बाबू कहना चाहते थे कि जब पुलिस ही सक्रिय नहीं होगी तो देश में कानून और व्यवस्था कैसे रहेगी? पिछले दिनों एक न्यायाधीश ने सजा सुनाए जाने पर जूता उतार लिया था। पुलिस वालों ने तत्काल उस पर मुकदमा कायम कर दिया। कुछ लोगों ने विधान सभा में जूता चलाकर रिकार्ड कायम किया था। अब तो जूते चलना आम बात हो गई है। कोई भी किसी को जूता मार रहा है। मारना ही कहाँ? कौन अब आपको पकड़कर सलामत छोड़ देगा, कहा नहीं जा सकता।

मैंने कहा, "क्या हो बन्नी बाबू, आप भी इतने सालों से फौजदारी मामले देख रहे हो, मुझे यह समझ में नहीं आता कि साहब के जूतों की शिनाख्त कैसे होगी? अभियोजन यह कैसे सिद्ध करेगा कि जब्तशुदा जूते वही हैं जो साहब के थे?"

बन्नी बाबू फिर जोश में आ गए। बोले, "अरे इस बात में क्या धरा है वकील साहब! आप तो कई मामलों में बहस कर चुके हो। सोचो, हो सकता है कि पुलिस वाले एक आई.ओ. से शिनाख्त कराएं ही नहीं, परेड में जूता निकलवाएंगे और उसकी अभियुक्त से जब्ती बताकर चालान पेश करेंगे तत्काल।"

"लेकिन जूतों में कोई पहचान तो होना चाहिए न? सब जूते तो एक जैसे ही दिखते हैं। हो सकता है कि प्रशासन के जूतों पर कोई स्पेशल मोनोग्राम होता है?"

बन्नी बाबू मुस्कुराकर बोले, "न्याय विभाग का जादू है वकील साहब, [illegible] मामलों में कितनी देर लगती है। अच्छा छोड़ो इसे [illegible] चाय पिलवाओ।"

मैं और बन्नी बाबू कचहरी के पास वाले होटल में आ गए। मैंने बन्नी बाबू से नाश्ता कराने का आग्रह किया जिसे बन्नी बाबू ने तत्काल स्वीकार कर लिया। फिर चाय के बाद मैंने बन्नी बाबू के लिए पनामा सिगरेट मँगवाई। मैं जानता था कि खास मौकों पर वे तर्जनी और मध्यमा उँगलियों के बीच मुट्ठी में सिगरेट दबाकर प्रेम से खींचते हैं और धुआँ बनाकर राख झाड़ते हैं।

बन्नी बाबू फिर जोश में आ गए। बोले, "सच कहता हूँ वकील साहब, यार मुझे मिल जाए तो उसके [illegible] जूते लगाऊँगा और पूछूँगा—क्यों बे, तुझे पूरे हिन्दुस्तान में और कोई नहीं मिला? हमारे साहब के जूते चुराता है? [illegible] महीने के [illegible]।"

बन्नी बाबू ने चुटकी बजाकर सिगरेट की राख झाड़ी और बोले, "देखना वकील साहब, पुलिस वाले जी जान से भिड़ जाएँगे तफ्तीश में। आप भी पढ़ लेना अखबार में कौन जूता-चोर है।"

पुलिस वालों की कार्यक्षमता का विवरण बन्नी बाबू के मुँह से सुनकर मैंने कहा, "आप कहते हो तो मान लेता हूँ लेकिन पिछले दिनों अपने यहाँ के एक [illegible]

का चोरी हुए थी उसमें तो पुलिस वालों ने आज तक किसी चोर को गिरफ्तार नहीं किया।''

बन्दी बाबू बोले, ''यह बात और है वकील साहब। चुप-चाप भी रहते तो रहते हैं, लेकिन पुलिस वालों को भी देखना पड़ता है कि सामने आया कौन है। उस चोरी को आप मामूली चोरी मत समझिए वकील साहब। इसमें बड़ी-बड़ी हस्तियों का हाथ है। अब आप ही सोचिए कि जब मंदिर की चीज़ भगवान की सुरक्षा पुलिस नहीं कर सकती तो दूसरे की क्या करेगी? लोगों का विश्वास पुलिस से उठ जाएगा और चारों तरफ चोरी-डकैती शुरू हो जाएगी। [illegible] कौन [illegible] विभाग में?''

मैंने फिर मज़ाक के लहजे से पूछा, ''क्या हो बन्दी बाबू, मैं तो बताता कि मेरा नया जूता कोई चुरा ले गया और मैंने पुलिस में रिपोर्ट की तो क्या पुलिस वाले मेरे चोर को पकड़कर चालान पेश करते?''

बन्दी बाबू बोले, ''क्यों मज़ाक करते हो वकील साहब? आपका क्या जाता है? जिस पुलिस [illegible] का चालान नहीं किया होगा। सस्ता तो हम लोगों का है [illegible] नया जूता खरीदने के पहले पचास बार सोचना पड़ता है।''

लंच टाइम का समय हो गया था। अदालत में चहल-पहल शुरू हो गई थी। बन्दी बाबू कागज़ समेटकर आगे बढ़ गए। [illegible] की चिन्ता फिर उनके चेहरे पर झलकने लगी थी।

□

शिकायत-वीर की कथा

कभी-कभी मुझे इस बात का गहरा अफसोस होता है कि मैंने अपना पूरा जीवन व्यर्थ में गँवा दिया, "मानस तूने जिनगी अकारथ गँवायो।" यों कहूँ कि जीवन अकारथ में। न कभी किसी की शिकायत की और न कभी किसी को बुरा कहा। आँखों के सामने लोग बेईमानी कर रहे हैं, अखबार में घूस प्रकाशन छप रहे हैं, दफ्तरों में मार-काट चल रही है, दंगे हो रहे हैं, लोग अपने स्वार्थ के लिए धर्म को हथियार बनाकर जन-संहार को अंजाम दे रहे हैं, चारों तरफ अपना कुल्हाड़ा चलाते हुए अराजकता का माहौल बना रहता है लेकिन मैंने कभी किसी से शिकायत नहीं की। अब ऐसा आदमी भी किस काम का जिसने किसी की शिकायत ही न की हो? ऐसा आदमी किसी काम का नहीं होता। तू आदमी नहीं मुर्दा है। तो हाड़-मांस और लाश समझने के सिवाय क्या किया तूने इस जीवन में?

वैसे इस मामले में मुझे अच्छे लोगों का सानिध्य मिला। लेकिन उन आदमियों का कुछ सीखा हो न हो उसके बारे में कुछ कहना बेकार है। मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ जिन्होंने अपना पूरा जीवन शिकायत करने में ही बिता दिया। यदि शिकायत करने में किसी पुरस्कार की घोषणा हुई होती तो उन्हें पुरस्कार मिलेगा और 'शिकायत-वीर' की उपाधि से उन्हें जरूर सम्मानित किया जाएगा, जब तक वे एक दो शिकायतें चिट्ठियों में नहीं भेज देते, उन्हें लगता है कि उनका जीवन व्यर्थ है। बिना पानी की मछली की तरह छटपटाते रहते हैं। कुछ दिन पहले की बात है कि मछलियों में बीमारी आ गई। मछली बाजार में मछलियों के भाव गिर गए और कई लोग गेहूँ, चावल, मुर्ग और पपीता खा-खाकर दिन बिता गए। जिन लोगों में बीमार मछलियाँ खरीदने की ताकत थी वे खरीदते रहे फिर उनका दाना-पानी इस धरती पर जितना था वे खा गए। मेरा दोस्त कम्बो

सेठ की दुकान में काम करता था। इस सेठ से मेरे सम्बन्ध अच्छे थे। मुनीम सेठ की मुझ पर विशेष कृपा थी। गोदाम में दाल, चावल, गेहूँ सब मिल जाता था। मेरी किस्मत में शायद उनसे दुकान का दाना-पानी बाकी था, इसलिए मैं बच गया।

उन्होंने कुछ दिनों तक सोचा कि इसकी शिकायत कैसे करें? अन्त में दो-चार मसाला-ठेकेदारों के खिलाफ एक शिकायत प्रधानमंत्री को लिख दी कि ठेकेदारों ने अपने लाभ के लिए मसालों में जहर मिला दिया। कई लोग बीमार पड़ गए। इस तरह जन-हानि हुई। मसाला-ठेकेदारों के विरुद्ध तत्काल कार्यवाही कर प्रजातन्त्र की रक्षा की जाए।

उनकी आदत थी कि वे हर शिकायत के बाद यह जरूर लिखते थे कि शिकायत की जाँच कर 'प्रजातन्त्र की रक्षा की जाए।' प्रजातन्त्र की रक्षा की जितनी चिन्ता उन्हें थी शायद और किसी को नहीं होगी। उन दिनों प्रधानमंत्री साम्प्रदायिक दंगों और आतंकवादी ताकतों से परेशान थे। फिर भी उन्होंने प्रजातन्त्र की रक्षा को ध्यान में रखकर शिकायत प्रदेश के मुख्यमंत्री को भिजवा दी। मुख्यमंत्री ने उसे स्वास्थ्य-विभाग को भेज दिया और स्वास्थ्य-विभाग ने उसे जिले के सिविल सर्जन को भेज दिया। जब सिविल सर्जन की कुछ समझ में नहीं आया तो उसने इसे पुलिस-विभाग को भेज दिया। पुलिस वालों की तत्काल समझ में आ गया कि ठेकेदारों से पैसा वसूल करना है। सो, पुलिस वालों ने ठेकेदारों से प्रेमपूर्वक सम्बन्ध बनाते हुए अपना काम किया और प्रजातन्त्र की रक्षा में अपना योगदान दिया।

कहने का मतलब यह है कि शिकायतें न हों तो पूरा प्रशासन, पूरी व्यवस्था बेकार हो जाए। न मंत्रियों के पास कोई काम रहे और न अधिकारियों के पास कुछ काम हो। इसलिए उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है कि वे अपनी शिकायतों के कारण प्रशासन को चुस्त और व्यवस्था को फुर्तीला बनाए हुए हैं। दूसरे चरण में उन्होंने एक साहब की शिकायत करनी थी। शिकायत करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। साहब अच्छे थे, लोगों को उनसे कोई शिकायत नहीं थी, लेकिन अपने शिकायत-वीर को कौन समझाए, वे दो-तीन दिनों तक साहब के ऑफिस का चक्कर लगाते रहे। यदि उन्होंने इस साहब की शिकायत नहीं की तो उनका जीवन व्यर्थ हो जाएगा। काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने प्रधानमंत्री को शिकायत लिख दी कि साहब की नजरें देश की बहू-बेटियों पर लगी रहती हैं।

अब आप ही सोचिए, भला यह भी कोई शिकायत हुई। देश की बहू-बेटियों पर नज़र रखने से तो तुम्हारे बाप का क्या जाता है? तुम्हारी बहू-बेटी तो नहीं है ना? तो फिर काहे की शिकायत? रोज़ सैकड़ों और हज़ारों की तादाद में बहुएँ जल रही हैं, बेटियाँ मारी जा रही हैं, उसकी चिन्ता नहीं तुम्हें? अब यदि साहब की नज़र फिसल कर कहीं फिसल हो गई, तो इसमें प्रधानमंत्री क्या करेंगे जी। प्रजातंत्र का क्या संकट पैदा हो जाएगा? लेकिन उन्हें कौन समझाए, नाम दो शिकायत। कल के दिन कहोगे कि साहब दारू पीता है। मैं कहता हूँ कि कौन दारू नहीं पीता? अरे मैं प्रशासन का क्या खाक पंछी हो जाएगा? दारू से सरकार को फायदा, आबकारी वालों से करोड़ों रुपये आते हैं। आपकी दारू देश में विकास के काम करती है, पुल बनाती है, अस्पताल बनवाती है। और तुम कहते हो साहब दारू पीता है। साहब तो दारू पीकर प्रशासन चला रहा है। अब यदि उनकी आदतों की शिकायत प्रधानमंत्री से करोगे तो प्रधानमंत्री क्या कर लेंगे?

शाम को उनसे मुलाकात हुई। वे प्रसन्न थे। मैं शिकायत के बारे में उत्सुक हो जाना और उन्हें लगा जैसे उन्होंने प्रजातंत्र में अपनी भागीदारी निभा दी। मैं समझ गया कि उन्होंने इस बार साहब का निपटा दिया है। मैंने नमस्कार किया तो उन्होंने दोनों हाथ जोड़ दिए। बिल्कुल विनम्र हो गए। इस मुद्रा में वे इतने पोंगे लग रहे थे कि कोई भी यह नहीं कह सकता कि इस आदमी को किसी से भी शिकायत होगी।

मैंने कहा, "बड़े प्रसन्न लग रहे हो।"

वह बोले, "हाँ, आज का काम निपट गया। मेरी आदत है कि इसके बाद मैं विश्राम करता हूँ। कल फिर कल देखेंगे।"

मैं जानता हूँ कि वे कल क्या देखेंगे। लोग उनसे डरते हैं। साहब कुर्सी पर बिठाते हैं। सभी को मालूम है कि यह आदमी सीधे प्रधानमंत्री वाला है। उससे कोई बात नहीं करता। जाने किसके बारे में क्या शिकायत कर दे, इसलिए चाय पिलाओ और खिसका दो आगे। प्रजातंत्र की रक्षा के लिए यह किस आदमी को नज़र देगा कहा नहीं जा सकता।

थोड़ी देर बाद वह बोले, "तुम्हें किसी से शिकायत हो तो बताना।"

मैंने कहा, "मुझे किसी से शिकायत नहीं है। मैं इस माहौल में जान कर अंधा ही गया हूँ, जो चल रहा है ठीक है"

क्या ... किसी टेन ... कर मरा ... तुम्हारा एक वोट से प्रजातंत्र पर कोई आफत जाने

वे लगभग नाराज हो गए थे। बोले, "आँख बन्द करके जीने से तो मर जाना बेहतर है। क्या तुम्हें ऐसा कुछ भी नहीं दिखता जिसकी शिकायत तुम्हें करनी चाहिए?"

मैंने कहा "शिकायत करने से होगा क्या? कौन ध्यान देता है हमारी शिकायत पर? सरकार को फुरसत नहीं है अफसरों को फुरसत नहीं है। इसलिए मैं मानता हूँ कि जैसा चल रहा है ठीक है। नई सरकार देख ली, नये लोग देख लिये, जो शिकायत पुरानी सरकार से थी, उससे ज्यादा नई सरकार से है। जो आएगा, वही करेगा।"

"अरे तुम आँख बन्द करके कब तक जीते रहोगे? यार, तुम आदमी नहीं हो। तुमसे तो जानवर अच्छे हैं ... ऐसे बुद्धिजीवी या ... जिस बुद्धिजीवी को किसी से शिकायत ही न हो वह काहे का बुद्धिजीवी? कुछ दिन मेरे साथ रहो। मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि कैसे जीना है और कैसे अपने जीवन को सार्थक बनाना है। प्रजातंत्र में अपनी जिम्मेदारी को समझो।"

अचानक चलते-चलते उनका पाँव फिसल गया और वे गिर गए। मैंने उन्हें सहारा देकर उठाया। वह बोले "मुझे अस्पताल ले चलो ... मेरे पैर में फ्रैक्चर लगता है।"

मैंने कहा "लेकिन आप अचानक चलते-चलते गिर कैसे गए?"

वह बोले "अपने यहाँ की नगरपालिका की कृपा से। सड़कें ही ऐसी हैं ... अब मुझे अस्पताल ले चलो जल्दी।"

मैं जानता हूँ इस बार प्रजातंत्र की रक्षा के लिए उन्हें काफी सामग्री मिल गई है। वे नगरपालिका और अस्पताल दोनों को एक-साथ निपटाने के मूड में आ गए थे।

एक पत्रकार वार्ता–फायर ब्रिगेड पर

हम लोग दद्दा उस महापुरुष को कहते हैं जो हमारी नगरपालिका के अध्यक्ष हैं। वैसे तो कई आए और चले गए, लेकिन दद्दा जो हैं वे नगरपालिका में रम गए हैं। बड़े भक्तिभाव से नगरपालिका का हर काम करते हैं। कभी-कभी तो आप खुद भी नहीं पहचान पाएँगे कि दद्दा कौन हैं और नगरपालिका कौन है। हम तो यही कहते हैं कि यदि आपको हमारी नगरपालिका देखना हो तो दद्दा को देख लो। पानी की टंकी देखना है तो दद्दा को देख लो और 'नगरपालिका स्वागत करती है' का बोर्ड देखना है तो दद्दा को देख लो। कुछ और देखने की जरूरत नहीं। बाजार में घूमते-फिरते हैं तो लगता है जैसे प्रदेश प्रशासन की नगरपालिका चल रही है। बात भी वे नगरपालिका स्तर की ही करते हैं।

एक दिन हमसे बोले—यार, यहाँ के पत्रकार लट पड़े हैं क्या? मैंने पूछा क्यों, तो वे बोले—नगरपालिका में दो लाख का फायर-ब्रिगेड मैंने मँगवा लिया और कोई न्यूज नहीं आ रही है। विज्ञापन लेना होता है तो दौड़ के आते हैं, 'हाथी' जैसा फायर ब्रिगेड नगरपालिका में खड़ा है और इसका कुछ ज़िक्र भी नहीं हो रहा है।

मैंने सलाह दी—दद्दा, मेरी मानो तो इसी बहाने एक पत्रकार वार्ता बुला लो।

वे बोले—यह क्या होती है?

मैंने समझाया कि पत्रकार वार्ता बुलाने पर हर अखबार का संवाददाता आएगा और आप जो जानकारी देना चाहते हैं वह आपसे लेगा। फिर कुछ सवाल करेगा और अखबार में छाप देगा।

वह बोला, "फिर क्यों जी रहे हो इस धरती पर? अपना जीवन व्यर्थ गँवाने में क्या लाभ? किसी दिन मर जाओगे तो तुम्हारे एक वोट से प्रजातंत्र पर कोई आफत आने वाली नहीं है।"

वे नगरपालिका के नागरिक थे। बोले, "आँखें बंद करके जीने से तो मर जाना बेहतर है। क्या तुम्हें ऐसा कुछ भी नहीं दिखता, जिसकी शिकायत तुम्हें करनी चाहिए?"

मैंने कहा, "शिकायत करने से होगा क्या है? कौन ध्यान देता है हमारी शिकायतों पर। सरकार को फुरसत नहीं है। अधिकारियों को फुरसत नहीं है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि जैसा चल रहा है ठीक है। नई सरकार देख ली, पुराने लोग देख लिए। जो शिकायतें पुरानी सरकार से थीं, उससे ज्यादा नई सरकार से हैं। जो आएगा, वही करेगा।"

"और तुम आँखें बन्द करके जीवन देखते रहोगे? यार, तुम आदमी नहीं हो। तुमसे तो जानवर अच्छे हैं। कैसे बुद्धिजीवी हो? जिस बुद्धिजीवी को किसी से शिकायत ही न हो, वह कैसा बुद्धिजीवी? किसी दिन मेरे साथ रहो। मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि कैसे जीना है और कैसे अपने जीवन को सार्थक बनाना है। प्रजातंत्र में अपनी जिम्मेदारी को समझो।"

अचानक चलते-चलते उनका पाँव फिसल गया और वे गिर पड़े। मैंने उन्हें सहारा देकर उठाया। वह बोले, "मुझे अस्पताल ले चलो, मेरे पैर में फ्रैक्चर लगता है।"

मैंने कहा, "लेकिन आप अचानक चलते-चलते गिर कैसे गए?"

वह बोला, "अपने यहाँ की नगरपालिका की कृपा से। सड़क ही ऐसी है। अब मुझे अस्पताल ले चलो जल्दी।"

मैं जानता हूँ इस बार प्रजातंत्र की रक्षा के लिए उन्हें काफी सामग्री मिल गई है। वे नगरपालिका और अस्पताल वालों को एक-साथ निपटाने के मूड में आ गए हैं।

एक पत्रकार वार्ता–फायर ब्रिगेड पर

हम लोग दादा उस महापुरुष को कहते हैं, जो हमारी नगरपालिका के अध्यक्ष हैं। वैसे तो कई आए और चले गए, लेकिन दादा तो हैं वे नगरपालिका में रम गए हैं। बड़े भक्तिभाव से नगरपालिका का हर काम करते हैं। कभी-कभी तो आप खुद भी नहीं पहचान पाएँगे कि दादा कौन हैं और नगरपालिका कौन है। हम तो यही कहते हैं कि यदि आपको हमारी नगरपालिका देखना हो तो दादा को देख लो। भाग्य का टुकड़ा देखना है तो दादा का चेहरा देख लो और 'नगरपालिका स्वागत करती है' का बोर्ड देखना है तो दादा को देख लो। कुछ और देखने की जरूरत नहीं। बाजार में पैदल चलते हैं तो लगता है जैसे प्रदेश प्रशासन की नगरपालिका चल रही है। बात भी वे नगरपालिका स्तर का ही करते हैं।

एक दिन कहने लगे —यार, यहाँ के पत्रकार ठंडे पड़ गए हैं क्या? मैंने पूछा क्यों? तो वे बोले —नगरपालिका में दो लाख की फायर-ब्रिगेड मैंने मँगवा दिया और कोई न्यूज नहीं आ रही है। विज्ञापन लेना होता है तो दौड़े आते हैं। हाथी जैसा फायर ब्रिगेड नगरपालिका में खड़ा है और इनको कुछ दिख ही नहीं रहा है।

मैंने सलाह दी—दादा, मेरी मानो तो इसी बहाने एक पत्रकार वार्ता बुला लो।

वे बोले—यह क्या होती है?

मैंने समझाया कि पत्रकार वार्ता बुलाने पर हर अखबार का संवाददाता आएगा और आप जो जानकारी देना चाहते हैं वह आपसे लेगा। फिर कुछ सवाल करेगा और अखबार में छाप देगा।

ने बोला—फिर

मैंने कहा—फिर क्या [illegible] सब जगह पानी और नाचने का इंतजाम करना पड़ेगा आपको गद्दी के लिए [illegible] अच्छा [illegible] मिल [illegible] अच्छी तरह पूरा हो जायगी।

वे ठहाका लगाकर बोले—और [illegible] गी का कहना है [illegible] बताता [illegible] कोई और भी सनझा था। कुछ हो गई [illegible] नगरपालिका में [illegible] नाम रखा [illegible] है तो [illegible] भी लिखेंगे नगरपालिका [illegible] मिलाई [illegible] हम भी [illegible] पत्रकार वार्ता।

दूसरे दिन सभी पत्रकारों को पत्रकार वार्ता के लिए [illegible] आमंत्रित कर लिया। [illegible] सजाई गई। नगरपालिका का [illegible] कुर्सियाँ लगाई गई [illegible] कुर्सी अच्छा था। [illegible] निकलती थीं। [illegible] मुँह में [illegible] पान भरे हुए आए। आज चाल उनकी अच्छी थी। लगता था जैसे कोई [illegible] बिगड़ [illegible] के लिए [illegible] पर आग [illegible] रहा है।

पाण्डे शर्मा जी का एक कोने में [illegible] रहा न सका—अरे तुम सम्हालना [illegible] नहीं मुझसे [illegible] कि नहीं।

शर्मा जी ने उन्हें [illegible] दिलाया—यह [illegible] दादा [illegible] आप तो [illegible] जाने पर जाना [illegible] पत्रकार आपका [illegible] की कोशिश करेंगे लेकिन आप तो बस अपनी बात पर अड़े रहना कि नगर के [illegible] के लिए उससे [illegible] और कोई [illegible] हो नहीं सकता।

दादा सामने की कुर्सी पर [illegible]। बोले—कहिए [illegible] आप लोगों का क्या कहना है?

[illegible] कहा—पत्रकार वार्ता तो आपने बुलाई है। आपको जो कहना हो कहिए।

वे बोले—क्या कहें [illegible] ये [illegible] सामने इतनी बड़ी फायर-ब्रिगेड की गाड़ी खड़ी है वह आप लोगों को दिखाई नहीं देती क्या?

एक पत्रकार ने कहा—दिखती है।

दादा बोले—दिखती है तो और क्या कहना बाकी है [illegible] समझ [illegible]

एक पत्रकार वहाँ फायर-ब्रिगेड पर



आगे — आप सब लोग तो समझदार हैं। आप लोगों को कुछ पूछना है तो पूछो। हम बताएँगे। हम भी जानते हैं पत्रकार वार्ता क्या होती है। हाँ।

—पहले यह बताइए कि आपने फायर-ब्रिगेड क्यों मँगवाया है।

—ना इच्छा... यह भी कोई पूछने की बात है। हम तो समझते थे कि पत्रकार बड़े होशियार होते हैं। भई इतना नहीं जानते कि आग बुझाने के लिए मँगवाया है और क्या?

—हमारा मतलब है कि जब यहाँ तो आग लगी ही नहीं फिर इस फिजूल खर्च की क्या आवश्यकता थी?

अब दादा समझ गए कि पत्रकार कहाँ घेर रहे हैं। वे सतर्क हो गए। बहुत गंभीरता से विचार करने लगे कि क्या जवाब दिया जाए। उन्होंने शर्मा जी की ओर 'तुम जरा सम्हालो यार' वाली मुद्रा में देखा। शर्मा जी भारत के नक्शे की ओर देख रहे थे। दादा तुरन्त समझ गए कि क्या कहना है। पूरी ताकत से बोले —पूरे देश में आग लगी है। पंजाब जल रहा है। बंगाल में धुआँ उठ रहा है और आप इसे फिजूलखर्ची कहते हैं। मैं कहता हूँ बिल्कुल ठीक है। दो लाख रुपया लगा तो लगा। आग तूफान की रफ्तार से आ गई तो? और पूछो?

—हमारा मतलब यह नहीं था। हम अपने नगर की बात कर रहे हैं। आप बताइए कि जब यहाँ कई सालों से कोई आग नहीं लगी तो फायर-ब्रिगेड खरीदने की क्या जरूरत थी?

दादा ने शर्मा की ओर देखा। शर्मा जी ने फिर भारत के नक्शे की ओर देखा और दादा समझ गए कि क्या जवाब देना है। बोले —हम दिल्ली वाले हैं। उधर आग लगी इसका मतलब है इधर भी लगेगी। आज नहीं तो कल लगेगी। फिर क्या करोगे आप? हमने जो किया है, ठीक किया है। हम इस बात पर अड़े रहेंगे। और पूछो।

—दिल्ली की आग का इस नगर से क्या लेना देना?

—लेना-देना कैसे नहीं है। दिल्ली भइया है तो लेना-देना पड़ेगा ही। लेना-देना कैसे नहीं रहेगा। नगर की इज्जत का सवाल है। और पूछो?

—अच्छा मान लीजिए दिल्ली में आग लग गई। अब बताइए यहाँ कैसे आएगी?

दादा समझ गए कि पत्रकार फिर उन्हें घेरने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने शर्माजी की तरफ देखा। शर्माजी भारत के नक्शे की तरफ देख रहे थे। दादा तुरन्त समझ गए कि पत्रकारों द्वारा पूछे गए प्रश्न का क्या उत्तर देना है। बोले —कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है ... हम एकता और अखण्डता में विश्वास रखते हैं ... और पूछो?

—फायर-ब्रिगेड के साथ एकता और अखण्डता कैसे आ गई?

—अजीब सवाल करते हो यार ... जब एकता और अखण्डता है तो उसे आना ही पड़ेगा ... आएगी कैसे नहीं। और पूछो?

—फायर-ब्रिगेड की मशीन खरीदने की प्रेरणा आपको कैसे मिली?

दादा ने फिर शर्माजी की तरफ देखा। शर्मा जी ने भारत के नक्शे की ओर देखा तो दादा तुरन्त समझ गए कि इस सवाल का क्या उत्तर देना है। बोले— हमारे प्रधानमंत्री जी से ... और किससे मिलेगा। चलो ... और पूछो?

—यानी कि आप हर काम प्रधानमंत्री की प्रेरणा से ही करते हैं?

—बिल्कुल करते हैं जी। और पूछो?

—क्या आप बताएँगे कि यह प्रेरणा आपको किस प्रकार मिली?

इस बार दादा अकबका गए। उन्हें याद आया कि शर्माजी ने उन्हें समझाया था कि जब कोई बात उनकी समझ में न आए तो कहना चाहिए कि जनहित में वे इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हैं या कहना चाहिए कि मुझे तथ्यों की जानकारी नहीं है। मैं जानकारी लेकर जवाब दूँगा ... आदि-आदि।

दादा ने एक बार फिर जानकारी लेने की स्टाइल में शर्माजी की ओर देखा। शर्माजी अभी भी भारत के नक्शे की ओर ही देख रहे थे। इशारे से ही दादा ने कहा— चालू हो जाओ ... डटे रहो ... पीछे मत हटना।

दादा इस बार तनकर बैठ गए बोले— भाइयो, आप तो जानते ही हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है ... इस साल पानी नहीं आया है और किसानों के खेत सूख रहे हैं ... किसान भागे-भागे फिर रहे हैं ... और ... और अपनी फसल बचा रहे हैं। फसल बच गई तो अच्छा है नहीं तो सब चौपट हो जाएगा ... बाल-बच्चे भूखे मर

एक पत्रकार वाला फायर

नाम्य पानी ही सब कुछ है — एक कवि ने कहा है। क्या नाम था उस कवि का? मैं तो कहूँगा कि पानी के बिना सब सूना है — [illegible]

एक पत्रकार ने बात में कुछ कहना चाहा तो टोक दिया — पहले मेरी बात पूरी सुन लीजिए। पत्रकार वाला मैं [illegible] मेरी बात पहले सुनिए, बाद में [illegible] पूछेगा [illegible] में दूँगा [illegible] कह रहा था कि [illegible] एकता और अखण्डता का [illegible] है [illegible] में कार्यक्रम का [illegible] है [illegible] तुम [illegible] है [illegible] जय हिन्द।'

पत्रकार वाला और भी [illegible] चलती लेकिन तभी [illegible] आ गया [illegible] मंद-मंद मुस्कुराने लगे जैसा कि एक सफल पत्रकार वाला के बाद होता है उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि पत्रकार वाला में बिल्कुल नहीं डरे हैं और अब [illegible] की [illegible] अखबारों में होगी तो लोगों को पता चल जाएगा कि उनके कार्यकाल में इस नगर में एक [illegible] कदम हो गया है।

दूसरे दिन अखबारों में [illegible] फायर-ब्रिगेड की [illegible] और [illegible] था।



आँख क्यों तर नहीं होती?

यह तो मुश्किल है। अपनी आँख ही कुछ ऐसी है कि तर होने का नाम ही नहीं लेती। हमने तो ऐसे लोग भी देखे हैं जो पैदा ही तर आँखों के साथ होते हैं लेकिन अपनी किस्मत में यह सुख लिखा ही नहीं था। कितनी कोशिश करता हूँ कि कम-से-कम रोना नहीं तो कम से कम आँख कोई मौका देखकर तर हो जाय। लेकिन जाने किस अशुभ घड़ी में इन आँखों की मैन्यूफैक्चरिंग हुई है कि तर होना जानती ही नहीं। कुछ लोगों का कहना है कि दिमाग इन आँखों का पानी पी गया है। अब हम दिमाग सिर पटककर मर जाय, लेकिन जब आँखों में पानी बचा ही नहीं होगा तो तर कैसे होंगी? तो सवाल इस बात का तो है कि पानी था भी कभी हमारी आँखों में

हमें याद आता है कि हमारे पड़ोस में एक सज्जन रहते थे। सज्जन इसलिए थी कि उनकी आँखों में हमेशा पानी होता था। जब देखो, आँखें तर हो होतीं और तर आँख थी उनकी। चश्मा भी लगा रखा फिर भी आँखों की तरावट चश्मे से बाहर निकलने की कोशिश करती रहती। और कुछ भी कहें, हम मानते हैं कि आँख तर करने की उनकी प्रैक्टिस बड़ी अच्छी थी। मिट्टी के तेल का भाव बढ़ गया तो मुहल्ले में सबसे पहले उनकी ही आँखें तर होतीं। बजट में रेल किराया बढ़ गया तो आँखें तर। कोई नया टैक्स लग गया तो आँखें तर। कहीं पाला पड़ गया तो उनकी आँखें तर। और कोई दुर्घटना हो गई तो सबसे पहले उनकी आँखें तर। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि कोई घटना बाद में होती उनकी आँखें पहले तर हो जातीं। उनकी पानीदार आँखें देखकर हमें जलन होती। लोग कहते—"भई, कितना संवेदनशील आदमी है।"

अजीत भी जानता था कि इस काल और वातावरण के साथ लोगों की आँखों की यह समस्या इतनी गंभीर होने लगी थी कि उनके इस दयाभक्तिपूर्ण भावना के लिए कई लोग उन्हें कोई अच्छा-सा पुरस्कार देने की सोच रहे थे। लोगों ने ... मैं ... होकर उनसे कहा— "आप एक आदमी जो भारत ... तुम हो। ... भी तुम्हारा आँखें तर नहीं होतीं? इस मर्ज का इलाज ... पानी में।"

... एक दिन ... लिया कि या तो ... या फिर ... के साथ जाना ... आँखें तर करने का कोई उपाय तलाश करना। ठीक उसी दिन ... यह मालूम हो गया था कि इसके एक ... का खुलासा ... ऊपर था। वह तो ... जाने ... थे। बहुत काम ... था। बहुत लोगों से ... के ... थे ... बिना ... का ... था। ... बिना ... मैं ... सोच रहे थे ... भी नहीं ... सकते थे। ... थे लेकिन ... और ... का ... नहीं था। ... की दुकान पर पाजामे का कपड़ा ... रहे थे और ... कि ... का कपड़ा ... सबने पार किया। लेकिन आँखें ... नहीं हुईं। ... सज्जन ऐसे ... निकल ... हुए ... ही ... के ... आँखों में ... । ... और ... की भी उनको ... । ... हुई कि एक ... तर ही नहीं ... उनसे बहुत ... हुए। हमने उनसे पूछा कि आँखें तर करने का यह हुनर उन्होंने कहाँ से सीखा? वह बोले— "मरने वाला दो दिन पहले मुझसे ... रुपए उधार ले गया था।"

अब हमको समझ में आया कि रुपए में कितनी ताकत होती है। आज तो ... रुपया चाहे तो पूरे आदमी को तर कर दे। ... आज तक किसी को एक रुपया भी उधार नहीं दिया और चाहते हैं कि आँखें तर हो जायें। ... एक ... के ... आँखें तर करना सीखना हो तो ... लोगों को रुपया उधार देना ... । रुपये का दर्द समझोगे तब तो ... आँखें तर कि ... ही हो जायेंगी। ... रुपया डूब जायेगा तो ऑटोमैटिक आँखें तर हो जायेंगी तुम्हारी। ... सोचा कि ... हजार-पाँच सौ रुपया ... देख लेते हैं। बाद में किसी को कहने का मौका तो नहीं रह जायेगा कि हमारी आँखें तर ही नहीं होतीं। ... कि ... जायेगा कि ... आँखों का पानी ... है

अब हमें रुपया [illegible] निकला कि कोई मिल जाये [illegible] लौटा [illegible]। लोग तो बहुत मिले लेकिन सभी कहते थे कि [illegible] वापस कर दूंगा। तो हमने सोचा [illegible] तो हमारा आँख [illegible] नहीं होगा। कहीं कोशिशों के बाद [illegible] हमें [illegible] कि यह [illegible] हो [illegible]। तो हमने [illegible] से [illegible] [illegible] कहा — [illegible] लेने वाले [illegible] को ढूंढ़ते हैं और [illegible] कि [illegible] के लिए [illegible] कि [illegible] तलाश [illegible]।"

[illegible] क्या समझाते, इन्सान [illegible] सकता है जिसकी आँखें [illegible] जो किसी [illegible] अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, भुखमरी, गरीबी अत्याचार, अनाचार और पाखंड [illegible]। कितना [illegible] के बाद [illegible] हम मिले थे, [illegible] हैं। हमने [illegible] खुद [illegible] गये हैं। [illegible] दुखने [illegible] भी [illegible] पार्टीज [illegible] हैं। बाद में पता चला कि तमाम [illegible] में [illegible] है कि [illegible] पर [illegible] हो [illegible] गया है। बैंक में [illegible] लेने से [illegible] ज्यादा [illegible] लगा है, तो हम [illegible] की [illegible] का [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] के [illegible] है जिन्होंने [illegible] का मौका दिया। हम इस शुभ [illegible] का [illegible] कर रहे थे कि एक माह बाद वह आकर कहता — "[illegible] यही भूल [illegible] गई है। [illegible] में वापस नहीं कर सकता। आप चाहें तो [illegible] [illegible] कर [illegible]।"

[illegible] सुनने के बाद [illegible] समस्या जागृत और [illegible] आँखें [illegible] हो जायेंगी। फिर हम भी [illegible] —भाईसाहब, हम [illegible] आदमी हैं और हमारी आँखें भी [illegible] सकती हैं। लेकिन [illegible] कौन [illegible] सकता है। एक माह बाद वह आदमी आया और अपनी ईमानदारी के साथ [illegible] गया। [illegible] अपनी [illegible] [illegible] हमारी आँखें, आप ही सोचिये। हमने [illegible] प्रार्थना की — "भाईसाहब, हमने यह रुपया आपको [illegible] के लिए दिया था, [illegible] के लिए नहीं। इसके पीछे [illegible] हमारा एक मिशन था जिसे आपने [illegible] समझा। अभी [illegible] लीजिए, कोई जल्दी नहीं है।"





उसने कहा—"श्रीमान्, आपका रुपया किसी को नहीं फलेगा। जिस दिन आपसे ले गया था एक भैंस मर गई। दूसरे हफ्ते पत्नी को टायफाइड हो गया। तीसरे हफ्ते नौकरी छूट में मेरे पाँव की हड्डी खिसक गई। चौथे हफ्ते मेरा लड़का मरते-मरते बचा। लोग कहते हैं कि जिस मनहूस का पैसा है उसी का कष्ट पर कष्ट [illegible] है। तो मैंने सोचा कि मैं तुरन्त आपको वापस कर दूँ। लीजिए ये पैसे और मुझे विपत्ति से बचाइए।"

[illegible] आँख भरने वाले दृश्य का किस्सा भी याद आ गया है। [illegible] का अंधा [illegible] मास्टर था और [illegible] तारीफ करूँ तो [illegible] मास्टर नाम था। और दुर्घटना यह हुई कि मुहल्ले की एक [illegible] और में नए मास्टर पीस [illegible] [illegible] तो लेचार राइट साइड पर थे तो कमबख्त पारा लो गए साइड [illegible] थी। बस मालूम, एक हफ्ते के बाद तो उनकी आँखें रात-रात भर तर रहने लगीं। मैंने पूछा तो कहने लगे—"भाई! शादी इतनी जल्दी हो जाएगी यह उम्मीद नहीं थी।" यह सामाजिक प्रक्रिया थी जिसने उनकी आँखें तर की थीं। आँख तर करने में समाज का इतना बड़ा योगदान होता है यह मुहल्ले वालों ने सिद्ध कर दिया था। वह तो दमदास [illegible]। ध्यान भी करते तो आँखें [illegible]। कपड़े [illegible] बदलने में आँखें तर होतीं। और खाना [illegible] आँखें तर होतीं। कितने संवेदनशील थे वे। इस घटना का इतना ज्यादा प्रभाव हम पर पड़ा कि हमने भी सोच लिया कि हम भी दमदास बनेंगे [illegible]। एक जागे भी हमारी किस्मत में मिल गई लेकिन फिर भी हम [illegible]। आँखें तर नहीं हुईं। [illegible] ने कहा—"मैं शादीशुदा हूँ। लेकिन [illegible] विचार [illegible] हूँ। आपका इतने की जरूरत [illegible] हमारे तो भी बहुत ऊँचे विचार वाले हैं।"

एक मौका मिला था [illegible] गया [illegible]। [illegible] में जब वैचारिकता इस ऊँचाई पर पहुँचे [illegible] की आँख तर [illegible] और [illegible]।

उस दिन एक मुशायरे में जाना हुआ। तब अहसास हुआ कि उर्दू साहित्य में भी आँखें तर करने की बड़ी ताकत होती है। मंच पर एक शायर ग़ज़ल का एक [illegible] पढ़ते और पाँच मिनट तक अपनी आँखें रूमाल से पोंछते। उनको सुनने वाले हर [illegible] की भी आँखें [illegible]

को आँखों को नम करने के लिए काफी था। वह देश की हालत पर लगातार आँसू पढ़ते और आँखें तर करते रहे। लोग कहते हैं कि देश के बारे में पैकहा पत्रों का साहित्य चाट डाला है फिर भी उनकी आँख तर ही नहीं होती। शायद वह इतना भावुक होता है कि शेर कहने से लेकर आवाज़ के निकालने तक पर उसकी आँख तर हो जाती है। ऐसे साहित्य-मर्मज्ञों ने तो आँखों को नाम बचाई है। अब हम तो इसी नतीजे पर पहुँचे हैं कि वह आँख ही क्या जो तर न हो। हमारे जैसी बेशर्म आँख होने से तो अच्छा है, सूरदास हो जाना, ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।

वे आँख को इस आशय से कि "आँख तथा घृणा की दृष्टि से देखते हैं और इसका कारण बताते हैं कि उनकी आँख तर नहीं होती। उन्हें घृणा से देखने का अधिकार भी है। जब कभी आँख अकस्मात, एक झटके से, हर रोज़, हर क्षण और हर मौके पर तर हो रही है और मेरा इन आँखों का पानी ही मर गया है तब आपको हमसे घृणा करने का नैतिक अधिकार है।

आँखों से गिरते मानवीय मूल्य

इन दिनों मैं गिरते हुए मानवीय मूल्यों के पीछे लगा हूँ।

तभी चित्र मेरे सामने रखते हुए बोले, "इसमें इन [illegible] आँखें देख रहे हो? बस यही है आज का गिरता हुआ मानवीय मूल्य।"

मैंने कहा, "आँखों से कैसे गिर गया मानवीय मूल्य? मानवीय मूल्य आदमी के चरित्र से गिरता है।"

वह बोले, "आँखों से नीचे आती ये काली रेखाएँ देख रहे हो? आड़ी-तिरछी, कहीं ऊपर कहीं नीचे। यही है आदमी का चरित्र। लेकिन आँखों से फिसलती दिख रहा है कि आँखों को यदि केन्द्र मानकर चलोगे तो समझो आसपास तो तुम्हें मूल्य गिरते नजर आएँगे। यह चित्र मैंने इसी कल्पना से बनाया है। मैंने कलयुग का चित्रांकन करने के लिए रेखाओं का सहारा लिया है, डार्क शेड का नहीं। समझे?"

मैंने कहा, "डार्क शेड। क्या होता है यह? मैंने डार्क शेड सुना है। कोई आरकेस्ट्रा पार्टी का नाम है?"

वे नाराज हो गए। कहने लगे आप में उनकी रचनात्मक-प्रतिभा का डिवेल्यूएशन कर रहा हूँ। दरअसल मुझे अमूर्त चित्र कभी भी समझ में नहीं आए। पिछले साल कला-भवन गया था। एक बड़ी पेंटिंग दीवार पर लगी थी—सफेद। कुछ भी नहीं था कहीं भी। कोई चित्र नहीं। बीचोंबीच एक धातु का गोला चिपका दिया गया था। लोग बड़ी तारीफ कर रहे थे। मैं भी बड़ी देर तक देखता रहा इस गोले को। गेंद जैसा था। मेरे पास एक जवान लड़का और एक जवान लड़की बहुत देर से खड़े

इस चित्र को देख रहे थे। [illegible]

न जाने कब से नशा बढ़ रहा था। लड़की गोला देखती रही और लड़का लड़की को देखता रहा। दोनों उस महान पेंटिंग के आगे मे अन्दर ही अन्दर खोये रहे।

वे लड़कों से सबसे ऊँची शिखा को काल जलाकर मगर जगह जगह हो रहा जग म म पुष्ट स्फटिक और लोहे का गोला दोनों साफ-साफ दिख रहे थे। लड़के की बात भी सुनाई दे रही थी, मानो इस पेंटिंग में डूबे हुए थे। इसलिए उनके मन में क्या दिखता था, मैं क्या कहूँ, वह सब लिख रहा था। यही कारण था कि कभी-कभी साथ पर कई लोग इस पेंटिंग को देखकर ठिठककर चल देते। लेकिन इन दोनों का देखना अभी तक चल ही रहा था।

लड़का अपने में खो गया था और लड़की किसी की प्रतीक्षा की तरह खड़ी थी। मुझे लगा कि मॉडर्न आर्ट का पाठ पढ़ाना पागल होने जैसा है। यह भी हो सकता था कि लड़का मॉडर्न आर्ट के साथ और किसी के पीछे पागल हो। लड़के के कंधे पर एक कैमरा भी लटक रहा था। लड़की ने टी-शर्ट और जीन्स का पैंट पहन रखा था। बस इसके अलावा और जो कुछ उनके पास था, वह उनकी भाषा थी, जिसमें वे अंग्रेजी में एक-दूसरे पर बात रहे थे। उनकी बातचीत के जितने अंश मुझे समझ में आये उनका हिन्दी अनुवाद मैं आपको दे रहा हूँ। मेरी अंग्रेजी भी ऐसी ही है। आधा समझता हूँ, आधा लड़की को देखकर अंदाजा लगा लेता हूँ कि लड़के ने क्या कहा होगा।

—यह गोला मानवीयता का धातुरूप है, जिसे कलाकार ने बीचोंबीच इसलिए रखा है कि हम समझ सकें कि इन्सान यदि धातु का हो गया तो उसके चारों ओर केवल सफेद कैनवास के अलावा और कुछ बाकी नहीं बचेगा। तुम क्या सोचती हो?

—हूँ... लेकिन धातुनिष्ठ-विचार तुम्हारे मन में क्यों आए? यदि तुम इस तरह धातु-वादी हो जाओगे तो इस कैनवास का क्या होगा?

—वह अपनी जगह है... यहाँ तो कलाकार की फिलॉसफी है, जिससे वह इस गोले का स्पष्टीकरण करना चाहता है... सचमुच यह कलाकृति बहुत ही विचारवान है।

—विचारवान से तुम्हारा मतलब?

लगी कि हम दोनों को काफी देर से देख रहे हैं लेकिन हमारी समझ

में गई थी। या पूछा था कि इसमें मानवीय मूल्य कहाँ है? क्या इस धातु के गोले में कैद हैं आपके मानवीय मूल्य?

—वो भ्रमित है। आखिर इस धातु की भी अपनी एक आइडेन्टिटी है। तुम ये क्या भूलते हो? मुझे देखो। इस तरह मैं कितनी देर से खड़ा हूँ। बिल्कुल इसी तरह... अगर इसे भौतिक दृष्टि से देखो, तुम्हें लगेगा जैसे

—डोन्ट बी सिली। मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम इतनी सेंसलेस हो सकती हो। आखिर आँख यह केवल प्रतीक है जो हमारे साथ है। ...कि हम दोनों के बीच है। या कहूँ कि हमारे विचारों के बीच है। इस भाव के गोले को अलग कर दो इस कैनवास से। फिर क्या बचेगा, जानती हो?

—हाँ, एक फ्रेम बचेगा जिसमें कुछ नहीं होगा।

—दैट्स राइट। मेरा भी यही विचार है। कलाकार ने इसी क्रम को सेंटर पाइंट माना है अपने क्रिएशन के लिए। कैनवास तो सिर्फ थ्योरी है। यदि कैनवास न हो तो किसी गोले की कोई सार्थकता नहीं है। मैटल इज मैटर आफ्टर ऑल। उसमें स्पंदन नहीं होता, लाइफ नहीं होती। कितनी आश्चर्यजनक कल्पना है कलाकार की! वंडरफुल!

लड़की शरमा गई। उसके चेहरे पर शर्म के भाव आए तब मुझे पता चला कि वाकई मेरी अंग्रेजी कमजोर है। लड़के ने जरूर कुछ कहा होगा जिसे मैं नहीं समझ सका। मुझे याद है कि दोनों बहुत देर तक इस पोर्ट्रेट के सामने खड़े होकर कला की चर्चा करते रहे, कला को समझाते रहे और हर बार उस धातु के गोले को देखते रहे। मुझे लगा कि मैं अब तक भी नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह भारी गोला आँख में कहाँ से आ गया?

बात मानवीय मूल्यों पर चल रही थी।

वह फिर बोले, "आँखों के नीचे आओ। सेवन्टीज़ दिया। देखो यह रेखा आँखों से गिरकर सीधे गाल में जा गई। यही इस चित्र की बारीकी है। जब रेखाएँ गिरती हैं तब यह समझो कि मानवीय मूल्य गिर रहे हैं। मैं इन दिनों अपने हर चित्र में यह देखता हूँ।"

मैंने कहा—लेकिन आपने तो आँखें बनाई हैं। वह मुझे [illegible] जैसी लगी

हो नहीं है। भला किसी आदमी की आँख इतनी बड़ी हो सकती है? पूरे चेहरे में केवल आँख ही है। नाक, कान, होंठ कुछ भी नहीं है।"

वह बोले, "यही तो इस चित्र की खास बात है। तुम बताओ कि आँख, नाक, कान किसके पास हैं? मैं पूछता हूँ क्या ये केवल तुम्हारे अपने हैं? ज्ञान क्या है? इन्हें मिलाओगे तो इनसे शब्द बनेंगे। क्या ये तुम्हारे शब्द हैं? और यह नाक? इसी नाक के लिए तो? इतना लम्बा नाक लेकर इस दुनिया में जी रहे हो। लेकिन कभी सोचा कि लम्बाई ही श्रेष्ठ नहीं होती। नाक को डिफाइन करना मुश्किल है। इसलिए मैं कहता हूँ कि मानवीय मूल्य मर रहे हैं। जिस दिन तुम्हारे हो जाएँगे डिफरेन्शियेशन का झगड़ा ही खत्म हो जाएगा। इसलिए मैं आँखों पर कान्सन्ट्रेट कर रहा हूँ। अपनी भावना मिलाकर मैं डिफाइन्स कि मानवीय मूल्य, यही है जिन्दगी का सेंटर पाइंट।"

वह थोड़ी देर रुके और दूसरा तस्वीर हाथ में लेकर बोले, "अब इसकी आँखें देखो। इसमें भूलता है? सेंटर प्वाइंट में दोनों आँखें चालीस डिग्री का एंगल लेकर नीचे गिर रही हैं। इस चित्र का शीर्षक मैंने दिया है 'दि पॉलिटिकल आई।'"

मैंने दोनों चित्रों की आँखें देखीं। जिस तरह मैंने कला-भवन की पेंटिंग का जिक्र किया, ठीक उसी तरह उनके चित्र में आँखों के अलावा कुछ भी नहीं था। उधर धातु का एक गोला था और उस पर एक आँख थी जिसे उन्होंने पकड़ रखा था।

मैंने पूछा, "कितने दिनों से इस आँख के पीछे पड़े हो?"

वह गम्भीर हो गए। बोले, "इट इज ईज़ी टु से, कहना आसान है। मैं तो समझता हूँ कि पूरी जिन्दगी यदि मैं अपने स्टूडियो में केवल आँख ही बनाता रहा तो भी मैं अधूरा ही रहूँगा। आँख को समझना मुश्किल काम है और उससे भी मुश्किल काम है आँखों के माध्यम से मरते हुए मानवीय मूल्यों को चित्रों में दिखाना। अभी तो मैं सीख रहा हूँ। अच्छा यह बताओ तुमने कोई ऐसी आँख देखी है जो दिखने में तो आँख ही हो लेकिन धातु के गोले की तरह दिखे। आइ मीन, मेरा मतलब है कि बिल्कुल स्पंदन-हीन, डेड मैटर अथवा फ्यूज, मरे हुए मानवीय रिश्तों वाली आँखें।"

इससे पहले कि मैं कुछ कहता उन्होंने अपनी बालसी तस्वीर निकाली और बोले, "इन आँखों को देखो ... ऊपर की ओर उठी हुई हैं जैसे ... जानते हो, आँखें ऊपर क्यों चढ़ती हैं?"

मैंने कहा, "जब प्राण-प्रयाण के पल शुरू हो जाते हैं।"

वह बोले, "यह मृत्यु का स्थूल मनोविज्ञान है। हम कलाकार हैं ... इस स्थूल से ऊपर उठकर भी हम अलग-अलग माध्यम से अपनी अलग पहचान बनाते हैं। फटी हुई आँखों का चित्रांकन करना मेरी एक पुरानी विचारधारा है ... वह मनोवैज्ञानिक तौर है ... मानवीय मूल्यों पर आस्था रखने वाले इन्सान हैं हम। मेरी कोशिश है कि हमारे आँखों का पानी बना रहे ... ये ऊपर चढ़ी हुई आँखें हमें साम्प्रदायिकता और आतंकवाद का आभास कराती हैं ... इसलिए इन आँखों में तुम्हें एक दुनिया नजर आएगी।"

मैंने कहा, "कहाँ है दुनिया?"

वह बोले, "इन आँखों से कोई भी किसी की ओर तुम देखो जो बिन्दु दिखेगा वही है दुनिया ... इन आँखों में बहुत सारी ... दुनिया से इन आँखों में कई गुना बड़ा ... इसमें झगड़ा और अरबों अगिन समा जाएँगी ... इस मतलब का समझाना जरूरी है ... इसे परिभाषित करनी है इसका ... यही है एक सच्चे कलाकार का सपना।"

मैंने फिर पूछा, "अभी आप मानवीय मूल्य वाली आँखों की बात कर रहे थे। क्या आप मुझे बताएँगे कि आपके चित्र में वह कहाँ है?"

वह एकाएक उदास हो गए। बोले, "आपने मुझे विचलित कर दिया ... ... आपके इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? मुझे तो आज हर आँख ऐसी ... दिखती है जिसमें सिर्फ शून्य होता है ... मैं समझ नहीं पाता कि इन आँखों को अपने चित्रों में किस तरह प्रदर्शित करूँ? मुझे याद आता है कि कुछ दिनों पहले मैंने कला-भवन में एक चित्र देखा था ... एक कैनवास के अन्दर धातु का गोला ... मैं कई दिन तक सोचता रहा कि यह धातु का गोला क्या आदमी की आँख हो सकती है? मुझे लगा कि इससे अच्छा प्रतीक इस तरह की आँख के लिए और कोई दूसरा नहीं हो सकता। आप कभी कला-भवन जाएँ तो वह तस्वीर जरूर देखें ... गिरते हुए मानवीय मूल्य की इससे अच्छी ... मैंने आज तक किसी पेंटिंग ... नहीं देखी

मैं समझ रहा था कि वे गिरते हुए मानवीय मूल्यों को पा रहे हैं। वे इन्हें अपनी आँखों के माध्यम से ही ऊपर उठाएँगे। लेकिन यह मुझ-जैसे आदमी के लिए बेकार है जो वस्तु के गोल और आँख में आज तक अन्तर नहीं जान सका। आँख धातु की हो सकती है, मैंने पहली बार अनुभव किया था। वे आँखें हैं। मानवीय मूल्यों को ऊपर उठाने का उनका अपना दृष्टिकोण है।

इन्सान अपना नम्बर भूल गया।

गिरते हुए मानवीय मूल्यों को आँखों के माध्यम से उठाने का संकल्प जो आँखों में गहरा होने लगा था और मुझे इस बात का दुःख था कि मैं आज तक जिस धातु का गोला समझता था वह आँख निकली। हम अपने योग्य क्या उठा पाएँगे इन गिरते मानवीय मूल्यों को जिनके आँख पर धातु का गोला ही दिखाई देती है।

एक धार्मिक बस की कथा

गुप्ताजी की बस बड़ी जिद्दी है। जहाँ खड़ी हो जाती है वहाँ से हटने का नाम नहीं लेती। गुप्ताजी की धार्मिक प्रवृत्ति उन्हें बिगाड़ देती है। इस इलाके में गुप्ताजी की बस इसलिए भी मशहूर है कि तमाम यात्री अपने पापों को धोने के लिए उनकी बस का सहारा लेते हैं। हर बस में एक बोर्ड लगा रहता है— साथ-गंगा में मन लगाने वाला व्यक्ति साथ रखा जाता है। इस नाते [illegible] में भी कई लोग गुप्ताजी की बस में बैठ जाते हैं।

मेरे पापों का घड़ा भर गया तो गुप्ताजी ने मुझसे कहा—भई गंगा नहा कर आइए। कल एक स्पेशल बस जा रही है। कहो तो तुम्हारी सीट बुक कर दूँ।

मैंने गुप्ताजी की ओर इस तरह देखा जैसे उन्हें आखिरी बार देख रहा हूँ। उम्र पचास के आसपास लेकिन चेसिस बिलकुल सादा। हेड लाइट [illegible] थी लेकिन स्प्रिंग-पट्टा अभी भी सही था। ऊँची कुरसी पर थे। लगता था जैसे नीचे जैक लगा हो।

मैंने कहा—प्यास लगी है, दो लीटर पानी पेट में डलवा दीजिए।

गुप्ताजी बोले—तुम यात्रियों के साथ यही तो दिक्कत है। अपना रेडियेटर चेक करा लो। कितने दिनों से सर्विसिंग भी तो नहीं हुई है तुम्हारी?

गुप्ताजी बड़े चालू हैं। उनकी जुबान अच्छा मशविरा देती है। बात-ही-बात में उन्होंने मुझे फाँस लिया। बोले—जिन्दगी का क्या भरोसा [illegible] दीजिए। काम, धाम और पाप-पुण्य तो लगा ही रहता है।

मैंने सोचा क्या पता गुप्ताजी के कर्मों से ही मुझे जन्नत मिल जाये। मैंने कहा—पापियों की लिस्ट तो बता दीजिये।

उन्होंने यात्रा करने वाले सज्जनों की फेहरिस्त मेरे सामने रख दी। जानकर मुझे अच्छा लगा कि सबसे पहला नाम चूड़ी वाले बाबा का था जो बड़े नेक नमाजी थे। गुप्ताजी बोले—बाबा को हम अपने खर्चे से ले जा रहे हैं....इनके बिना तो आपके समाज का कोई क्रिया-कर्म निपटता भी नहीं है ना।

सुबह सात बजे बस रवाना होने वाली थी। यात्रियों ने दुआ माँगी—या परवरदिगार हम तेरे गुनहगार बंदे हैं.. .हमारे गुनाहों को माफ कर दे....हम गुप्ताजी की बस में जा रहे हैं.. .हमें तमाम बलाओं से महफूज रख... आमीन।

बस स्टैंड पर गुप्ताजी की अनुभवी बस खड़ी थी जो कई तीर्थयात्रियों को पार लगा चुकी थी। उसके बदन पर अनुभव की झुर्रियाँ साफ-साफ दिखायी दे रही थीं। बस का दाहिना भाग बिल्कुल गुप्ताजी की दाहिनी टाँग की तरह झुका हुआ था। आगे के दोनों टायर जवान थे लेकिन पिछले चारों टायर देखकर किसी घुटे हुए महंत की याद आती थी। ड्राइवर ने मस्ताना दरबार बत्ती की दो सींकें जलाकर उसे स्टेयरिंग पर घुमाया, सर झुकाकर आधे सिजदे की हालत में एंजिन के पास इस तरह झुका जैसे किसी मजार का बोसा लेने की मुद्रा में हो। फिर उदबत्ती की सींकों को बड़ी श्रद्धा के साथ वाइपर के पास, जहाँ 786 लिखा था, लगा दिया और चाय पीने नीचे उतर गया।

गुप्ताजी यात्रियों का स्वागत कर रहे थे आखिरी बार। मुझसे कहा—तीर्थयात्रा के लिए हम स्पेशल ड्राइवर ही रखते हैं जो धरम-करम में आस्था रखता हो। आपके लिए सबसे सामने की सीट है....बिलकुल ड्राइवर से लगी हुई....कलीम मियाँ बड़े बातूनी हैं आपका सफर अच्छा कटेगा।

देखते-ही-देखते नवाब मियाँ, निजाम भाई प्रेस वाले, अब्दुल भाई लोहे वाले, बब्बू मियाँ, याकूब दादा और सभी जाने-पहचाने सज्जन आ गये। मुझे विश्वास हो गया कि अब डकैत भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

गुप्ताजी यात्रियों को दिलासा दिला रहे थे कि खुदा बड़ा रहम वाला है वही सबको सही-सलामत पहुँचायेगा।

मैंने कहा—गुप्ताजी ऐसे अवसरों के लिए आप जरा उर्दू बोलना सीख लेते तो मौके पर काम आती। वे बोले—बस इतना बता दो कि तीर्थ को उर्दू में क्या कहते हैं। मैंने कहा—जियारत। वह बोले—ईश्वर आपकी जियारत सफल करे....आप सब उसका नाम लेकर बस में बैठ जायें। चलाचली की वेला में आप सबको नमस्कार।

हम सब गुप्ताजी की बस में बैठ गये।

ड्राइवर ने सेल्फ दबाया लेकिन बस बिसमिल्लाह करने के मूड में नहीं थी। करीब पन्द्रह मिनट तक वह सेल्फ को मनाता रहा। अंत में निराश होकर उसने अपील की—चालीस साल से कम उम्र वाले मेहरबानी करके नीचे उतर जायें। बस की आदत खराब है। बिना धक्का लगाये आगे नहीं बढ़ेगी।

गुप्ताजी अलविदा करके अनारकली की स्टाइल में 'अपने घर में' छिप गये थे। अब तो बस हम थे और उनकी यह बुजुर्ग बस थी। दीखने में मैं कम उम्र का था लेकिन मेरा भी पचास चल रहा था। इस चोर बदन के कमाल से धोखा खाकर कलीम मियाँ बोले—आप तो हट्टे-कट्टे हैं। नीचे आ जाइए। धक्का लगा देंगे तो आपके हाथ नहीं घिस जायेंगे। मैंने कहा—मुझे पता होता तो मैं नगरपालिका से अपनी जन्मतिथि निकलवा कर आता, मुझे नहीं मालूम था कि गुप्ताजी की बस सर्विस में चालीस साल से कम उमर वालों को विशेष सुविधा दी जाती है।

करीब दो फर्लांग तक बस को धक्का देने वालों ने अपना पसीना पोंछा और

बीड़ियाँ सुलगा लीं लेकिन बस नहीं मान रही थी। जाने कितने करकमलों में लाली आ गयी थी।

बस में बैठे चूड़ी वाले बाबा अचानक नीचे आ गये। मुसल्ला बिछाकर दो रकात नमाज शुकराना अदा की और बोले—अब लगाओ धक्का।

बस काले रंग का धुआँ छोड़ती हुई चालू हो गयी। मैंने सोचा कितनी धार्मिक प्रवृत्ति की है गुप्ताजी की यह बस। ड्राइवर ने बुलंद आवाज में कलमा पढ़ा और गाड़ी गेयर में डाल दी। तीन-चार हिचकियाँ लेकर गाड़ी चाल में आ गयी। लोगों ने अपनी-अपनी तसबियाँ निकाल लीं और हमारा सफर शुरू हो गया।

मैं बिलकुल ड्राइवर कलीम मियाँ के पास वाली सीट पर था। सामने लिखा था—'खुदा बचाये हसीनों की तेज चालों से—हकीम-वेश्या-वकील के दलालों से।' अपनी पच्चीस साल की वकालत का निचोड़ गुप्ताजी की सूझ-बूझ के सामने फीका लग रहा था। इंजिन की आवाज आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले लोकगीतों की धुनों से काफी मिलती थी। मैंने कलीम मियाँ से कहा—इतनी तेज रफ्तार से चलोगे तो एक महीना तो पहुँचने में ही लग जायेगा।

मेरे और कलीम मियाँ के बीच इंजिन की आवाज की मोटी परतें थीं जिसे पार करने के बाद कलीम मियाँ ने मेरे सवाल का जवाब दिया—तीन बीवियाँ और दो लड़के हैं। बड़ा लड़का कमरुद्दीन भाई के यहाँ ट्रक का काम सीख रहा है।

कलीम मियाँ ने आगे बीवियों की रफ्तार का भी जिक्र किया। अब मुझे समझ में आया कि चलती बसों में ड्राइवर से बातें करने की क्यों मनाही होती है।

तभी एक जोर का धमाका हुआ। सब चौंक गये। बस डगमगा गयी। कलीम मियाँ के अनुभवी पैर ब्रेक पर जम गये। उन्होंने गाड़ी और हमें न्यूट्रल में डालकर सड़क के किनारे खड़ा कर दिया। बोले—डरने की बात नहीं, पिछला चक्का बैठ गया है।

खुदा का लाख-लाख शुक्र है—अगला बैठता तो जाने कितने जनाजों की नमाज आज सड़क पर ही हो जाती।

मेरी नजर गाड़ी में रखे फर्स्ट-एड बॉक्स की ओर गयी। मैंने कलीम मियाँ से पूछा—इस डिब्बे में कुछ है भी या खाली है?

कलीम मियाँ बोले—जनाबे आला ये गुप्ताजी की सर्विस है। एक बार डीजल कम हो सकता है लेकिन टिंचर आयडीन नहीं। गुप्ताजी का उसूल है कि गाड़ी में पहले मरहम-पट्टी का सामान रखो और बाद में डीजल भरवाओ।

मैंने कहा—ये खिड़कियों के काँच बड़े तेज हैं। मेरा ख्याल है इतने तेज काँच गुप्ताजी ने विशेष रूप से तीर्थ-यात्रियों के लिए लगाये होंगे।

कलीम मियाँ बात को बदलते हुए बोले—फर्स्ट-एड बॉक्स जरा छोटा पड़ता है।

मैंने कहा—ठीक कहते हो। जरा बड़ा होता तो दो जोड़े कफन के भी आ जाते।

गुप्ताजी की जख्मी स्टेपनी देखकर कई लोगों की हालत गंभीर हो गयी। एक ट्रांजिस्टर पर आकाशवाणी से गीत आ रहा था—'दिल में छिपा के प्यार का तूफान ले चले....हम आज अपनी मौत का सामान ले चले।' आकाशवाणी वालों में यही बात तो होती है कि वे बड़े समसामयिक गीत बजाते हैं। हमारे एक मंत्री मित्र जब चुनाव हारे और अपना रेडियो खोला तो गीत आ रहा था—'सवेरे वाली गाड़ी से चले जायेंगे।'

गाड़ी चलने लगी तो मैंने कलीम मियाँ से कहा—जरा साइड दे दो।

कलीम मियाँ ने साइड-ग्लास से देखा और बोले—जनाब पीछे तो कुछ नहीं है।

मैंने कहा—साइकिल वाला आ रहा है ना। आगे हो जाने दो बेचारे को। रिस्क लेना ठीक नहीं है।

कलीम मियाँ को मेरी बात से जोश आ गया। आखिर ड्राइवर थे। उन्होंने एक्सीलेटर इतनी जोर से दबाया कि हम सब डर गये। गाड़ी के ढीले पुरजों ने विद्रोह कर दिया। ढीले नट-बोल्टों की आवाज सुनकर मेरी बगल में बैठे कुरेशी साहब ने कहा—बस ऐसी ही आवाज कयामत के दिन आयेगी....आसमान लोहे का हो जायेगा....सूरज बहुत करीब आ जायेगा।

मैंने कहा—चलिये इसी बहाने कयामत झेलने की प्रेक्टिस तो हो रही है।

सात घंटों में हम केवल तीस किलोमीटर पहुँचे थे। वैसे इससे ज्यादा भी चल सकते थे लेकिन लगता था कि कोई जिन्न हमारी बस में बैठा हमें परेशान कर रहा था। हर बार कोई-न-कोई बला आ जाती है। हॉस पाइप फट गया, ऑयल सील कट गयी, गेयर फँस गया। कोई एक मर्ज हो तो कोई झाड़फूँक भी करते, तमाम बलायें मँडरा रही थीं बस पर। कलीम मियाँ बेचारे परेशान थे। एक नाले के पास बस रोककर बोले—जिन साहेबानों के वजू टूट गये हों नाले के पानी से बना लें।

नाले में काफी तेज बहाव था।

मैंने कहा—नाले का पानी पाक है कलीम मियाँ। बस को गुस्ल दे दीजिये।

कलीम मियाँ हमारा सफर कजा करते हुए बोले—बस आगे नहीं जायेगी। मैं किसी ट्रक वाले के साथ गुप्ताजी को खबर कर देता हूँ। दूसरी बस आ जायेगी।

शाम को सात बजे दूसरी बस आयी। आगे का हाल मत पूछिये।

एक माह के लंबे सफर के बाद अपने पापों को धोकर लौटा हूँ। हम पचास लोग गये थे। अड़तालीस वापस आये। दो वहीं रुक गये।

गुप्ताजी की बस सर्विस का एवरेज बुरा नहीं है।

❑

राज्य परिवहन की बस में

जब मैं इस भौतिक जीवन से निराश हो गया, तब कुछ भले आदमियों ने सलाह दी—"अरे पगले, इस तरह निराश होने से क्या होगा? हमारी मान और राज्य परिवहन की बस में बैठ जा!"

काका बोले—"जब कभी तुम्हारी काकी हमसे लड़ती है तब हम ऐसा ही करते हैं, तू भी ऐसा कर। माया-मोह से मुक्त हो जा।"

मैंने कहा—"काका, टैक्सी में बैठूँगा तो नहीं चलेगा?"

वह बोले—"चलेगा और बिलकुल चलेगा। आजकल टैक्सी-जीप वालों और राज्य परिवहन वालों में तगड़ा कंपटीशन चल रहा है। इस का लाभ उठा ले बच्चा। आना-जाना तो लगा ही रहता है।"

मैं घर गया। साफ धुला हुआ कुरता-पाजामा पहनने के बाद मैंने बच्चों को अंतिम रूप से प्यार किया। बीवी से कहा—"मैं जा रहा हूँ।"

मेरा दुर्भाग्य तो देखिए, बीवी ने यह तक नहीं पूछा कि कहाँ जा रहे हो। अपने देश में हम जैसे आदर्श पतियों की क्या दुर्गति हो रही है, देखा आपने? उसकी जगह दूसरी होती तो पूछती—"कब तक लौटोगे.... सुबह उठकर मंजन और ब्रुश करने के बाद ही नाश्ता करना....नौ बजे सो जाना....अपनी सेहत का ख्याल रखना....मेरे लिए कोई अच्छी-सी चौड़े बॉर्डर वाली साड़ी लेते आना।"

लेकिन इस वीरांगना ने कोई सवाल नहीं किया। नल पर गयी और पटक-पटककर कपड़े धोने लगी। लगा, जैसे पूरी अर्थ-व्यवस्था को निचोड़ कर रख देगी।

मैं इस भारतीय नारी को तीस सालों से जानता हूँ। मैं यदि उससे कहता कि मैं परिवहन निगम की बस में बैठने जा रहा हूँ तो आप यकीन कीजिए वह कहती— "अच्छी सीट पर बैठना ताकि जल्दी पहुँच जाओ।"

घर से अपना यह छोटा-सा विदाई-समारोह सम्पन्न कर मैं बस स्टैंड पर आ गया। यहाँ मेरे स्वागत के लिए परिवहन निगम की तीन आरामदेह गाड़ियाँ खड़ी थीं। नंगे रेडियेटर वाली बोली—" आओ हो ...कहाँ थे इत्ते दिन, बैठोगे नहीं क्या?"

मैंने कहा—"बैठूँगा क्यों नहीं? बैठने ही तो आया हूँ। मेरी वैतरणी पार कर देना मैया। अब तो तेरा ही सहारा है।"

राज्य-परिवहन में बैठने का प्रमाण-पत्र लेने मैं बुकिंग ऑफिस गया तो बताया गया कि होटल की परछी पर टूटी टेबल और कुरसी पर बैठा शर्मा नामक परिवहन-जीव पैसे लेकर प्रमाण-पत्र दे रहा है।

मैंने इस जीव के दर्शन किये। पूछा—"दादा, यह गाड़ी कहाँ जायेगी?"

शर्माजी ने मेरी ओर करुणामयी दृष्टि से देखा। फिर उन्होंने अपना दाहिना हाथ पाजामे की जेब में डालकर छोटे राजा बीड़ी का बंडल निकाला। सामने की जेब टटोलकर मिट्टी के तेल वाला लाइटर निकालकर उसे जलाने का धुआँधार प्रयास करने लगे लेकिन आग पकड़ ही नहीं रही थी। उन्होंने लाइटर का सिर नीचा किया और तीन-चार जोरदार झटके लगाकर दाहिने हाथ के अँगूठे की पूरी ताकत से लाइटर सुलगा ही लिया। फिर उस लाइटर से बीड़ी सुलगाई। एक लंबा कश लिया, धुआँ बाहर बस स्टैंड की तरफ फेंका और बोले—"हाँ....अब कहिए श्रीमान!"

शर्माजी के इस शिष्ट व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उनके लाइटर से तो पहले ही प्रभावित था। मैंने पूछा—" यह लाइटर राज्य परिवहन निगम का है क्या?"

वह बोले—"क्यों?"

मैंने कहा—"बिना धक्का खाये कमबख्त चालू ही नहीं होता।"

वह बोले—"परिवहन में काम करने वाले इसी स्तर का लाइटर रखते हैं ताकि यदि कभी उन्हें राज्य परिवहन निगम की बसों पर गुस्सा आये तो लाइटर के असहयोग से ही उनका मूड आफ हो जाये।"

मैंने कहा—"एक टिकिट दे दीजिएगा।"

शर्माजी ने पूछा—"कहाँ का दूँ श्रीमान्?"

मैंने कहा—"जहाँ का आप उचित समझें। हम तो बस, आज आपकी बस में बैठने के मूड से ही घर से निकले हैं।"

वह बोले—"चलती बस में कूदने की प्रैक्टिस है?"

मैंने कहा—"नहीं।"

वह बोले—"काँच तोड़कर बस से बाहर निकलना आता है?"

मैंने कहा—"नहीं।"

वह बोले—"फिर क्यों राज्य परिवहन को यात्रा का श्रेय देने पर तुले हो। ट्रेन एक घंटा लेट है....उसी से चले जाओ; खामोखां एक झटके में ही टें बोल दोगे।"

मैंने कहा—"बहुत सोच-समझकर घर से निकला हूँ दादा आपकी बस मे बैठने। आप तो बस प्रमाण-पत्र दे दीजिए ताकि मुझे कोई अफसोस न रहे कि मैंने अंतिम क्षणों में कोई गलत काम कर डाला।"

पास खड़े कंडक्टर महोदय ने मुझे याचना-भरी नजरों से देखा। जैसे कहना चाहता हो—"टिकिट लेकर गरीब के पेट पर क्यों लात मार रहे हैं आप?"

शर्माजी ने मेरा टिकिट काट दिया।

मैंने अपने कुरते की जेब से पाँच हजार के बीमे की पॉलिसी के कागज निकाले और परिवहन-निगम का प्रमाण-पत्र पॉलिसी के कागजातों के बीच सम्हालकर रख दिया। मैंने प्रताप भैया को मन ही मन धन्यवाद दिया कि जिन्होंने एक हफ्ते पहले मुझे अपनी जिन्दगी का बीमा करवाने पर राजी कर लिया था। उन्हें क्या पता था कि एक हफ्ते बाद ही मैं राज्य परिवहन की बस में बैठ जाऊँगा।

थोड़ी देर में नगर के गणमान्य नागरिक आकर बस मे बैठने लगे तो मुझे अच्छा लगा। मैं यह सोचकर आश्वस्त हुआ कि चलो, मैं अकेला ही नहीं हूँ इस सफर में।

अचानक मेरी नजर गुमान सेठ पर पड़ी। उन्होंने भी शर्माजी से प्रमाण-पत्र लिया और मेरी सीट पर आकर बैठ गये।

मैंने कहा—"गुमान भाई, आप तो अपनी जीप से आते-जाते हैं। आज बस में कैसे?"

वह बोले—"बस समझ लो, आज राज्य परिवहन की बस में बैठने का मूड बन गया।"

ड्राइवर की सीट के सामने लिखा था—"सबका मालिक एक। ईश्वर आपकी यात्रा सफल करे।"



आशीर्वाद की मुद्रा में

उनके जिस्म में एक कीड़ा है। वह चुप नहीं बैठता। रेंगता है। वे आशीर्वाद की मुद्रा में आ जाते हैं।

कवियों को देते हैं, लेखकों को देते हैं और शादी के मौसम में वर और वधु को देते हैं। जब कभी देते हैं, सशक्त आशीर्वाद ही देते हैं। पिछली बार जिस वर को दिया था वह शादी के दो माह बाद एक लड़की के साथ भाग गया। बाद में वधु को भी दिया। वह बैंक लोन से सिलाई क्लास चला रही है।

सुबह मुर्गा बोलते ही कीड़ा उठता है। वे अपने बच्चों को आशीर्वाद देते ्र तब कहीं जाकर प्रेशर आता है। फिर बड़े घर से लौटने के बाद मुहल्ले के बच्चों को आशीर्वाद देते हैं। बच्चे सफल नागरिक बन रहे हैं। सुबह-सुबह एक मोटर-साइकिल का टायर ब्लेड से काटकर क्रांतिकारी वातावरण बना रहे हैं। ऑनर परेशान हुए। ऐसी क्रांति वे पहली बार महसूस कर रहे थे। उनके पास पहुँचे। बोले, "आपके मुहल्ले के बच्चों ने मेरा टायर साफ़ कर दिया।"

वे मौन रहे। सोचने लगे, इसे आशीर्वाद कैसे दूँ। बोले, "मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। आपको मुहल्ले में पहली बार देखा है और वह भी बिना किसी खरोंच के।"

सज्जन बोले, "आपकी कृपा है।"

वे आशीर्वाद देने की मुद्रा में स्थापित हो गये। बोले, "मुझे देखो। बच्चों ने तीस सालों में मेरे टायर-ट्यूब दोनों खराब कर दिये। चेन उतार डाली। हवा खोल

दी। मैं फिर भी युवा प्रगति के प्रति आशावान हूँ।"

सज्जन ने देखा, उनके चेहरे पर संतोष था। जैसे कोई बहुत बड़ी पीड़ा के स्खलन के बाद होता है।

सज्जन निरुत्तर हो गये। उनकी ओर देखने लगे। वे जाते-जाते बोले, "मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

सुबह ठीक ढंग से शुरू हुई थी। वे ताज़गी फ़ील कर रहे थे। कीड़ा शांत बैठ गया था। उन्होंने धोती ऊपर उठाई और साइकिल पर बैठ गये।

रास्ते में सबसे पहले नीम का पेड़ मिला। वे रुक गये। बोले, "प्रसन्न रहो। इस वर्ष निबौरियाँ मीठी हों।"

नीम के दरख्त ने अपनी शाखें हिलाकर अभिवादन किया। सामने से डाकिया आ रहा था। उसने भी अभिवादन किया लेकिन खेद सहित।

आशीर्वाद का कीड़ा रेंगकर बाहर आया। बोला, "डूब मरो। तुम कवि हो या भड़भूंजे। दो कौड़ी की जगह पर भी कामयाब नहीं हो सके।"

उन्हें आत्म-ग्लानि नहीं हुई। वे सीजण्ड थे। साइकिल पर बैठ गये। सीट उनका बोझ एक लंबे अर्से से ढो रही थी—एक सौत की तरह।

चौक पर पहुँचे। एक लेखक दिख गया। नहीं, वह युवा कवि था। बाहर से लेखक की तरह दिखता था। उन्होंने सोचा—तीस साल से एक ही चश्मा लग रहा है। अब उसे बदल देना चाहिए। बुद्धिजीवी भी पहचान में नहीं आया।

कवि पैदल आ रहा था। उन्हें देखकर रुका; झुका नहीं। उनका कीड़ा तेजी से रेंगने लगा। वे बोले, "नई कविता छोड़कर आजकल तुम गजलें लिख रहे हो। अच्छी बात नहीं है।"



कवि ने उनकी ओर देखा। गला साफ़ किया और जमीन पर थूककर उन्हें देखने लगा। वे बोले, "कुंठा के शिकार हो। लेखन के फेफड़े साफ रखो। स्थापितों को स्वीकार करना आखिर कब सीखोगे। बलगम नुक़सान देता है।"

उसके अंदर रेंगते कीड़े ने कहा, "तुम बेवकूफ़ हो। नाहक कोशिश कर रहे हो। वह आशीर्वाद नहीं लेना चाहता और तुम हो कि देने के लिए मरे जा रहे हो।"

वे बोले, "हमने जब कविताएँ लिखनी शुरू कीं तब बड़े लोगों के चरण भी स्पर्श किये थे।"

युवा कवि बोला, "उन दिनों बड़े कवि अपने चरण दिन में तीन बार धोते थे।"

वे बोले, "साहित्य गंदगी से नहीं गंदी विचारधारा से घृणा करता है।"

युवा कवि बोला, "मैं केवल आपसे घृणा करता हूँ। समझे?"

वे आगे बढ़े। कीड़ा जोरों से रेंग रहा था।

एक लेखक सामने आ गया। व्यंग्यकार था लेकिन लेखक का रुतबा रखता था। वे रुक गये। बोले, "आपका नया व्यंग्य-संग्रह आया है।"

कीड़ा बोला, "अपनी हैसियत देखो। जिंदगी-भर बिन पेंदी के लोटे की तरह लुढ़कते रहे। आगे बढ़ो। यह गेयर में नहीं आयेगा।"

वे बोले, "चुप रहो। मेरे सामने बच्चा है। मैं प्रतिबद्ध साहित्यकार हूँ।"

लेखक बोला, "बहुत दिनों बाद दिखे। धंधा कैसा चल रहा है?"

वे बोले, "सीज़न ज़रा डल है। सुना है आपकी किताब का विमोचन ग्वालियर में हो रहा है। यहाँ होता तो हमें लाभ मिलता।"

लेखक ने कहा, "दरअसल यहाँ आशीर्वाद का रेट ज़रा ज़्यादा है। जब से आप फील्ड में आये हैं भाव बढ़ गये हैं।"

वे बोले, "कोई बात नहीं। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।"

लेखक बोला, "आप अपनी शुभकामनाएँ वी.पी. से भिजवा दीजिएगा।"

कीड़ा ठहाका मारकर हँसा। बोला, "बेटा, अपने आशीर्वाद की पोंगली बना लो। कभी काम आयेगी।"

एक कुत्ता तीन टाँग से घिसटता हुआ पास आया। उनके चरणों पर गिरकर बोला, "आपके आशीर्वाद की जरूरत है। मुझे कम्पनसेशन दिलाइये।"

उन्होंने पूछा, "तुम्हारी यह हालत किसने बनायी?"

कुत्ता बोला, "एक टाँग उठाकर ट्रक पर पेशाब कर रहा था, उसी का परिणाम है।"

वे तुरन्त ट्रक ऑनर के पास गये। कुत्ता साइकिल के केरियर पर बैठा था।

ट्रक ऑनर ने उन्हें देखा। वे अपनी गद्दी से उतरकर नीचे आये। उनके चरणों पर झुकते हुए बोले, "बहुत दिनों से आप नहीं दिखे। आपके आशीर्वाद के बिना किसी आखबार में मेरा नाम ही नहीं आ रहा है।"

वे आशीर्वाद देने की मुद्रा में आ गये।

कीड़ा बोला, "अक्ल से काम लो। बिको मत।"

कुत्ते ने कहा, "मेरी टाँग का क्या होगा?"

वे बोले, "कुत्ते की जात हो न आखिर। बीच में मुँह मारने की आदत नहीं गयी।"

कुत्ता बोला, "आप ही हमारे मार्गदर्शक हैं। सर्वहारा के रक्षक हैं। सामतवादी विचारधारा कैसे नष्ट होगी?"

वे बोले, "ये मेरा प्राइवेट मामला है। तुम चुप रहो। जानता हूँ गलती तुम्हारी है। तुम्हें पेशाब करने की तमीज नहीं। किसने कहा था इनकी ट्रक पर पेशाब करो। खुद ही गलती करोगे और मेरे आशीर्वाद के सहारे कम्पनसेशन माँगोगे।"

पास खड़ी ट्रक मुस्कुराने लगी। वह सीना ताने खड़ी थी। सीने पर लिखा था—बुरी नजर वाले तेरा मुँह काला।

ट्रक ऑनर ने कॉफ़ी का प्याला आगे बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए। ठंडी हो रही है। ऐसी छोटी-मोटी घटनाएँ तो रोज़ ही होती रहती हैं।"

अबकी बार कीड़ा दुबककर बैठ गया था। इस बार वे उस ग़रीब पर हावी हो चुके थे।



मंत्री जी प्रसन्न हैं

इधर सरकार ने नस्ल सुधार कार्यक्रम के अधीन सांडों की नियुक्ति के लिए आवेदन पत्र आमंत्रित किये और उधर मंत्री जी ने पशुचिकित्सक को बुलाकर कहा "जरा हमारा भी ध्यान रखना।"

पब्लिक सर्विस कमीशन ने विधिवत विज्ञापन जारी किये गए, लोगों ने अपनी-अपनी सिफारिशें जमाईं, कमीशन के मेम्बरों से सम्पर्क साधे, इन्टरव्यू हुए और योग्य उम्मीदवारों का चयन करने के बाद हर पशुचिकित्सालय में नस्ल सुधार के लिए एक सरकारी सांड एपाइंट कर दिया।

क्योंकि मंत्री जी स्वयं इस नियुक्ति में रुचि रखते थे, इसलिए उनके क्षेत्र में जो अस्पताल था, वहाँ प्रथम वरीयता क्रम में सांड आ गया। मंत्री जी ने पशुचिकित्सालय में 'सांड स्वागत समारोह' आयोजित करवाया और उसकी अध्यक्षता करते हुए कहा, "बहुत दिनों से हम अपने क्षेत्र के लिए सांड की आवश्यकता महसूस कर रहे थे। इस वर्ष केन्द्र से हमें नस्ल सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत अच्छा अनुदान प्राप्त हुआ है और इसलिए हमने पूरे प्रदेश में सरकारी सांड नियुक्त कर दिये हैं। आप सबसे अनुरोध है कि इस योजना का अधिक से अधिक लाभ उठाएँ। आपकी सेवा के लिए यह सांड पशु चिकित्सालय में हमेशा उपलब्ध रहेगा।"

आभार प्रदर्शन करते हुए पशुचिकित्सक ने कहा, "यह हमारे मंत्री जी का ही प्रयास है कि आज हम सांड के मामले में आत्मनिर्भर हुए हैं। उन्होंने व्यक्तिगत रुचि लेकर इस पशु-चिकित्सालय में निःशुल्क सांड सेवा उपलब्ध कराई, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी हमारे मंत्री जी नस्ल-सुधार में बराबर रुचि लेते रहेंगे तथा हमें मार्गदर्शन देंगे।"

कार्यक्रम तो ठीक-ठीक निपट गया लेकिन स्वागत समारोह के ठीक दूसरे दिन ही एक दुर्घटना यह हो गई कि इस सरकारी जानवर ने एक काश्तकार की भैंस को बल-प्रयोग से अपाहिज कर दिया। व्यवस्था प्रजातांत्रिक थी, इसलिए काश्तकार शिकायत लेकर मंत्री जी के पास आया। नस्ल सुधार कार्यक्रम को सफल बनाना था और जनता को इस कार्यक्रम के प्रति आकर्षित करना था, इसलिए मंत्री जी ने इस शिकायत पर तुरन्त जाँच का आदेश पारित कर दिया और शिकायत पर टीप लिख दी— पशुचिकित्सक साँड सहित मुझसे सम्पर्क करें। मैं उनसे चर्चा करना चाहूँगा।"

गोधूली बेला में पशुचिकित्सक आए। उन्होंने साँड को मंत्री जी के दरवाजे पर बाँध दिया और बाहर लॉन में रखी कुर्सी पर बैठ कर मंत्री जी के आदेश की प्रतीक्षा करते रहे। फिर मंत्री जी ने उन्हें अन्दर बुलाया और कहा, "आपके खिलाफ बड़ी शिकायतें हैं। आपने एक गरीब काश्तकार की भैंस को अपाहिज कर दिया। मैं चाहूँ तो आपको अभी सस्पेंड कर सकता हूँ। बोलिए, आपका क्या कहना है? आप अपने अधीन कर्मचारियों पर कन्ट्रोल भी नहीं रख सकते? एक मंत्री के इलाके में यह धाँधली नहीं चलेगी। जवाब दीजिए।"

पशु-चिकित्सक ने विनम्रतापूर्वक कहा, "सर, दरअसल अभी यह जानवर अपने डिपार्टमेंट में नया है। फ्रेश कैंडिडेट है। मैं उसे ट्रेनिंग दे रहा हूँ। धीरे-धीरे ट्रेंड हो जायेगा। मैं उसकी ओर से क्षमा माँगता हूँ। उसे सस्पेंड कर देंगे तो उसका कैरियर खराब हो जायगा। नयी नौकरी है, इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस पर सद्भावनापूर्वक विचार करें।"

मंत्री जी गरम हो गए, बोले, "अंडर ट्रेनिंग है तो क्या दूसरों की बहू-बेटियों की टाँग तोड़ता फिरेगा? देश के लिए पशु-धन कितना आवश्यक है, आप जानते हैं? सरकार की यह पायलेट स्कीम है और इसमें अनुशासनहीनता बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होगी। मैं तत्काल प्रभाव से सस्पेंशन आर्डर देता हूँ। आप तीन दिन की अवधि में घटना की पूरी जाँच कर मुझे अपना प्रतिवेदन दीजिए।"

पूरे क्षेत्र में मंत्री जी की वाहवाही हो गई। जनता भी आश्वस्त हो गई कि इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन सही ढंग से होगा। जाँच होती रही और सस्पेंशन पीरियड में साँड मंत्री जी के दरवाजे पर बँधा रहा।

प्रतिवेदन आ गया और जैसा होता आया है, रिपोर्ट सरकारी कर्मचारी के हित में थी और सारा दोष किसान की भैंस का ही पाया गया। प्रतिवेदन में भैंस के चरित्र पर भी संदेह व्यक्त किया गया था तथा प्रशासनिक व्यवस्था मे शासकीय कर्मचारियो को उचित संरक्षण प्रदान किये जाने पर जोर दिया गया था।

मन्त्री जी ने प्रतिवेदन देखा और उस पर अपनी आदत के अनुसार फिर टीप लगा दी—"मैं सांड के मनोवैज्ञानिक क्रियाकलापो पर ज्वाइंट डायरेक्टर पशु-पालन विभाग तथा प्राचार्य पशु चिकित्सा महाविद्यालय से व्यक्तिगत चर्चा करना चाहता हू। इस बीच मे साड की गतिविधियों का प्रत्यक्ष अध्ययन भी करना चाहता हूँ, इसलिए साड को मेरे निवास पर एक हफ्ते के लिए शासकीय खर्च पर रखा जाए।"

खूब अखबार बाजी हुई। विरोधी पक्ष सक्रिय हो गया। अखबारो मे जो समाचार छपे, उनकी बेनर लाइने इस प्रकार थी—

—सरकारी साड के आतंक से जनता त्रस्त।

—सरकारी संपत्ति का मंत्री जी द्वारा दुरुपयोग।

—सत्ता के दरवाजे पर बँधा प्रशासन का सांड।

—मंत्री जी द्वारा साड-सेवा का अनुचित लाभ।

अनेक अखबारों ने इस पर सम्पादकीय भी छापा और प्रजातांत्रिक प्रणाली के गिरते हुए स्तर पर चिंता व्यक्त की। इस सन्दर्भ मे तृतीय वर्ग कर्मचारी संघ का एक प्रतिनिधि मडल भी मंत्री जी से मिला और प्रतिनिधि मडल ने साड के पक्ष मे मंत्री जी को एक ज्ञापन भी दिया।

विपक्ष के नेताओ ने माँग की—'मंत्री जी अपना वक्तव्य दें।'

लेकिन मंत्री जी ने एक अनौपचारिक भेंट मे प्रेस को जानकारी दी कि यह एक नीति निर्धारण का प्रश्न है तथा मुख्यमंत्री से चर्चा किए बिना वे किसी प्रकार का वक्तव्य देना नहीं चाहते। अभी पूरी स्थिति जाँच प्रक्रिया से गुजर रही है, इसलिए भी कोई वक्तव्य देकर वे विवाद की स्थिति पैदा नहीं करना चाहते। यह पूछे जाने पर कि विपक्ष की भूमिका को वे किस नजर से देखते हैं, उन्होने कहा, "प्रजातन्त्र मे विपक्ष को आरोप लगाने की पूरी छूट है। मैं कोशिश करूँगा कि वस्तुस्थिति शीघ्र ही जनता के सामने आ जाए।"

विधानसभा का बजट कालीन सत्र प्रारम्भ हुआ।

एक विपक्ष के सदस्य ने सदन में सवाल किया, ''क्या मंत्री जी यह बतायेंगे कि उनके निवास स्थान पर सरकारी साँड क्यों बँधा है? और यदि बँधा है तो क्या वह मंत्रीजी के व्यक्तिगत उपयोग के लिए है?''

मंत्री जी ने जवाब दिया, ''विपक्ष ने जो आरोप लगाया है, वह चरित्रहनन के उद्देश्य से प्रेरित है। बिना जाँच किये यह बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है कि मेरे दरवाजे पर कोई साँड बँधा है। इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से जाँच कर मैं सदन में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करूँगा क्योंकि यह आरोप न केवल दुर्भावनापूर्ण है बल्कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में पद की प्रतिष्ठा से जुड़ा है, इसलिए मैं एक जाँच कमीशन बिठाये जाने की घोषणा करता हूँ ताकि वस्तुस्थिति की सही जानकारी हो। जाँच कमीशन तीन वरिष्ठ पशुचिकित्सकों का होगा जो अपनी रिपोर्ट सदन को तीन माह की अवधि में प्रस्तुत करेगा।''

अब मामला प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनुसार जाँच कमीशन के अधीन था। जाँच कमीशन ने नोटिस जारी कर दिया था कि जो गवाह इस सम्बन्ध में जानकारी रखते हों, अपने हलफनामे जाँच कमीशन के समक्ष प्रस्तुत करें।

यह तो प्रारम्भिक चरण था। इसके बाद गवाहों के परीक्षण और प्रतिपरीक्षण का दौर चलेगा। वैसे सदन ने तीन माह की अवधि निर्धारित की थी लेकिन लोग जानते थे कि यदि तीन माह में जाँच कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी तो यह जाँच कमीशन की गरिमा के अनुरूप नहीं होगा।

मंत्री जी वापस लौट रहे थे।

हवाई अड्डे पर उनके स्वागत के लिए भीड़ जमा थी। एक कोने में पशुचिकित्सक भी पुष्पहार लिये खड़े थे। मंत्री जी ने उनकी ओर देखा और मुस्करा कर आगे बढ़ गए।

❑

विधायक का दर्द : फिल्म तर्ज पर

मन्त्रिमण्डल के विस्तार के बाद उनकी स्थिति लगभग यही थी कि "पिंजरे के पंछी रे, तेरा दरद न जाने कोय।" इसके बाद मुझे याद नहीं आ रहा है कि कवि प्रदीप ने क्या कहा है लेकिन इतना अवश्य है कि उन्होंने यह बात कही है कि "कह न सके तू अपनी कहानी" और "भीतर भीतर रोय रे।" कुल मिलाकर इस प्रजातंत्र के पिंजरे में वे विस्तार के बाद में दु:खी हैं।

उन्हें देख कर कई स्थितियाँ मेरे सामने आती हैं। चेहरा देखता हूँ तो लगता है जैसे वैजयंतीमाला मधुमति बन कर खड़ी है और आह्वान दे रही है, "आजा रे, मैं तो कब से खड़ी इस पार ये अँखियाँ थक गई पथ निहार।"

वे भी पथ निहार रहे थे कि सजनवा उन्हें इस बार कोई कैबिनेट नहीं तो राज्य-मंत्री का पद जरूर देगा। सजनवा जब चंडीगढ़ से दिल्ली होता हुआ इस प्रदेश में आया तब उनकी स्थिति यह थी कि "घर आया मेरा परदेसी, प्यास बुझी मेरी अँखियन की।" लेकिन केवल अँखियन की प्यास बुझने से काम नहीं चलता, लाल बत्ती वाली गाड़ी की प्यास, हरी लॉन वाले बंगले की प्यास, टेबल पर ढेर सारी फाइलों की प्यास, कोटा और परमिट देने की प्यास, बड़े अधिकारियों और व्यापारियों के काम निपटाने की प्यास, यानि कि इस तरह कई टाइप की प्यास थी जो उनके अन्दर थी उम्मीद थी कि इस बार बुझेगी, लेकिन नहीं बुझी। सजनवा बैरी हो गया बिल्कुल। रेवड़ी की तरह कई विभाग नये विधायकों को बाँट दिए और वे केवल विधायक के विधायक रह गए। अब ऐसी हालत में उन्हें पिंजरे का पंछी न कहें तो क्या कहें।

आगे लिखना समाचार यह है कि उनकी स्थिति "हमारा जै गोपाल बाँचना जी" वाली हो गई है। सोचा था कुछ और हो गया कुछ। क्या करें, उनके भाग्य में विरह का दुःख था। चार साल तो काट दिए जैसे-तैसे। अब मुख्यमंत्री ने थोड़ा-सा

विस्तार करने की घोषणा की थी तो उनके मुँह में पानी आ गया था। साहित्यकार इसे कहते हैं जिजीविषा का जागृत हो जाना। अचानक यह जिजीविषा अब जागृत हो गई थी और वे कूदने लगे थे अपने विधानसभा क्षेत्र में। अब आप कहेंगे कि इस पर भी फिल्मी गीत फिट करो नहीं तो हम हैं तुमको जानें। जब पूरी बात फिल्मी गीतों में कह रहे हो तो यह भी कहो! कोई फिल्मी गीतकार होता और डायरेक्टर उससे कहता तो वह पाँच गीत इसी स्थिति पर लिख देता। आपने जेल जावाग देखी होगी। उसमें गोरी कहती है— "मोहे भूल गये साँवरिया।" बस समझ लीजिए कि यही हालत थी हमारे विधायक की। बेचारे ने अपने विधानसभा क्षेत्र में स्वागत द्वार बनवा दिए थे, घी का दिया जला लिया था। कार्यकर्ता स्वागतगान का पूरा रिहर्सल कर चुके थे, बिल्कुल इसी तरह जैसे स्वर्गीय मी. एच. आत्मा ने गाया था, "मैं घी का दिया जलाऊँ रे घर आओ।" सब सत्यानाश हो गया। बड़ी मुश्किल से देहात से शुद्ध भैंस का घी भिड़ाया था और वे जिस ड्रेस में राजधानी गए थे उसी ड्रेस में वापस आ गए। उनके चाहने वालों पर क्या बीती होगी इसी बात की कल्पना आप नहीं कर सकते।

सारे अरमान दिल के दिल में रह गए। "बहारो फूल बरसाओ मेरा महबूब आया है" गाने के लिए कार्यकर्ता तैयार खड़े थे लेकिन जब महबूब बिना मंत्रिपद लिये वापस लौट आया तो जो फूल मतदाताओं की टोकरी में रखे थे वे वहीं के वहीं सड़ गए। जब महबूब ही फूल सम्मान के लायक नहीं हुआ तो क्या फूल बरसाते! देखा आपने कितनी दु:खद स्थिति निर्मित कर दी थी सजनवा ने।

उधर विधायकजी की हालत यह थी कि "जो मैं ऐसा जानती प्रीत किए दु:ख होय, नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करियो कोय", याने कि फालतू गया रे तुम्हारे गुट में। इसे और अधिक प्रभावशाली ढंग से मुकेश की आवाज में कहूँ तो होगा कि "प्रीत लगा के मैंने ये फल पाया, सुध-बुध खोई चैन गँवाया।" बेचारा छटपटा रहा है। कभी इस करवट तो कभी उस करवट। कहीं भी चैन नहीं मिल रहा है। डाकबंगला खाने को दौड़ता है। तो ये हालत है भइया हमारे विधायकजी की। जिस पर गुजरती है वही जानता है।

अब फिर लौट आइए सजनवा पर। निर्दयी ने क्या हालत कर दी हमारे फूल जैसे विधायक की। राजकुमारी का प्रसिद्ध गीत है जिसकी बीच की पंक्तियाँ ऐसी हैं कि 'कोई जग जाके बइद बुलाओ... आके धरे मोरी नारी... नजरिया की मारी, मरी मोरी गुइयाँ।' अब हमारी इस गुइयाँ की हालत भी देखिए। बैदराज जी उनकी नाड़ी

धर के बैठे हैं और समझा रहे हैं, "जायेगा जब यहाँ से कोई न साथ देगा दो गज कफन का टुकड़ा, तेरा लिबास होगा।" इसका भावार्थ इस प्रकार है कि ये तो चला चली का मेला है। व्ही पी चले गए, व्ही सी चले गए। अरुण गए, आरिफ गए। लेकिन पाँच साल बाद की स्थिति का वर्णन इस गीत में है जो वैदराज जी विधायक जी की नाड़ी पकड़ कर उन्हें समझा रहे हैं और सान्त्वना भी दे रहे हैं कि "कोई लाख करे चतुराई, करम का लेख मिटे ना रे भाई।" इस गीत का भावार्थ वैदराज जी के अनुसार यह है कि "तेरी किस्मत में मंत्री होना नहीं लिखा है बच्चा," "तू चतुराई करेगा लेकिन तेरे करम का लेख नहीं मिटेगा और पाँच साल बाद तुझे टिकिट भी नहीं मिलेगी तब तेरे पास दो मीटर का कुरता ही होगा।" अब आप हमसे यह मत पूछना कि ये करम का लेख क्या है। यह करम का लेख आप हमारे विधायकजी से ही पूछें जो उन्होंने चुनाव जीतने के चार साल बाद तैयार किया है। भावार्थ समझाने में हम कमजोर हैं इसलिए आपको जैसा-तैसा समझा दिया है। आगे आप खुद समझदार हैं क्योंकि हर पाँच साल बाद आप इसी तरह के विधायक चुनकर कई सालों से विधानसभा में भेज रहे हैं।

यह मैने एक बहुत ही घरेलू पारिवारिक किस्म का चित्र आपके सामने रखा जो केवल हमारे सजनवा के कारण ही बना है। अब देखिए वैदराज जी की सान्त्वना पर अपने विधायक जी क्या विचार व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं, "सूनी सेज, गोद मेरी सूनी, मरम न जाने कोय छट-पट तड़पे प्रीत बेचारी, ममता आँसू रोय ना कोई इस पार हमारा ना कोई उस पार।" और इसके बाद फिर इस गीत के स्थायी अंतरे पर आ जाइए "सजनवा बैरी हो गए हमार।" उनके कहने का मतलब यह है कि मंत्री पद नहीं मिलने से उनके राजनीतिक जीवन में सूखा पड़ गया है, नहीं तो उनकी गोद भी हरी हो जाती। एक बार सजनवा उनकी गोद भर देते तो बेड़ा पार हो जाता अब तो हालत यह है कि इस पार मंत्री बनने की उम्मीद नहीं है और उस पार हाईकमान से दुबारा टिकिट मिलने की उम्मीद नहीं है। समझ में आया आपके?

हमारा मतलब फिल्मी गीत नहीं है, हमारा उद्देश्य है विधायक जी के दु:खों का वर्णन करना, इसलिए यदि आप असली बात को पकड़ कर रखेंगे तो पूरा गीत भी समझ में आएगा और यदि केवल सजनवा और बैरी शब्द को ही पकड़ कर बैठे रहोगे तो हम क्या कर सकते हैं।

❑

नेताजी की बैठक में बेशरम

उनकी बैठक में उनके अलावा जिस वस्तु ने मुझे प्रभावित किया था, वह एक बेशरम का पौधा था, जिसे उन्होंने एक देशी मिट्टी के गमले में स्थापित कर कमरे के एक कोने में सजा रखा था। मेरे विचार में देश के वे पहले आदमी थे जिन्होंने बेशरम को सम्मान का यह दर्जा दिया था। गमला तो वे स्टेनलेस स्टील का भी खरीदने की हैसियत रखते थे, लेकिन उन्होंने यह सोचकर मिट्टी के गमले को प्राथमिकता दी थी कि बेशरम जैसे सदाबहार पौधे को सार्थकता केवल इस देश की मिट्टी ही प्रदान कर सकती है।

उनकी आदत लगभग इसी तरह का काम करने की थी। पिछली बार वे बंजर जमीन से एक युवा पौधा ले आए थे, और रचनात्मक कार्यों के बहाने उसे उपयोगी भी बना चुके थे, दिखने में तो वह अभी भी पौधा ही था। लेकिन उसके दाहिने हाथ के रूप में उन्हें हवाई अड्डे से लेकर मार्केट हाउस और आम सभाओं तक पहुँचाकर अपनी सार्थकता का परिचय देता था, सरकारी दफ्तरों के वे सारे काम, जो उनके इशारे पर सम्पन्न होने की स्थिति में आते, इसी पौधे के माध्यम से होते थे। उसे पौधा कहना मुझे कतई अच्छा नहीं लग रहा है, लेकिन मेरी विवशता है और इसका कारण यह है कि उनकी बैठक में अगर उक्त दोनों वस्तुओं के बाद कोई तीसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु थी तो वह पौधा ही था।

मिट्टी से यह पौधा सीधे तो नहीं जुड़ा था, लेकिन एक लाल रंग की कार के टायर के माध्यम से वह देश की मिट्टी को टच जरूर करता था। किसी देहात की धूल भरी कच्ची सड़क पर जब टेसुओं-सी लाल यह गाड़ी चलती थी, तो लगता था

जैसे बसन्त लगते ही हरी शाखो के बीच कोई राजनीति का सुर्ख पलाश तबीयत मे खिल गया है।

कुछ इसी तरह का काम्बीनेशन उन्होने अपनी बैठक मे रखे इस बेशरम के पौधे के आसपास निर्मित कर रखा था। बैठक मे लगी खिडकी पर उन्होने सुर्ख लाल परदे लगा रखे थे, जो पलाश का भ्रम पैदा करते थे।

उनका अधिक समय बैठक मे ही बीतता। या यूँ कहे कि बेशरम के इस गमले के आसपास ही वे अपनी दिनचर्या निर्मित करते थे। वे इसलिए भी प्रसन्न थे कि आभिजात्य वर्ग की उनकी इस बैठक मे बिना धूप और पानी के बढने वाला यह सदाबहार पौधा भी था, जिसे लोग हिकारत की नजर से देखते है।

यह खबर लगभग पूरे शहर मे फैल गई कि दादाजी ने इस बेशरम के पौधे को किसी राजनीतिक चाल की तरह ही कुछ खास मतलब से अपने करीब रखा है। यह खबर कुछ लोगो ने दिल्ली तक भी पहुँचा दी। जैसी कुछ लोगो की आदत होती है प्रधानमंत्री को भी लम्बे पत्र लिखे गए कि दादाजी की गतिविधियाँ इन दिनो पार्टी के हित मे नजर नही आ रही हैं तथा उनकी बैठक मे अवाछित तत्त्व हमेशा पाए जाते है। यदि आलाकमान को यकीन न हो तो किसी पर्यवेक्षक को भेजकर इस बात की सतुष्टि कर ले। उनकी बैठक बेशरम का एक अड्डा बन गई है।

दूसरे प्रकार के लोग भी थे, जिन्होने यह पत्र भी लिखे कि दादाजी हरियाली को बजर जमीन से उठाकर आम आदमी के कमरे तक पहुँचाने की विकासशील गतिविधियो मे सक्रिय भूमिका अदा कर रहे है।

बहरहाल, दोनो तरह के पत्र दिल्ली पहुँचने लगे थे।

मैंने इस बेशरम की चर्चा लोगो से सुन ही ली थी और यही सोचकर आया था कि इस बात का पता लगाऊँ कि दादाजी के इस गमले के पीछे आखिर किस बात का चक्कर है?

थोडी देर देश की विदेश नीति, काश्मीर मे बिगडते हालात आदि पर चर्चा करने के बाद मै बेशरम पर आ गया। मैंने कहा—दादाजी, बाकी सब तो ठीक है, लेकिन इन दिनो आपके कमरे मे लगे इस बेशरम पर लोग तरह–तरह की अटकले लगा रहे हैं मै यह भी जानता हूँ कि आप जो भी कदम उठाते हैं, बहुत सोच–समझकर ही

उठाते हैं, इसलिए बेशरम का आपकी बैठक मे होना जरूर कोई खास अर्थ रखता है मैं आपके विचार जानना चाहूँगा।

उनके होठ और कनपटी के बीच गालो पर एक हल्की-सी लकीर उभरी, जिससे मैंने अदाजा लगाया कि वे मुसकुरा रहे हैं। बड़े आदमी तो थे ही, इसलिए अपनी प्रसन्नता वे कुछ इसी तरह प्रकट करते थे। इसे भी लोग दो तरह से ही लेते थे। एक खेमा कहता था वे प्रसन्न हैं और दूसरा खेमा कहता था, उनके चेहरे पर कुटिल मुस्कान है।

बहुत धीमे स्वर से उन्होंने बात शुरू की—लोगो की तो आदत होती है अटकले लगाने की, मैं तो एक बात जानता हूँ कि मै जो कुछ करूँगा, उसके पीछे जनहित की भावना जरूर होगी और मैं यह पूछता हूँ कि आखिर इस बेशरम ने क्या बिगाड़ा है लोगो का इसे किसी बैठक मे रहने के अधिकार से क्यों वचित किया जाए? यह कोई गुलाब तो नही कि गेस्वानो मे लगकर यह महसूस करे लगा कि वह स्वतंत्र भारत मे जी रहा है। बजर जमीन मे ठोकरें खाते इस पौधे को भी आजादी का एहसास दिलाना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है और मैं पूछता हूँ कि यदि मैं उनके अधिकारों की लड़ाई मे शामिल हूँ तो उससे लोगो को पीड़ा क्यो होती है? और साफ और सीधी बात तो यह है कि देश की राजनीति मे उनके अस्तित्व को नकारने का कोई औचित्य मुझे नजर नहीं आता हम आज स्थितियो को हरियाली के आधार पर ही कैलकुलेट करते हैं, और यह गुण तो इस बेशरम में है फिर क्यो इस प्रकार का विवाद पैदा किया जाए।

मैंने कहा—मैंने सुना है कि प्रतिपक्ष विधानसभा मे यह प्रश्न भी इस बार रखने वाला है।

वे बोले—मुझे मालूम है इस क्षेत्र को हरियाली देने का दायित्व हम पर है प्रतिपक्ष पर नही । हम तो बस अपना काम कर रहे हैं हमने अपने कार्यकर्ताओ को निर्देश दे रखे है कि हर गाँव की सीमा पर वे बेशरम लगायें कई सरपचो का सहयोग भी हमे मिल रहा है। प्रतिपक्ष का जवाब तो हम आँकड़ो मे दे देंगे।

मैंने पूछा—वह कैसे?

वे बोले- प्रतिपक्ष का यही प्रश्न होगा कि आजादी के बाद गाँव की

हरियाली भूख गई है जैसे ही यह असेम्बली क्वेश्चन आया, हम तत्काल अधिकारियों को हरे दिखने वाले पेड़ों की जानकारी देने का मेमो इशू कर देंगे और जैसे ही जानकारी मिली, हम उसे प्रतिपक्ष के मुँह पर मार देंगे और कहेंगे—अंधे हो तुम्हें गाँवों मे हरियाली नही दिखती तो देख लो यह आँकड़े गाँवों में सिवाय हरे पेड़ों के कुछ भी नही है हम गाँव की सीमा पर यह हरियाली रोपने मे जो खर्च कर रहे हैं, वह इसी दिन के लिए है कि कोई हम पर उँगली न उठाये।

मुझे लगा कि उनके विचारों की तह तक पहुँच पाना मुश्किल काम है। हम बेशरम को उन्होने कहाँ से कहाँ तक पहुँचा दिया। मैं तो यही समझ रहा था, कि बेशरम उनकी बैठक तक ही है, लेकिन नही वह तो पूरे अंचल मे फैल गया है, और इस पवित्र उद्देश्य के साथ फैला है कि उसे देश को विकासशील और हरा-भरा साबित करना है।

उन्होने लगभग अपनी बात का समापन की ओर ले जाते हुए कहा:और यदि आप मुझसे व्यक्तिगत रूप से भी मेरी राय जानना चाहेंगे तो मैं यही कहूँगा कि बेशरम ही एक ऐसा पौधा है, जिसने तमाम मौसम की विपरीत परिस्थितियों के बाद भी अपना विकास नहीं रोका—बिलकुल हमारी तरह—चाहे भले सब कुछ रुक जाए लेकिन देश का विकास किसी कीमत पर नहीं रुकेगा और इसकी प्रेरणा मुझे अपनी बैठक मे लगे इसी बेशरम से ही मिली है—तुम तो देख ही रहे हो कि हम निरन्तर विकास की ओर अग्रसर हो रहे है।

तभी लाल रंग की गाड़ी उनकी बैठक के सामने आकर रुकी। उसमें बेशरम के तीन पौधे थे। गाड़ी से निकलकर वे उनकी बैठक के शेष तीनो कोनो मे स्थापित हो गए थे। उनकी बैठक मे हरियाली का प्रतिशत अब बढ़ गया था।

❑

सावधान : आगे खतरनाक मतदाता है!

मै डेंजरस मतदाता हूँ लेकिन मुझे देखते ही चुनाव-प्रत्याशियों के मुँह म पानी आने लगता है। चर्बीदार बकरे की तरह मरे साथ मेरे अपन 15 वोट हैं जो केवल मेरे इशारे पर ही मुहर लगाते ह। दुर्भाग्य यह है कि आजादी के बाद नगरपालिका-चुनाव स लेकर लोकसभा-चुनाव तक मने और मेरे परिवार के लोगों ने जिसे भी वोट दिया या तो उसकी जमानत जब्त हो गई या फिर वह सम्मानजनक ढंग से चुनाव हारा है। इसलिए अनुभवी चुनाव लडने वाले जानते हैं कि वोटों क मामले में मैं और मेरा परिवार शून-ग्रस्त है। मुझ पर किसी पीर-फकीर या महात्मा का कोप ह कि जा बेटा, तू जिस पर मुहर लगायेगा उसके पिताश्री भी चुनाव मे नहीं जीत सकते।

जो लोग इस क्षेत्र से अनेको बार चुनाव लड चुके हैं वे अच्छी तरह जानत हैं कि मेरा मुँह देखना बेकार है। लेकिन निर्दलीय प्रत्याशी या फिर नये प्रत्याशी जब भी वोटर-लिस्ट का अध्ययन करते हैं उनकी नजरें मुझ पर टिक जाती हैं आर वे सबसे पहले मुझसे जन-सम्पर्क करत हैं और मेरा वोट माँगते हैं। जब भी इस तरह का कोई उम्मीदवार मेरे दरवाजे पर आता है, मैं मन-ही-मन ऊपर वाले से प्रार्थना करता हूँ कि उसकी जमानत बची रहे। उसे माफ कर। वह नही जानता कि वह क्या कर रहा है मेरे दरवाजे पर आकर उसने जो गुनाह किया है, मेरे मालिक, उसे इस गुनाह से तौबा करने की तौफीक अता फरमा, आमीन।

मेरा दावा है कि यह वह दरवाजा है जिससे कोई भी चुनाव-प्रत्याशी अपनी मुराद पूरी नहीं कर सका। यह दरवाजा मौत का दरवाजा है जहाँ सैकडो चुनाव-प्रत्याशियों की लाश बिछी हैं। वे इस दरवाजे पर प्रसन्नचित्त आते हैं और चुनाव-परिणाम के बाद जिन्दगी-भर रोते हैं।

मैं जिस मकान में रहता हूँ वह प्रजातंत्र का शून–ग्रस्त मकान है। इस मकान के सौ गज का क्षेत्र चुनाव–प्रत्याशियों के लिए प्रतिबंधित क्षेत्र है। जो मेरे मकान के सौ गज के क्षेत्र से गुजर गया समझ लीजिए कि उसके दो–चार हजार नोट टूट गये। मुझे अच्छी तरह याद है कि पिछले लोकसभा–चुनाव में भैयाजी मेरे पड़ोस के एक सज्जन के यहाँ डिनर के लिए आये थे। उनके कार्यकर्ताओं ने भैयाजी को आगाह कर दिया था कि मेरे घर की तरफ बिल्कुल न देखें। लेकिन विवशता यह थी कि जिस सज्जन के यहाँ भैयाजी का डिनर था, उसके घर जाने के लिए मेरे घर के सामने से गुजरने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। मैं तो उसी क्षण समझ गया कि भैयाजी डिनर खाने नहीं, अपनी राजनैतिक मौत को आमंत्रित करने मेरे मुहल्ले में आये हैं। आने वाला समय ही बतायेगा कि भैयाजी की क्या दुर्गति होती है।

और फिर वही हुआ जो हर चुनाव में होता आया है। हार तो गये भैयाजी और आओ हमारे मुहल्ले में डिनर खाने। देखा हमारा प्रभाव? जमानत केवल इसलिए बच गई क्योंकि आपने हमसे नहीं कहा कि हम आपको अपना वोट दें। यदि इतनी सी बात आपके मुँह से निकल जाती तो हमारा दावा है कि कोई माई का लाल आपकी जमानत नहीं बचा सकता था।

चुनाव–प्रचार–अभियान तेजी पर है, लेकिन अभी तक किसी ने हमसे नहीं कहा कि हम उनके प्रत्याशी को अपना बहुमूल्य वोट दें। इस क्षेत्र के सभी कार्यकर्ता चाहे वे भाजपा वाले हों, जद वाले हों या कांग्रेस वाले हों, अच्छी तरह हमारे वोट का मूल्य जानते हैं। शहर में जब भी कोई नया चुनाव–प्रचार–कार्यालय खुलता है हमारे चाहने वाले अपने प्रत्याशी को बता देते हैं कि इस आदमी से बचकर रहना और फलाने वार्ड में अपने कदम मत रखना। हमने बता दिया, आगे आप जानो। फिर यह नहीं कहना कि हमने एक ईमानदार कार्यकर्ता का फर्ज नहीं निभाया।

इस बार हमारे यहाँ लोकसभा के लिए एक नये प्रत्याशी को खड़ा किया गया है जिसके जीतने की पूरी उम्मीद है। दुर्भाग्य से प्रत्याशीजी हमारे मित्र भी हैं। वे हमारे विधान सभा क्षेत्र के निवासी नहीं हैं इसलिए उन पर पहला आरोप मतदाताओं ने यह लगाया है कि वे थोपे हुए प्रत्याशी हैं। मैं कहता हूँ मेरे लिए थोपे क्या और बिना थोपे क्या इस गली से जो गुजरेगा वह हारे बिना नहीं जायेगा जो देखे हमारी तरफ

से जिसे थोपना हो इस लोकसभा में। लेकिन उस भले आदमी को बता देना कि हमसे बचके रहे, वर्ना जायेगा धारो-धार! ऐसे थोपे हुए प्रत्याशी हमने कई देखे हैं। कोई नहीं बच सका तो ये क्या बचेंगे। हमारे पास आए, और गये समझो।

इस लोकसभा-चुनाव-प्रचार का प्रारम्भ तो मैं आज से ही मानता हूँ क्योंकि आज सुबह-सुबह एक प्रत्याशी आ गए हमारे दरवाजे पर। हम शेर-छाप मंजन घिस रहे थे और प्रत्याशी जी अपने दो-तीन कार्यकर्त्ताओं के साथ हाथ जोड़े हमारे सामने खड़े थे। मैंने बैठक का दरवाजा खोलकर उन्हें बिठाया। यह सोचकर बिठाया कि अब भविष्य में उनकी किस्मत में केवल बैठना-ही-बैठना लिखा है। प्रातःकाल लगभग सवा छः बजे उनका मेरे दरवाजे पर आना और मेरी बैठक में बैठ जाना ही पर्याप्त है। आगे उनका मालिक ही जिम्मेदार है।

मैंने कुल्ला किया और पंछे से मुँह पोंछते हुए उनसे पूछा, "सुबह-सुबह आप लोगों का आना कैसे हुआ?"

एक मरियल-सा व्यक्ति बोला, "तापमान 45 डिग्री चल रहा है। दिन में चुनाव प्रचार होता नहीं, इसलिए हमने तय किया है कि सुबह के पहले पहर में ही लोगों को निपटा दें।"

यह तो मैं और मेरा मालिक बेहतर जानता है कि कौन किसे निपटायेगा। लेकिन मेरी आदत यह है कि मैं किसी चुनाव-प्रत्याशी को निराश नहीं करता। बेचारे बड़ी उम्मीद से चुनाव में खड़े होते हैं कि कुछ सम्पत्ति बना लेंगे, समाज में कुछ प्रतिष्ठा अर्जित कर लेंगे।

मैंने कहा, "कहिए, मेरे लायक क्या सेवा है?"

एक जाकेट वाले सज्जन बोले, "इस बार मैं शेर-छाप से लोकसभा का प्रत्याशी हूँ ... आपसे वोट माँगने आया था ... मैं इस क्षेत्र का विकास करूँगा, पानी की समस्या हल करूँगा, बेरोजगारी दूर करूँगा, महँगाई कम करूँगा... पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाऊँगा ... इसलिए ..."

मैंने बीच में ही कहा, "कौन किसे उठायेगा यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। आप लोकसभा-चुनाव लड़ रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई ... मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँ ... आदेश दीजिए"

इतना विनम्र मतदाता आपने नहीं देखा होगा। मुझ-जैसे मतदाता के लिए विनम्र होने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। मैं अपनी औकात जानता हूँ, अपना प्रभाव जानता हूँ।

वह बोले, "आपके परिवार में 15 वोट हैं... मेरा आपसे निवेदन है कि इस बार आप मुझे वोट दें, .. आपने हमारी पार्टी की ईमानदारी देखी है, हमारी पार्टी को परखा है, जाँचा है... मैं स्वयं सिद्धान्त वाला आदमी हूँ... मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारी सरकार इस देश को स्वर्ग बना देगी ... आप वादा कीजिए कि इस बार आप और आपका परिवार मुझे वोट देगा।"

इतना कहने के बाद वह आँखें मिचमिचाने लगे। मैं समझ रहा था। यह मेरी बैठक में बैठने का प्रभाव है। उनके नेक इरादे और दृष्टि बनी रहे तो भी बहुत है। ऊपरवाला उन्हें अंधत्व से बचाए।

मैंने कहा, "अवश्य मिलेंगे मेरे वोट आपको... लेकिन..."

उनका एक कार्यकर्त्ता बोला, "लेकिन-वेकिन कुछ नहीं... हम आपकी पीड़ा समझते हैं... देश गरीबी की सीमा-रेखा पर है... आप गरीबी में लड़ रहे हैं... हम जानते हैं... हमारे भइया यदि चुनाव जीत गये तो आपकी यह समस्या दूर हो जाएगी... भइया ने गरीबी मिटाने का संकल्प लिया है। फिर भी आप यदि चाहें तो भइया आपकी मदद कर सकते हैं।"

मैं समझ रहा था उनका इशारा। चुनाव के दौरान ऐसे मददगार पैदा होते हैं और मतदाताओं की मदद भी करते हैं। चाहे आप प्रलोभन से कितना भी बचने की हिदायत दें, हम बच नहीं सकते। हमारे खून में यह सब नहीं है। हम टुकड़ों पर झपटने वाले लोग हैं। जिसने टुकड़ा फेंका, हम उसके गुणगान करते हैं, उसके सिद्धान्तों की तारीफ करते हैं, उसकी नीतियों का बखान करते हैं। चुनाव लड़ने वाले भी अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी क्या कीमत है। हम वणिक देश के वणिक लोग हैं। सौदा करना जानते हैं, अपना नफा-नुकसान समझते हैं। जो भी काम करते हैं, अपने लाभ के लिए करते हैं।

मैं जानता हूँ कि मेरे 15 वोट अमूल्य हैं। जिसकी झोली में जायेंगे, उसे बर्बाद कर देंगे। अब रही मदद की बात। यह मुझे तय करना है कि मैं मदद लूँ या नहीं

मैं अपने विवेक को खगालता हूँ—बेटा, मत आना किसी प्रलोभन में अपने वोट का सौदा मत करना प्रजातंत्र की नींव तुम्हारे वोटों पर है।

इस तरह की अनेकों कल्पनाएँ आती हैं।

भइया जी उठने लगे, बोले, "आपका वोट निश्चित रूप से मुझे मिल रहा है, क्या आप इससे सहमत होंगे?"

मैंने यह सोचकर सहमति में सिर हिला दिया कि अपने देश का मतदाता किसी प्रत्याशी को निराश नहीं करता। वे मेरे दरवाजे पर आए, मेरा सौभाग्य है। उनका क्या होगा, वे जानें। मैं अपने वोट का मूल्य जानता हूँ। आप जान लें तो अच्छा है और नहीं जानेंगे तो मैं आपका क्या कर लूँगा!



एक धोती छाप व्यंग्य

आदमी ने जिस दिन से धोती लपेटना प्रारम्भ किया ठीक उसके दूसरे दिन से धोती में फंस कर गिरने की परम्परा अपने देश में शुरू हुई। उसी दिन से ही धोती बाँधने के बाद पीछे मुड़ कर देखने की राजनीतिक और सामाजिक आदतों का भी सूत्रपात हुआ। पीछे मुड़ कर देखने के पीछे जो सायकोलोजी काम करती है वह यह है कि आदमी इस बात से सतुष्ट हो जाए कि पीछे से धोती खींचने का काम नहीं हो रहा है। अपनी नगई को छिपाना गौण रह गया और देखा-देखी की यह आदत प्रधान हो गई। इस आदत से प्रेरित होकर कई लोग 'प्रधान' हो गए। बहरहाल धोती और आदमी का सम्बन्ध जो विकसित होना शुरू हुआ तो आज तक विकसित हो रहा है

हमारे एक मित्र आदमी भी हैं और धोती भी पहनते हैं। पहले वे हाफ धोती पहनते थे। इसमें सुविधा यह होती थी कि उनकी टाँगों का धोती में फँसने का चांस बहुत कम रहता था। वे कमोबेश घुटना छाप थे इसलिए अपने घुटने धोती के बाहर रखना ही पसन्द करते थे ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आए। लेकिन जब भारतवर्ष ने विकास करना प्रारम्भ किया, तब उनकी धोती की लम्बाई भी सिंचाई परियोजना की तरह लम्बी हो गई। अब तो वे पूरी तरह आभिजात्य वर्ग से जुड़ गए हैं। इसलिए उन्हें छोटी धोती पहन कर घुटना दिखाने में शर्म आती है। लम्बी धोती में वे कद और पद से काफी सम्पन्न होने का भ्रम पैदा कर लेते हैं। धोती की लम्बाई के साथ उनकी सम्हल कर चलने की आदत भी बन गई है।

लेकिन होनी को टालना अपने देश में बहुत मुश्किल काम होता है अब स्थिति यह है कि नगर के कई गणमान्य टाइप लोगों की नजर उनकी धोती पर है और

इसके पहले कि वे खुद इस दुर्घटना का सामना करें, उन्होंने पार्ट टाइम धोती खींचने की कोचिंग क्लासेस अपने घर पर प्रारम्भ कर दी है। वे कुछ युवा धोती कर्मी भी तैयार कर रहे हैं। कुल मिलाकर उनकी ट्रेनिंग की प्रक्रिया यह है कि सबसे पहले धोती की परिक्रमा करो और देखो कि किस एंगल से झटका देने पर धोती नीचे आ जाएगी। फिर बारीकी से इस बात का अध्ययन करो कि किस स्थल पर धोती खींचने पर सामने वाला व्यक्ति आकर्षक लगेगा। वे कभी-कभी भोपाल और दिल्ली का चक्कर लगाकर अपने वरिष्ठों की सलाह भी ले लेते हैं। इस सिद्धान्त के पीछे मूलमंत्र यह है कि अगले को आपकी नीयत का पता न चले। यदि पता चल जाए तो आप तुरन्त उनके चरणों पर गिरकर कहिए—श्रीमान्, मैं आपकी धोती खींचने नहीं आया था। मैं तो आपके चरण स्पर्श करना चाहता था, दुर्भाग्य से धोती का छोर मेरे हाथ में आ गया।

धोती पहनने वाला हर आदमी जानता है कि उसकी धोती के साथ खिंचाई की सम्भावना क्रमशः जुड़ी है। इसलिए समझदार किस्म का धोतीधारी आदमी अपनी धोती की गठान मजबूत बाँधता है। कई लोग तो धोती अपने विधानसभा क्षेत्र में पहनते हैं और गठान बँधवाने दिल्ली चले जाते हैं। यानी कि धोती का दारोमदार गठान पर है। जिस आदमी को राजनीति में गठान मारने की तमीज आ गई समझ लो उसकी धोती भी सुरक्षित हो गई। खींचो बेटा, कितनी खींचते हो। ये भैया जी की गठान है, आसानी से नहीं खुलेगी।

बिना गठान वाली धोती केवल कपड़ा होती है। यही कपड़ा जब ढंग से चुन्नट डालकर सही गठान के साथ किसी विधायक ग्रेड के आदमी की कमर से लपेट दिया जाता है तब कहा जाता है कि अब इस आदमी को राजनीति में धोती लपटने की तमीज आ गई है।

पिछले दिनों एक अजीब दुर्घटना हो गई। हमारे एक मित्र दूसरे की धोती में फँस कर गिर गए। मैंने दूसरे की धोती में फँस कर गिरने वाला पहला आदमी देखा था। जब मैंने उनसे यह सवाल किया कि यह सब हुआ कैसे तो मित्र ने कहा—बड़े लोगों की धोती में फँस कर गिरना भी गौरव की बात होती है। मैंने पूछा—सो कैसे? वे बोले—जब गिरने वाले का जिक्र होता है तो उसके साथ उस आदमी का भी जिक्र होता है जिसकी वह धोती होती है।

—आपको दूसरों की धोती में फँस कर गिरने की प्रेरणा कहाँ से मिली

—प्रेरणा गई भाड़ में, मैं गिरा नहीं था, मुझे गिराया गया है। राजनीति में ऐसा ही होता है।

—इसके पीछे दर्शन?

—दर्शन यही है कि धोती इसीलिए पहनी जाती है कि या तो खुद फँसकर गिरो या दूसरों को गिराओ।

मैंने सोचा कि दूसरों को गिराने वाली प्रथा ही हमारे प्रजातन्त्र की पहचान है। जब तक देश में धोतियाँ रहेंगी, ऐसा ही होता रहेगा। हर पाँच साल बाद हम अपना एक आदमी तैयार करेंगे और उससे कहेंगे—जा भइया, तू ऊपर चला जा और अपनी धोती की लम्बाई बढ़ा। तेरी धोती की लम्बाई में ही हम अपने क्षेत्र का विकास नाप लेंगे, धोती पहन और सरकारी गाड़ी में घूम। जा, तेरा राम रखवाला।

हमें विश्वास है कि वह पाँच साल में अपनी धोती में गठान बाँधने में प्रवीण हो जाएगा। लोग उसकी धोती खींचेंगे लेकिन वह नंगा नहीं होगा। सच्चा प्रजातन्त्र का सुख यही है। रहिमन होते तो कहते—रहिमन धोती राखिए, बिन धोती सब सून

❑

हीरोइन बीमार हो गई है

फिल्म के लिए लेखक की वह पहली कहानी थी। डायरेक्टर ने लेखक से कहा—अब फिल्म में तुम्हारा हीरोइन को बीमार करने का है उसको बीमार करो . समझा?

लेखक ने हीरोइन से निवेदन किया—अब समय आ गया है कि तुम बीमार पड़ जाओ चलो, जल्दी से बीमार हो जाओ।

हीरोइन बोली—बीमार पड़े मेरे दुश्मन. मैं भी देखती हूँ, कौन माटीमिला मुझे बीमार करता है।

लेखक ने समझाया—देखो, तुम बीमार नहीं पड़ोगी तो हीरो तुम्हें खून कैसे देगा? तुम तो जानती ही हो कि सिवाय हीरो के तुम्हारा ब्लड ग्रुप किसी से नहीं मिलता। यकीन न हो तो डॉक्टर कापसे से पूछ लो।

हीरोइन तुनककर बोली—कौन कापसे? मैं नहीं जानती किसी कापसे-बापसे को। किस फिल्म में था?

फिर वह हिरनी की तरह उछलती हुई लेखक की पकड़ से बाहर हो गई। लेखक जानता था कि कहानी में यह नायिका-हठ है। वह यह भी जानता था कि उसकी नायिका जरा चुलबुली भी है. और जिद्दी भी है। वह जानता था कि जब फिल्म में नायिका जिद पर आ जाती है, तो बड़े-बड़े लेखक की हालत पतली कर देती है। वह उसे मनाता रहा, लेकिन हीरोइन माने तब ना। वह स्वीमिंग पूल में बिकनी पहने कूद-कूदकर नहाती रही और लेखक मूर्खों की तरह देखता रहा।

डायरेक्टर ने लेखक को बुलाकर कहा—ये कथा तुम्हारी ... अभी तक बीमार नहीं पड़ी?

लेखक ने कहा—वह बीमार नहीं हो सकती ... दिन भर ... कि बीमारी का कोई कीटाणु उसके पास नहीं आ सकता ... फिर उसकी रोग रोधक शक्ति इतनी बढ़ गई है, कि उसे बीमार कर... बीमार नहीं होगी।

डायरेक्टर चिल्लाया—बीमार कैसे नहीं होगी ... उसके ... करना पड़ेगा। तुम एक काम करो ... उसे कैंसर की बीमारी लगा ... सर वाली फिल्में बड़ी हिट हो रही हैं।

लेखक बोला—लेकिन उसे कैंसर हो जायेगा तो मह... कहानी में हीरोइन मरती नहीं, और आप उसे मारने पर तुले हैं।

डायरेक्टर ने कहा—मरेगी कैसे? हम जो बैठे हैं। उसे वि... ने नहीं देंगे। तुम उसको समझाओ कि हम इलाज के लिए ... अंगे ... इधर जाने से फिल्म में एक बढ़िया केबरे और डिस्को मिल... बस जल्दी बीमार करो। समझा?

लेखक ने अपनी बुद्धिमानी दिखाते हुए कहा—लेकिन आप... मालूम कि विदेशों में भी कैंसर का इलाज नहीं होता। जिसे एक बार ... उसे मरना ही पड़ता है।

डायरेक्टर निश्चित होकर बोला—नहीं होगा तो वापस आ जा... यहाँ भी एक से एक हकीम-वैद्य हैं ... देखना एक पत्ती खिलाकर उसको ... कर देंगे ... अपने इधर की जड़ी-बूटी में बहुत ताकत है। हीरोइन मरेगी ... भी हालत में। समझा?

सीन तैयार हो गया।

हीरोइन बिस्तर पर लेटी है। लेखक बोला—ठीक से लेटो। ... इस तरह लेटे-लेटे हलवा मत खाओ। बीमारी में तुम्हें हलवा नहीं ... है ... कैंसर है।

हीरोइन बोली—शरम नहीं आती तुम्हे लेखक होकर डायरेक्टर के ारे पर नाचते हो? तुम तो कहानियाँ लिखने के बदले दलाली करो।

लेखक के आत्मसम्मान को हीरोइन ने ललकार दिया। लेखक तिलमिला ा बोला—चुप रहो शरम तो तुम्हे आनी चाहिये पहले तो बहुत अकड रही ाक बीमार नहीं पडोगी। अब क्या हो गया? डायरेक्टर के इशारे पर तो तुम भी नाच ी हो

हीरोइन बोली—अभी तुम फिल्म लाइन मे नये हो। मैं इतना नखरा नहीं रूँगी तो मुझे हीरोइन कौन मानेगा? एक्स्ट्रा और हीरोइन मे कुछ तो फर्क होना ाहिए मुझे तो तुम पर तरस आता है कहाँ फँस गये फिल्मो मे। आत्मसम्मान की ानी ही चिंता थी तो किसी चौराहे पर पान की दुकान खोल लेते , लेखक होकर लाली

और बात पूरी करने के पहले ही हीरोइन कूदकर घोडे की पीठ पर बैठ ई।

फिल्म मे हीरोइन बीमार थी और डायरेक्टर लेखक को समझा रहा था कि हानी मे अब उसके हीरो का क्या करना है।





डायरेक्टर ने लेखक को बुलाकर कहा—ये क्या तमाशा है? तुम्हारी हीरोइन अभी तक बीमार नहीं पड़ी?

लेखक ने कहा—वह बीमार नहीं हो सकती। दिन भर उसे नहलाते रहोगे तो बीमारी का कोई कीटाणु उसके पास नहीं आ सकता। फिल्म में नहा-नहाकर उसकी रोग निरोधक शक्ति इतनी बढ़ गई है, कि उसे बीमार करना मुश्किल है। वह बीमार नहीं होगी।

डायरेक्टर चिल्लाया—बीमार कैसे नहीं होगी। उसके बाप को भी बीमार पड़ना पड़ेगा। तुम एक काम करो। उसे कैंसर की बीमारी लगा दो। आजकल कैंसरवाली फिल्में बड़ी हिट हो रही हैं।

लेखक बोला—लेकिन उसे कैंसर हो जायेगा तो वह मर जायेगी। मेरी कहानी में हीरोइन मरती नहीं, और आप उसे मारने पर तुले हैं।

डायरेक्टर ने कहा—मरेगी कैसे? हम जो बैठे हैं। उसे किसी भी हालत में मरने नहीं देंगे। तुम उसको समझाओ कि हम इलाज के लिए स्विट्जरलैण्ड भेजेंगे। उधर जाने में फिल्म में एक बढ़िया कबरे और डिस्को मिल जायेगा। तुम तो बस जल्दी बीमार करो। समझा?

लेखक ने अपनी बुद्धिमानी दिखाते हुए कहा लेकिन आपको शायद नहीं मालूम कि विदेशों में भी कैंसर का इलाज नहीं होता। जिसे एक बार कैंसर हो गया उसे मरना ही पड़ता है।

डायरेक्टर निश्चिन्त होकर बोला—नहीं होगा तो वापस आ जायगा। अपने यहाँ भी एक से एक हकीम-वैद्य हैं। देखना एक पत्ती खिलाकर उसका कैंसर खत्म कर देंगे। अपने इधर की जड़ी-बूटी में बहुत ताकत है। हीरोइन मरेगी नहीं किसी भी हालत में। समझा?

सीन तैयार हो गया।

हीरोइन बिस्तर पर लेटी है। लेखक बोला—ठीक से लेटो। तुम्हें कैंसर है। इस तरह लेटे-लेटे हलवा मत खाओ। बीमारी में तुम्हें हलवा नहीं पचेगा। तुम्हें कैंसर है।

हीरोइन बोली :चुप रहो डिस्टर्ब मत करो मुझे किसने कह दिया कि मुझे कैंसर है?

डायरेक्टर बोला—डॉक्टर को बुलाओ।

डॉक्टर आ गया। उसके हाथ मे बैग था। बेग खाली था। चेहरे से वह जल्लाद दिखता था। दरअसल वह फिल्मो में जल्लाद का रोल ही करता था। इस बार फिल्म में डॉक्टर बना था। जल्लाद से डॉक्टर बना था, इसलिए वह अकड़कर चलता था। उसने हीरोइन की ओर देखा। कैमरा उसकी आँखों पर था। उसकी आँखे चमक रही थीं। फिर एक लाग शाट हुआ। बेड के पीछे एक नर्स खड़ी है। वह बहुत तन्दुरुस्त है। पहले फिल्म में नौकरानी का काम करती थी। इस बार नर्स बनी थी। उसे कौन पकड़कर लाया था, यह लेखक को भी नहीं मालूम था।

लेखक ने डॉक्टर से पूछा—कहाँ का कैंसर है?

डॉक्टर बोला—हमें नहीं मालूम। लेकिन कैंसर है, यह पक्का है। कहीं का भी हो, कैंसर न हो तो हमे कहना।

लेखक ने फिर बुद्धिमानी बताई। कहा—कैंसर नहीं हो सकता कैंसर होने के बाद कोई औरत इतनी तगड़ी कैसे हो सकती है?

डॉक्टर पहली बार डॉक्टर बना था। गरम हो गया। बोला—हम डॉक्टर है ...कह दिया कि कैंसर है तो बस कैंसर है आगे कुछ नहीं हो सकता। फिल्म में हीरोइन को खुजली-खाँसी नहीं होती, इतना हम जानते हैं। सेंट-परसेंट कैंसर है।

लेखक बोला—बायप्सी करवा लेते हैं... बाद में किसी को क्यों शक रहे।

डायरेक्टर बोला—तुम्हारी बायप्सी की ऐसी-तैसी जब डॉक्टर ने कह दिया तो तुम लेखक कौन होते हो बहस करने वाले। मैं भी मान गया और तुम भी मान जाओ। तुम्हें और भी फिल्मो के लिए कहानी लिखना है। तुम्हारे कैरियर का सवाल है। समझा?

लेखक मान गया लेकिन हीरोइन मानने को तैयार नहीं थी। बोली—मैं इस डॉक्टर के बच्चे को कच्चा खा जाऊँगी ... कैंसर होगा उसकी माँ को। मेरे खानदान मे किसी को कैंसर नहीं है, तो मुझे कैसे कैंसर हो सकता है।

हीरोइन की बात सुनकर डायरेक्टर नम्र पड़ गया। बोला—ठीक है मैडम कैंसर नहीं होगा तो ब्रेन ट्यूमर होगा। फिल्मों में आजकल ये भी चल रहा है। हम दूसरे डॉक्टर को बुलाकर दिखा देते है।

फिर शॉट तैयार हुआ।

दूसरा डॉक्टर आया। पहले वह फिल्मों में जज का रोल करता था। इस बार डॉक्टर बना था। कैमरा क्लोज अप में था। पहले वह हीरोइन की टाँगों से होता हुआ उसके गले तक आया। फिर हीरोइन के चेहरे पर रुक गया। कल्याण जी–आनंद जी पीछे से स्पेनिश पर सैड सिचुएशन का टून कर रहे थे। फिर एक लांग शाट हुआ। इस बार दो हट्टी–कट्टी नर्सें थी। ब्रेन ट्यूमर में हीरोइन को पकड़ना भी पड़ सकता है, शायद इसलिए डायरेक्टर ने सावधानी बरती थी।

डॉक्टर पहले 'आर्डर–आर्डर' बोल गया तो सीन कट हो गया। फिर दुबारा कैमरा डॉक्टर पर आया। डॉक्टर गम्भीर होकर बोला—हालात को मद्देनजर रखते हुए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि, हीरोइन को ब्रेन ट्यूमर है।

लेखक ने कहा—ब्रेन ट्यूमर होगा तो हीरोइन पागल हो जायेगी। मेरी कहानी का सत्यानाश हो जायेगा। पागल लड़की से शादी कौन करेगा?

डायरेक्टर चिल्लाया—भाड़ में जाये तुम्हारी कहानी . तुम्हे शादी की पड़ी है और उधर फायनेन्सर हमारी छाती छील रहा है कि फिल्म जल्दी पूरी करो इसीलिए हम कह देते है कि अब हीरोइन को दूसरी बीमारी नहीं हो सकती। उसे ब्रेन ट्यूमर है। समझा?

हीरोइन मुस्कुराई अब तो वह भी मान गई कि वह बीमार है। उसने डायरेक्टर से पूछा—ब्रेन ट्यूमर होने से मेरा फिगर तो खराब नहीं होगा?

डायरेक्टर बोला—ओह नो . सरटेनली नॉट। दैट इज नाईस. माई गुड गर्ल!

अब फिल्म में हीरोइन बीमार थी। लेखक खुश था कि उसकी इज्जत बच गई।

दुबारा लेखक जब हीरोइन से मिला, तो हीरोइन हाफ पैंट पहने घोड़े पर बैठी थी। लेखक बोला—तुमको ब्रेन ट्यूमर है और तुम घोड़े पर बैठी हो। गिर जाओगी तो फ्रेक्चर हो जायेगा, और तुम्हारी खूबसूरत टाँग पर प्लास्टर बाँधना पड़ जायेगा।

हीरोइन बोली—शरम नहीं आती तुम्हे लेखक होकर डायरेक्टर के इशारे पर नाचते हो? तुम तो कहानियाँ लिखने के बदले दलाली करो।

लेखक के आत्मसम्मान को हीरोइन ने ललकार दिया। लेखक तिलमिला गया। बोला—चुप रहो शरम तो तुम्हे आनी चाहिये पहले तो बहुत अकड रही थी कि बीमार नहीं पडोगी। अब क्या हो गया? डायरेक्टर के इशारे पर तो तुम भी नाच रही हो।

हीरोइन बोली—अभी तुम फिल्म लाइन म नये हो। मैं इतना नखरा नहीं करूंगी तो मुझे हीरोइन कोन मानेगा? एक्स्ट्रा और हीरोइन मे कुछ तो फर्क होना चाहिए। मुझे तो तुम पर तरस आता है कहाँ फंस गये फिल्मो मे। आत्मसम्मान की इतनी ही चिंता थी तो किसी चौराहे पर पान की दुकान खोल लेते लेखक होकर दलाली

और बात पूरी करने के पहले ही हीरोइन कूदकर घोडे की पीठ पर बैठ गई।

फिल्म मे हीरोइन बीमार थी और डायरेक्टर लेखक को समझा रहा था कि कहानी मे अब उसके हीरो को क्या करना है।



शकुन्तला की साड़ी

ऋषि के आश्रम में बैठी शकुन्तला जासूसी उपन्यास पढ़ रही थी। ऋषि टौर पर आश्रम के लिये चन्दा वसूल करने गये थे। एक स्कूटर आश्रम के गेट पर रुकता है। गेट पर एक साधुनुमा गोरखा खड़ा है। स्कूटर वाला सज्जन राजेश खन्ना टाइप आदमी है। अपनी जेब से अठन्नी निकालकर गोरखे के सामने फेंककर कहता है—जाओ गाजा पी लेना। उसने बेडौल बुशर्ट पहनी है। उसके बायें हाथ पर राजकुमार दुष्यन्त लिखा है जो कैमरा सामने होने की वजह से दर्शकों को साफ दिखाई पड़ता है। वह शकुन्तला को देखता है और उसके प्यार में एक तरफा घायल हो जाता है।

दुष्यन्त ने कहा—देवी आप कौन हैं और यह घटिया किस्म का उपन्यास क्यों पढ़ रही हैं? पढ़ना ही है तो भगवान रजनीश की कोई किताब पढ़ो। आश्रम में रहकर ऐसी किताबें पढ़ने से बुद्धि नाश होती है।

शकुन्तला गुस्से में उठकर खड़ी हो जाती है। उसकी साँस तेज चलने लगती है। वह मटकती हुई दुष्यन्त के पास आती है। थोड़ी देर उसकी ओर देखती है और उसके गाल पर एक तमाचा मारकर कहती है—आवारा, बदमाश आश्रम में अकेली देखकर मुझे छेड़ता है। दुष्यन्त दूसरा गाल उसके सामने प्रस्तुत करते हुए कहा है—यह गाल भी हाजिर है, तमाचा मारकर मुझे अनुगृहीत कीजिये देवी। यह एक गाँधीवाद सीन है। बीच में डायरेक्टर ने कहा—तमाचा जोर से मारो। ऐसा लगता है तुम तमाचा नहीं मार रही हो बल्कि दुष्यन्त की दाढ़ी पर साबुन लगा रही हो।

दुष्यन्त ने पाँच–सात तमाचे खाये तब कहीं जाकर शॉट ओके हुआ। जाते समय दुष्यन्त ने कहा—प्रिय, तुम्हारे गर्मागर्म तमाचे खाकर जी भर गया है अब मुझे आज्ञा दो, जब भूख लगेगी तो फिर हाजिर हो जाऊँगा।

शकुन्तला आश्रम में उकडू बैठी चटनी पीस रही है। ऋषि कण्व आश्रम मे एकाउन्ट पर लीपा पोती कर रहे हैं। शकुन्तला ने अपना गिरा हुआ पल्लू ठीक किया और बोली—बाबा, आपकी गैरहाजिरी में कल एक लफंगा स्कूटर पर यहाँ आया था। मैंने उसे तमाचे मारकर रवाना कर दिया है।

बाबा बोले—बेटी तुमने यह ठीक नहीं किया। वे तो राजकुमार दुष्यन्त थे।

—आप उसे कैसे पहचानते हैं बाबा।

—पिछली बार आर.टी.ओ. ने उसका चालान कर दिया था तब मैंने उसे छुडाया था और तभी से मैं उसे पहचानता हूँ।

—अब क्या होगा बाबा।

—कुछ नहीं बेटा तुम डरो नहीं, ऐसे लोगों को भिडाकर रखना चाहिये। कहीं रास्ते में मिल जाये तो उससे अच्छी बाते करना। मारना-पीटना नहीं। ऐसे दिलेर लोगों के सहारे ही यह आश्रम चल रहा है।

शकुन्तला आश्रम के बाहर खड़ी टाऊन बस की प्रतीक्षा कर रही है। उधर से राजकुमार दुष्यन्त स्कूटर पर सीटी बजाता हुआ निकलता है। शकुन्तला उसे देखती है देखकर जीनत अमान की तरह हाथ-पाँव हिलाती हुई उससे माफी माँगती है। दुष्यन्त उसकी ओर ललचायी नजरों से देखता है। इसी बीच वह कहती है—मुझे स्कूटर पर मार्केट पहुँचा दोगे। वह आगे कहती है—टाऊन बस के पैसे बच जायेंगे और उन पैसों से बाबा के लिये मोहनलाल हरगोबिन्द दास की पहलवान छाप बीडी खरीद लूँगी।

दुष्यन्त स्कूटर घुमा लेता है। शकुन्तला उस पर कूदकर बैठती है जिससे स्कूटर स्लिप होते-होते बचता है। दुष्यन्त अपना स्कूटर जंगल की ओर ले जाता है। शकुन्तला पूछती है कहाँ ले जा रहे हो मुझे

—मुझे नहीं मालूम। डायरेक्टर ने मुझे इस जगह का नाम नहीं बताया है

डायरेक्टर चिल्लाया—तुम कैसा हीरो है? हमारा नाम लेता है। हम खुद इस एरिया मे नया आदमी है। कुछ भी नाम ले दो, सब चलेगा। ये तो फिल्म का जगल है

एक चट्टान पर शकुन्तला घायल चीते की तरह लेटी है। दुष्यन्त बीमार गिद्ध-सा पास बैठा है। डायलाग शुरू होते हैं—शकुन्तला प्रिये, तुम्हारे रेशमी बाल कितने अच्छे हैं। मेरी इच्छा होती है कि इसे कटवा कर रस्सी बनवा लूँ ताकि फिल्म रिलीज होने पर आत्महत्या के काम आये।

डायरेक्टर फिर चिल्लाया।

शकुन्तला बोली—लेकिन ये तो नकली बाल हैं। मजबूत रस्सी बनाना हो और सचमुच आत्महत्या करना हो तो बाबा से मिलो, उनके बाल मजबूत हैं और टिकाऊ भी है। लोमा लगा-लगाकर उन्होंने अपने बाल मजबूत किये हैं।

दूसरा डायलाग

—तुम्हारी आँखें जैसे एक शांत झील। बहुत गहरी, अथाह सागर की तरह जिसमे डूब जाने को मन चाहता है।

—तुम्हारी मूँछें, जैसे मैदान पर खड़े दो महुवे के झाड़ जिसे पकड़कर झूल जाने को जी चाहता है।

मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। बोलो तुम्हें मंजूर है शकुन्तला?

—मंजूर है लेकिन बाबा ।

—तुम उस बुड्ढे की चिन्ता मत करो। मै उसे आश्रम के लिये तगड़ा चन्दा देकर मना लूँगा।

पहाड़ी पर एक छोटा-सा मंदिर। मंदिर मे भजन गाता हुआ एक साधु। दिखने में बूढा लेकिन बत्तीसी मजबूत। पास खड़े दुष्यन्त और शकुन्तला। गन्धर्व विवाह के लिये आये है।

—महाराज, हम विवाह बन्धन मे बँधना चाहते है, कृपया हमारी शादी करवा दीजिये। साधु बोला—मैं सन्यासी आदमी हूँ, शादी करवाने वाला प्रोफेशनल पंडित नहीं हूँ। भगवान की मूर्ति के सामने तुम लोग शादी कर लो, नहीं तो कल के दिन मुझे मैं गवाही के रूप में पसीटे जाना पड़ेगा

दोनों ने शपथ पूर्वक शादी की और दुष्यन्त ने एक कीमती बनारसी साड़ी भेंट में दी।

एक आलीशान होटल। अंग्रेजी धुन पर हेलन टाइप कैबरे चल रहा है। एक टेबुल पर शकुन्तला और दुष्यन्त बैठे हैं। शकुन्तला जूस पी रही है और दुष्यन्त कैबरे देखने में भिड़ा हुआ है। थोड़ी देर बाद उसने कहा—प्रिये तुम कोई बहाना बनाकर काश्मीर चली चलो। चार छः दिन घूम भी आयेंगे और हनीमून भी मना लेंगे।

—सो तो ठीक है प्रियतम लेकिन बाबा को कैसे चकमा दूँ।

—उसका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। मैं उसे अपने कॉलेज का आनरेरी प्रिंसीपल बना देता हूँ। बोकरा खुश हो जायगा।

—इससे क्या होगा!

—फिर कॉलेज के बच्चों की ट्रिप होगी, जिद करके तुम भी पीछे चिपक जाना।

—तुम कितने अच्छे हो। क्या हम सचमुच काश्मीर जायेंगे!

—हाँ। यदि डायरेक्टर ने चाहा तो।

काश्मीर की ट्रिप के बाद दुष्यन्त फारेन चला गया। शकुन्तला आश्रम में उदास बैठी एक मोजा बुन रही है और गाना गा रही है। एक विरह का गीत जिसे लिखा है आनन्द बख्शी ने और धुन बनाई है लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल ने।

गाना समाप्त होते ही कण्व ऋषि विपिन गुप्ता टाइप आवाज में बोले—बेटी तुम बड़ी उदास दिखती हो क्या कारण है?

शकुन्तला ऋषि की छाती में चिपटकर रोने लगती है। ऋषि की नकली दाढ़ी के बाल शकुन्तला के कान पर फरफराने लगते है और वह कान खुजाने लगती है बाबा कहते हैं—बेटी, मैं जानता हूँ तुम कान क्यो खुजा रही हो। तुम दु खी हो लेकिन इसकी चिन्ता मत करो। दुष्यन्त बहुत जल्दी वापस लौट आयेगा और फिर तुम्हारा विवाह बड़ी धूमधाम के साथ पब्लिक के सामने होगा। इसकी जिम्मेदारी मुझ पर है।

शकुन्तला रोती हुई बोली—बाबा, मै माँ बनने वाली हूँ दुष्यन्त के बच्चे की माँ।

—तो क्या हुआ। फिल्मों मे ऐसा होता ही है। तुमने शायद 'धूल का फूल' फिल्म नहीं देखी। अपने जमाने की यह एक हिट फिल्म है। मेरी मानो तो हिम्मत से काम लो। सब ठीक हो जाएगा।

आश्रम के सामने शकुन्तला बबूल का पौधा लगा रही है। पास ही जूनियर दुष्यन्त खेल रहा है। अचानक पौधा बढ़ने लगता है। बाबा आश्रम मे प्रवेश करते हैं। कहते हैं—बेटी दुष्यन्त वापस आ गया है। लेकिन तुम्हे यह जानकर दु:ख होगा कि वह विदेश की हवा खाकर तुम्हें भी भूल चुका है और मुझे भी। दो नकली आँसू शकुन्तला के गाल पर लुढक जाते हैं।

ऋषि बोले—बेटी शकुन्तला, तुम दु:खी मत होओ। उसे किसी का श्राप लगा है।

—किसका श्राप बाबा? कौन है वह निर्दयी जिसने मुझे जीते जी बेसहारा कर दिया। मैं भारत की नारी हूँ, अपने दुश्मन को कच्चा चबा जाऊँगी।

ऋषि बोले—वह डायरेक्टर है बेटी।

डायरेक्टर बोला—ए, बाबा, हमारा नाम मत लो। तुम तो फिल्म लाइन मे साधुओं का रोल करते-करते बूढ़ा हो गया है फिर भी डायलाग भूल जाता है।

शकुन्तला बोली—बाबा उसकी एक निशानी मेरे पास है मैं मोहल्ले के

लोगों को जमा करूँगी और पूरे शहर में उसका फजीता करूँगी। देखती हूँ फिर वह मुझे पहचानने से कैसे इन्कार करता है।

दुष्यन्त अपने फ्लैट से बाहर आ रहा है। शकुन्तला वीर नारी की तरह गेट पर खड़ी है। दुष्यन्त उसे देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहता है—ए मैडम कौन हो तुम। क्या चाहती हो?

—नहीं पहचाना मुझे? मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। आपने मुझे जय श्री साड़ी सेन्टर से यह साड़ी दिलाई थी। क्या सब कुछ भूल गए? हमारा गंधर्व विवाह भूल गए? वह बनारसी साड़ी भूल गए?

—कहाँ है वह साड़ी। दुष्यन्त ने गरज कर पूछा।

शकुन्तला मेमने की तरह बोली—रजिस्ट्रार साहब की लड़की उधार लेकर एक शादी में गई है। वह मेरी सहेली है। आज वह साड़ी ले गयी है। कल मैं तुम्हें दिखाऊँगी।

—सब बकवास है। मेरी कोई शादी-वादी नहीं हुई। यहाँ से तुम फौरन चली जाओ नहीं तो मुझे गिरजाशंकर हवलदार को बुलाना पड़ेगा।

शकुन्तला ने रोते हुए जमा भीड़ से अपील की—भाइयो, आप ही मेरा फैसला कीजिए। राजकुमार दुष्यन्त ने मेरी इज्जत लूटकर मुझे कहीं का नहीं छोड़ा और अब मुझे पहचानने से इंकार करता है। भीड़ में से एक शेट्टीनुमा मुस्टन्डे व्यक्ति ने समझाते हुए कहा—हमारी मानो तो किसी अच्छे वकील की सलाह लेकर अदालत की शरण लो। फिल्मों की अदालत में अनोखा न्याय होता है। एक बार उसे कटघरे में खड़ा करो फिर देखना फिल्म का वकील कैसे उससे सब कुछ उगलवा लेता है।

शकुन्तला वकील की सलाह लेती है। उसका वकील तलाक और रेस्टीट्यूशन ऑफ कान्जूगल राईट्स का स्पेशलिस्ट है। उसे दिलासा देते हुए उत्पल दत्त की टोन में कहता है—तुम चिन्ता मत करो। मुझे वकालत के सारे फिल्मी हथकंडे मालूम हैं। वह बचकर नहीं जाएगा। उसे तुम्हें स्वीकार करना होगा।

मामला दायर हो गया। दुष्यन्त ने एक बहुत बड़ा जानकीदास टाइप वकील लगाया। उससे कहा, मैं मामला हाइकोर्ट तक लड़ूँगा। आप फीस की चिन्ता न करें। मैं उस औरत को सबक सिखाना चाहता हूँ।

अदालत का कमरा। जज साहब मसू टाइप आदमी हैं। उनकी आँखें नीली हैं। सर पर वजनदार विग पहने हैं। और आवाज बड़ी दमदार है। कुछ लोग अदालत के सामने कुर्सियों पर बैठे हैं। कण्व ऋषि कमंडल और मृगछाला लिए सामने वाली पंक्ति में बैठे हैं और अदालत की कार्यवाही गौर से देख रहे हैं।

बहस शुरू होती है। शकुन्तला के वकील कहते हैं—माई लॉर्ड, इस धोखेबाज इन्सान को देखिए।

दुष्यन्त के वकील ने बीच में कहा—आब्जेक्शन मी लॉर्ड। जब तक मामले में यह बात साबित न हो जाए, फरियादी के वकील को मेरे मुवक्किल को धोखेबाज कहने का कोई हक नहीं है। जज साहब बोले—आब्जेक्शन सस्टेंड। प्रोसीड मिस्टर उत्पल दत्त डुप्लीकेट।

—हाँ तो माई लॉर्ड, जरा गौर कीजिए। इस भोले-भाले दिखने वाले इन्सान ने आश्रम में पलने वाली लड़की को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए उससे मंदिर में चुपचाप शादी की। इसे एक बच्चे की माँ बनाया और अब इसे पहचानने से इन्कार करता है। जज साहब ने पूछा—आपके पास इसका क्या सबूत है?

—सबूत है माई लॉर्ड, और सबसे बड़ा सबूत जिसे मैं अदालत में पेश करने की इजाजत चाहता हूँ।

—अदालत इजाजत देती है।

कण्व ऋषि अपनी झोली म बनारसी साडी और शकुन्तला के बच्चे को निकाल कर वकील के हाथो मे दे देते है।

वकील बहस जारी रखते हुए कहता है—यह रहा सबूत माई लॉर्ड शकुन्तला और दुष्यन्त का बेटा जरा मेरे फाजिल दोस्त गौर से इसे देखे। इसकी सूरत राजकुमार दुष्यन्त की सूरत से कितनी मिलती है।

जज साहब ने बच्चे को गौर से देखा। अदालत म सन्नाटा। पीछे कुर्सियो पर बैठे लोग कानाफूसी करने लगे। जज साहब ने टेबिल पर हथौडा मारते हुए कहा—आर्डर-आर्डर।

दुष्यन्त के वकील ने बहस का जवाब देत हुए कहा माई लॉर्ड मेरे मुवक्किल की जायदाद हडपने और उसे ब्लैकमेल करने की साजिश इस औरत और इस बूढे ने की है। यह बच्चा किसी और का है जिसे मेरे फाजिल दोस्त दुष्यन्त का होना कहकर मेरे मुवक्किल का वारिस बनाना चाहते है।

जज बोले यह बच्चा अभी छोटा है। जब तक यह बडा न हो जाए इसका असली चेहरा नहीं पहचाना जा सकता। इसलिए अदालत इस फैसले पर पहुँचती है कि मामला पन्द्रह-बीस साल के लिए मुल्तवी कर दिया जाए, तभी सच्चा न्याय हो सकता है।

ठहरिये माई लॉर्ड हाँफता हुआ एक आदमी अदालत मे घुसता है। वह सीधा विटनेस बॉक्स में दाखिल होकर कहता है मेरे पास इसका सबूत है माई लॉर्ड। एक साल पहले दुष्यन्त साहब मेरी दुकान मे बनारसी साडी उधार ले गए थे। क्रेडिट मीमो पर इनके दस्तखत है। यह देवी जी भी इनके साथ आयी थीं। उन्होने मुझसे कहा था कि वे उनकी पत्नी है।

जज साहब ने कहा अदालत मे वह साडी पेश की जाए।

शकुन्तला के वकील ने ऋषि को इशारा किया। व झोले से साडी निकाल कर आगे बढे।

गवाह न कहा मी लॉर्ड, मैं इन्हे साडी उधार नही दे रहा था, मुझे साडी की कीमत दिलवाई जाए। मैं उधारी का तगादा करने आया हूँ।

उधारी का तगादा आने पर दुष्यन्त के होश ठिकाने आ गए। वह साड़ी की ओर गौर से देखने लगा। अदालत ने पूछा—क्या इस साड़ी को तुम पहचानते हो? साड़ी देखकर दुष्यन्त ने कहा—मैं माफी चाहता हूँ मी लॉर्ड। मुझे याद आ गया है कि मैंने यह साड़ी शकुन्तला को दी थी।

अदालत ने कहा—बोलो, अब तुम्हें क्या कहना है? दुष्यन्त बोला—मैं शकुन्तला को अपनी पत्नी मानने को तैयार हूँ। दुष्यन्त के वकील ने कहा—मी लार्ड मेरे मुवक्किल का यह पहला गुनाह है इसीलिए मैं अदालत से दरख्वास्त करता हूँ कि उसे प्रोबेशन ऑफ आफेन्डर्स एक्ट के तहत छोड़ दिया जाए।

जज साहब ने फैसला सुनाते हुए कहा—गवाहों के बयान को मद्दे नजर रखते हुए और साड़ी को देखते हुए अदालत इस नतीजे पर पहुँचती है कि शकुन्तला दुष्यन्त की शादीशुदा बीवी है और दुष्यन्त ने उसे नहीं पहचान कर धोखेबाजी का काम किया है। लेकिन हालात को मद्दे नजर रखते हुए और फिल्मी अदालत की मान-मर्यादा को बनाए रखने के लिए अदालत दुष्यन्त को बाइज्जत बरी करती है।

अदालत से सभी लोग चले जाते हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला एक-दूसरे को थोड़ी देर देखते हैं और फिर आपस में लिपट जाते हैं।

शकुन्तला अदालत में पड़ी बनारसी साड़ी को उठाकर चूम लेती है।

❑

खान साहब-क्रिकेट वाले

खान साहब ने घर पर एक बहुत बड़ी टीम खड़ी की और क्रिकेट से सन्यास लेने वाली मुद्रा में मुझसे बोले—ज़माना खराब है भइया। ज़िन्दगी की इस पिच पर बॉल बहुत टर्न हो रही है, तुमने अपने बल्ले का किनारा सामने किया नहीं कि समझो खतरा। पैवेलियन में ऐसे जाओगे कि सब कुछ भूल जाओगे। तुम्हारे पीछे चार-चार खिलाड़ी खड़े हैं। वे छोड़ेंगे नहीं तुम्हें... समझे कुछ?

मैंने खान साहब की ओर देखा। उमर उनकी पचास के आस- पास थी। दाढ़ी कराने से ट्रिम की हुई थी। सर पर अजमेरी टोपी। दिखने में पक्के नमाज़ी लगते थे। पेशानी पर सिजदे के निशान। मैंने कहा—चचा, अब तो आप हज कर आइए।

उन्होंने एक बैट्समैन की तरह मुहल्ले में चारों ओर अपनी नज़रें घुमाईं, जैसे देखना चाहते हों कि उन्होंने बातों का ड्राइव मारा तो किधर से फील्डर दौड़ेगा। फिर मेरी ओर आहिस्ता से आए, कुछ इस तरह कि कपिल मनिन्दर के पास आता है। कहने लगे-हम तो फॉलोआन में बच जाएँ यही बहुत है। चार लड़कियाँ और निपट जाएँ तो अपना हज हो गया समझो।

मैंने चुटकी लेते हुए कहा—खान साहब, कुछ मेडन ओवर फेंक लिए होते तो आज यह नौबत नहीं आती।

वे बोले—खुदा बड़ा मेहरबान है। सबका जोड़ा लिखा है... कल फारूक इंजीनियर देख गये हैं लड़की को।

मैंने कहा—कौन से इंजीनियर? वे बोले—अरे वही जो ऑयल मिल में फोरमैन हैं... अपनी जात में तो इसी टाइप के इंजीनियर मिलेंगे... लड़की तो पसन्द

आ गई है, लेकिन मैंने कहा कि जनाब पहले आप टास कर लीजिए कि आप मेरी दुख्तर से निकाह करेंगे या टी वी और फ्रिज से।

फिर उन्होंने जेब म दो मुँहवाली डिब्बी निकाली। एक मुँह से दाहिने हाथ के अँगूठे म चूना निकाला और दूसरा मुँह खोलकर बीडी की तम्बाकू अपनी बाईं हथेली पर मलते हुए बोले—इसीलिए कहता हूँ कि निकाह को है, वह वन डे क्रिकेट का चोज नहीं है कि जितने अधिक से अधिक रन चाहो बटोर लो। इतमीनान रखो। कयामत के दिन जब अम्पायर उँगली उठाएगा, तो क्या जवाब दोगे? कुछ तो खुदा का खौफ रखो दिल मे। किस हदीस मे लिखा है कि टी वी या स्कूटर के बिना निकाह जायज नहीं ह। लेकिन कहता हूँ न कि अपना ही पिच जब खराब हो तो किसे दोष द। जमाने की हवा ह साहब! मियाँ भाइ भी इस मामले म किसी से पीछे कैसे रह सकते ह

खान साहब ने हथेली पर रखी तम्बाकू मे लगे चूने को ताली मारकर साफ किया और तर्जनी उँगली से तम्बाकू की डठले साफ करते हुए बोले—बरखुरदार हमारे जमाने मे हम तो लाग आन से दूर खडे थ और मरहूम वालिद ने डीप थर्डमैन की पोजीशन म खडे-खडे पसन्द कर ली लडकी . हम मैदान मे इतनी दूर खडे थे कि देखा ही नहीं कि शर्मिला से मिलती-जुलती ह या नही हम तो क्रिकेट की नवाबी मे मस्त थे। तीन जोडे कपड़े मे निपट गया निकाह। ऐसा लगा जैस वेस्टइडीज छिहत्तर रन मे ऑल आउट हो गई हो, लेकिन कहते हैं न कि खुदा बड़ा रहमवाला ह। आज भी बेचारी घर चला रही है। हम इधर बाहर खाट पर पडे हैं और वो है कि पैवेलियन से बाहर आने को तैयार नही। आर आज देखो अपने वालो को। शादी हुए दो दिन भी नही हुए कि घुमा रह ह स्कूटर पर पीछे बिठाकर।

खान साहब थोडी देर के लिए रुके। रुकना जरूरी भी था। उन्होंने तम्बाकू की चुटकी निचले होठ मे दबाई आर अपना मुँह बन्द किया। मुझे लगा कि बिजली की खराबी से कमेंट्री कुछ देर के लिए बन्द हो गई है। खान साहब नगरपालिका की नाली तक गये और पिच्च से तम्बाकू की एक पीक मारकर इस तरह लौटे, जैसे उन्होंने एक चिकि सिगल निकाल लिया हो।

मैंने कहा—चचा, आजकल क्रिकेट बहुत एडवास हो गया है . फास्ट खेल ही अच्छा माना जाता है . टुचुक-टुचुक सिगल बनाने के दिन लद गये। दमखम

हो तो आओ मैदान में, आठ-दस चौके लगाओ, दो-तीन सिक्स मारो और लौट जाओ वापस। फास्ट नहीं रहोगे तो पिछड़ जाओगे। पचास ओवर खेलकर बीस रन बनाने के दिन नहीं रहे। विजय हजारे और वीनू मांकड वाले दिन नहीं हैं मौलाना।

खान साहब जरा तन गये। एक तो तम्बाकू की पीक का असर था और दूसरा यह कि हमने पुराने क्रिकेट को जरा उनके सामने नीचा कर दिया। वे बोले—फास्ट क्रिकेट में स्टेमिना नहीं टिकता बेटे, मजा तो तब है जब पिच पर देर तक खड़े होकर बॉल की धुनाई करो। हमने ये बाल इसी तरह सफेद नहीं किए हैं, जिन्दगी का तजुर्बा है हमारे साथ... रवि शास्त्री बने रहोगे, तभी टीम बचेगी अपनी। समझे कुछ?

मैंने कहा—टीम के लिए अब खतरा कौन है चचा? अपना स्कोर ठीक-ठाक रहे और बोर्ड वाले खुश रहें।

वे बोले—यही तो बुराई है तुम नये लोगों में। जब तक टीम के साथ अच्छे तालमेल रखोगे, तुम्हारा वजूद बना रहेगा बेटे। हमारी टीम का मनोबल तो वैसे ही बहुत गिरा हुआ है। चार दिन की चाँदनी और फिर अँधेरी रात।

खान साहब की फिलासफी मेरी समझ में नहीं आई। मैंने पूछा—चचा, हम तो वन-डे वाले हैं। शाम तक हार-जीत हो जाए। पाँच दिनों तक हम नहीं रह सकते। अब आप ही बताइए कि डिफेंसिव खेल खेलते रहेंगे तो इन सीमित ओवरों में न अपनी पहचान बना पाएँगे और न ही टीम को खतरे से बाहर निकाल सकेंगे।

इस बार मुझे लगा कि मेरी फिलासफी खान साहब की समझ में नहीं आई। वे बोले—बेटे, हम तो इतना जानते हैं कि क्रिकेट जो है धीरज का खेल है। क्रिकेट है तो इसे क्रिकेट की तरह खेलो। गिल्ली-डंडे की तरह खेलकर क्रिकेट को नीचे मत गिराओ। बड़ी तहजीब का खेल है। आपसी समझ का खेल है। टीम का खेल है। ग्यारह जात के खिलाड़ी होते हैं टीम में। बड़ी जिम्मेदारी का काम है। हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं और सिख भी हैं। क्रिकेट में कोई हिन्दू-मुसलमान नहीं होता। क्रिकेट में टीम के लिए सबसे बड़ी चीज होती है बल्लेबाजों की पार्टनरशिप। हमने तो यही सीखा है जिन्दगी में। चाहे जब्बार मियाँ हों या मनसुख भाई, जब भी हमारे साथ रहे, हमने यही समझकर खेला कि हम अपनी टीम के लिए ही खेल रहे हैं, हमें आज भी अपनी पुरानी टीम पर नाज है।

मैंने कहा—चचा, आप तो कह रहे थे कि जिन्दगी की पिच पर बॉल बहुत टर्न ले रही है।

वे बोले—सही कहता हूँ बेटे! स्थितियाँ इतनी तेजी से बदल रही हैं कि कब क्या हो जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। किस ट्रेन के नीचे बम रखा है और किस बस को कब और कहाँ रोक लिया जाएगा, खुदा ही जानता है। हम तो अल्लाह से यही दुआ माँगते हैं कि परवरदिगार हमें नेकी के रास्ते पर चला हमारे दिलों में भाईचारा और मोहब्बत पैदा कर। इस देश की मिट्टी ही हमारे लिए जन्नत है।

खान साहब का सूफियाना अन्दाज देखकर मुझे विश्वास नहीं हो रहा कि वे वही खान साहब हैं, जो थोड़ी देर पहले मुस्लिम समाज में बढ़ते हुए दहेज की समस्या से परेशान थे। मुझे लगा कि खान साहब जिन्दगी के क्रिकेट के असली खिलाड़ी हैं जिन्होंने पिच की समझ के साथ-साथ क्रिकेट को भी समझा है। जो खिलाड़ी टीम के लिए अपने छोटे-मोटे फायदे और नुकसान को भूल जाए, उससे बड़ी कुर्बानी क्रिकेट के लिए और कुछ नहीं हो सकती।

खान साहब भूल गये कि उन्हें अपनी बेटी का निकाह करना है। खान साहब भूल गये कि टॉस के लिए उछाले गये सिक्के के एक तरफ टी वी और दूसरी तरफ फ्रिज है, खान साहब भूल गये कि अभी उन्हें चार लड़कियों को निपटाना है।

उन्हें याद रही तो केवल इस मैदान की मिट्टी।

उन्होंने सिर पर रखी अजमेरी टोपी को ठीक किया और एक जिम्मेदार बैट्समैन की तरह आगे बढ़ गये।



आदरणीय

जो महत्त्व पटवारी रिकार्ड में खसरा पाँचसाला का होना है वही महत्त्व अपने देश में आदरणीय पाँचसाला का होना है। यह पाँचसाला वाला आदरणीय जो होता है, वह झटके में आदरणीय हो जाता है। मार्केट में भले पाँच पैसे की उधारी लोग न दें, लेकिन उसे पाँच साल का पट्टा मिला नहीं कि लोग कहने लगते हैं—पूरी दुकान आपकी है। जितना चाहे ले जाइये। बस कृपादृष्टि बनाये रखना।

अपने इधर के लोगों में आदर की यही भावना तो अच्छी है। चुनाव के पहले भले ही पचास गालियाँ दे लेते हों, लेकिन परिणाम निकला नहीं कि आदर में इतना झुक जाते हैं कि हमें भी शक होने लगता है कि—"साले ऊपर उठेंगे कि जिन्दगी भर झुके ही रह जाएँगे।" इतना आदर देने वाले लोग किसी और देश में नहीं मिलेंगे आपको यह हमारा दावा है। आपको विश्वास न हो तो हमारे विधानसभा क्षेत्र में आकर देख लो। चुनाव परिणाम निकले आज तीन साल से ऊपर हो रहा है लेकिन वे अपने जनप्रतिनिधि के आदर में झुके हैं सो झुके ही हैं। कोई उनसे कहता है—"भइया, अब तो ऊपर उठ जाओ ... हो गया बहुत आदर-सत्कार ... उस आदमी को इतना आदर दोगे तो एक दिन हकबका के मर जाएगा।"

इसी महान परम्परा के कारण अपने देश में बहुत आदरणीय पाये जाते हैं। यह शब्द किसी के आगे एक धक्के में लग जाता है और किसी को उम्र भर घिसने के बाद भी नसीब नहीं होता। उन लोगों की पीड़ा लेखक होने के नाते मैं जानता हूँ। मैं एक ऐसे ही दुःखी आदमी को जानता हूँ। घर में खुदा का दिया हुआ सब कुछ है। बाल हैं, बच्चे हैं। छः चक्के वाले हैं। मौका मिलता है तो दो-चार लोगों की सेवा भी

कर देते हैं, लेकिन आदरणीय होने के लिए आज तक तरस रहे हैं। उनसे मिलने पर वे कहते हैं—मथप कर रहा हूँ मित्र कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो अपन तो इसी सिद्धान्त वाले हैं आज नहीं कल बनेंगे आदरणीय किस्मत में लिखा होगा तो कोई नहीं रोक सकता बस, मन में लगन है तो जी–जान से भिड़े हैं।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वे अपने आपको खुश करने के लिए ऐसा कहते है, और शायद इसलिए भी ऐसा कहते हो कि लोग यह न सोचने लगें कि वे आदरणीय होने के लिए मरे जा रहे है। अन्दर से कुछ भी हो, ऊपर से अपने यहाँ के लोगों के साथ ऐसी ही बातें करनी पड़ती है। यह वे भी जानते है और लोग भी जानते हैं। हम तो खैर जानते ही है। उनकी नस–नस पहचानते हैं। मौका मिल जाए और उन्हें इस बात का पूरा विश्वास हो जाए कि अगला इनको आदरणीय बना देगा तो वे तुरन्त उसके पैरों में गिर पड़ेंगे और कहेंगे—तुम जब तक नहीं कहोगे मैं तुम्हारे पैर नहीं छोड़ूँगा—लगे तो दो लात मार दो आज तुमने मेरी जिन्दगी की आखिरी इच्छा पूरी कर दी कहो तो आज 'कुमार शू सेन्टर' जाकर अपने चमड़े का जूता तुम्हारे लिए सिलवाने का आर्डर दे दूँ, बोलो? इस तरह चुप रहोगे तो मेरा आत्मविश्वास हिल जाएगा।

एक बहुत ही परमनन्द किस्सा बताता हूँ आपको। हुआ ऐसा कि एक रात तीसरे पहर जब वे घर लौटे, तो खाट पर पड़ते ही उन्हें नींद आ गई। उधर चौथा पहर लगा नहीं कि उन्हें एक सपना आया कि एक सरपंच उन्हें बुलाकर गाँव ले गया। वहाँ जाकर सरपंच ने बताया कि कुएँ का उद्‌घाटन उन्हें अपने करकमलों से करना है उन्होंने सपने में तुरन्त हाथ पोंछे ताकि कहीं गिरीस–विरीस लगा हो तो लोग शका न करने लगें, कि उनके करकमल इस उद्‌घाटन के योग्य नहीं हैं।

कुएँ के पास चावला किराया भण्डार का पण्डाल तना था। सामने मंच बना था जिस पर एक महाराजा कुर्सी रखी थी और चार सादी कुर्सियाँ थी। यह वही कुर्सी थी जिस पर कई चिरजीव और सौ का बैठ चुकी थीं। इस बार वे इस महाराजा कुर्सी पर बैठकर उसका कल्याण करने आए थे। सरपंच ने पहले पुष्पहार से उनका स्वागत किया तो उन्हें लगा कि खुशी के मारे वे कहीं चक्कर खाकर गिर न जाएँ। उनका बस चलता तो वे इस आदर की भावना के लिए सरपंच के ही पैर पकड़ लेते। लेकिन उन्होंने विवेक से काम लिया और ऐसा नहीं किया।

... किसा भाइयो और बहनो ...
गौरव की बात है कि आज आदरणीय

इसके बाद सरपंच रुक गये, गाँव के कोटवार को पास बुलाकर धीरे से कान में पूछा—क्या नाम है इनका जल्दी बता दे कार्यक्रम लेट हो रहा है।

कोटवार को वे कई बार चाय पिला चुके थे इसलिए उनका नाम उसे याद था कोटवार ने बताया तो वे 'आदरणीय' के बाद उनका नाम लेकर बोले—हमारे बीच हैं और ये इस कुएँ का उद्घाटन करने आए हैं।

महाराजा कुर्सी पर बैठे वे अपने नाम के आगे आदरणीय सुनकर इतने गद्‌गद हो गये कि अब सरपंच यदि यह भी कह देता कि 'उद्घाटन करने के बदले इसी कुएँ में कूद जाओ' तो वे सचमुच कूद जाते, लेकिन इसी बीच उनकी नींद खुल गई और उनका सपना टूट गया।

सुबह मुझसे चाय पिलाकर बोले—क्यों हो गुरु एक बात तो बताओ।

मैंने पूछा—क्या? वे बोले—क्या चौथे पहर का सपना सच होता है?

एक लेखक होने के नाते उनकी छटपटाहट मैं समझता हूँ। आप नहीं समझोगे। कभी आदरणीय हुए हो तब समझो ना?

इसे ही कहते हैं दाने-दाने पे लिखा है खाने वाले का नाम। कितना संघर्ष कर रहे हैं, लेकिन लोग हैं कि यह छोटा-सा शब्द उनके नाम के आगे नहीं लगा रहे हैं। यानी कि आदरणीय होने का दाना पाँचमाला पट्टे वाला खा रहा है और वे जहाँ आज से पच्चीस साल पहले थे, वहीं के वहीं हैं। पैसा कमा लिया तो क्या, पैसे को चाटे? पैसा तो गली वाली भी कमाती है।

उन्होंने दुबारा जब चौथे पहर के सपने वाली बात पूछी तो मैंने कहा—हाँ, हमारे बाप-दादा तो यही कहते आए थे हो भी सकता है।

वे प्रसन्न हुए बोले—एक चाय और पियो।

उन्होंने छोकरे को बुलाकर कहा—जा रे दो समोसे भी ला।

आदरणीय शब्द के पीछे महान शक्ति छिपी है इसका अहसास आज मुझे हो रहा था। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि इन देशवासियों को क्या हो गया। साले

बना क्यों नही देते इस आदमी को आदरणीय? सच कहता हूँ, मेरे बस मे होता तो मैं उसे तुरन्त बना देता और कहता—दादा, आज से मेरा खाना-पीना आपके यहाँ

और मेरा विश्वास है कि वे मान भी जाते। इस रेट में क्या बुरा है। वे क्या कोई भी मान जाएगा।

दूसरी घटना यह हुई कि एक दिन कॉलेज के कुछ लडके उनके पास आए। बोले—आपको क्रिकेट टूर्नामेंट का उद्‌घाटन करना है आज सुबह दस बजे पहला मैच है।

उन्हें लगा कि हमारे बुजुर्ग बिल्कुल सच ही कहते थे। लो देखो, कल सपना देखा और आज सच हो गया। कुआँ नहीं तो क्रिकेट ही सही। अपने को क्या फर्क पडता है। उन्होने मन–ही–मन मुझे भी धन्यवाद दिया होगा। मैंने भी सोच लिया कि इधर उद्‌घाटन निपटाकर वे आएँ और मैं समोसा खाने डट जाऊँगा। मैं जानता हूँ कि वे यदि इस पावन बेला पर सौ–दो–सौ रुपया चंदा भी माँगते, तो वे दे देते।

मै तो सडक पर आधा घंटे से मंडरा रहा था कि वे कब उद्‌घाटन निपटाकर आएँ और मैं भी निपट लूँ, लेकिन आदरणीय होने के बाद आदमी जल्दी किसी समारोह से खिसक नहीं सकता। स्वल्पाहार लेना पड़ता है। थोडा लोगों से मिलना–विलना पड़ता है, तभी तो पता चलता है कि कौन आदरणीय है और कौन स्वल्पाहार मे जबरन ठसा है।

बडी देर बाद वे वापस लौटे। मुझे भी बहुत भूख लग रही थी। मैंने बधाई देते हुए पूछा—कैसा रहा कार्यक्रम?

वे गुस्से में बोले—लडको के प्रोग्राम में जाना फालतू है साले कुछ नहीं समझते।

मैंने फिर पूछा—लेकिन क्या हुआ? कुछ बताइए तो सही।

वे बोले—क्या बताएँ सालो को नाम के आगे आदरणीय तक बोलना नहीं आता उनसे तो गाँव मे अँगूठा छाप लोग अच्छे हैं।

मैं समझ गया कि कॉलेज के लडको ने मेरे समोसो पर संकट ला दिया है मैंने सांत्वना देते हुए कहा—अब प्रधानमंत्री जी नई शिक्षा नीति ला रहे हैं , दुबारा आपके साथ ऐसा नहीं होगा।

वे फिर गुस्से में बोले—दुबारा मौका आने तक हम बचेंगे इस देश में?

वातावरण बहुत गम्भीर हो गया था। मैं उनसे यह भी कहना चाहता था दादा, किसी प्रकोष्ठ-प्रकोष्ठ में क्यों नहीं घुस जाते? लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। एक-दो दिन बाद जब नार्मल हो जाएँगे तब मैं उन्हें यह सलाह दूँगा तो मेरा भी कुछ लाभ होगा।

मैंने कहा, ''चलता हूँ।'' तो भी वे कुछ नहीं बोले कि, 'फिर कब मिलोगे' तभी मैं समझ गया कि घाव बहुत गहरा है। मुझे लगा कि उनका भविष्य अंधकारमय हो ही जाएगा क्या? मैं तो उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ लेकिन मेरे करने-न-करने से क्या होता है।

कई दिनों तक उनसे इस बीच मुलाकात नहीं हुई। मुझे भी लगा कि वे जरूर किसी जुगाड़ में लगे हैं। एक दिन हुआ ऐसा कि मुझे पाँचसाला आदरणीय के यहाँ जाना पड़ गया। काम आपको नहीं बताऊँगा ...टॉप सीक्रेट है। कल के दिन आप हल्ला उड़ा देंगे तो मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा अगला बदनाम हो जाएगा।

वहाँ मैंने देखा कि वे पाँचसाला आदरणीय के कान में धीरे-धीरे कुछ बोल रहे थे। उन्हें वहाँ देखकर मुझे लगा कि अब ये आदमी सही लाइन में आया है। जागरूक मतदाताओं के मुँह पर थूकता हुआ यह आदरणीय हो भी जाए, तो कुछ कहा नहीं जा सकता। वैसे भी प्रजातंत्र में कुछ कहना मुश्किल ही है। खुदा करे वह आदरणीय हो जाए तो कुछ लोगों के समोसे तो पक जाएँ।





गधों का ब्लैक

जयपुर मे गधो का सम्मेलन हो रहा है यह जानकर प्रसन्नता हुई। ऐसे अवसर पर प्रसन्न होना हर भारतीय का नैतिक कर्त्तव्य है। लेकिन दु:ख इस बात का है कि हमारे प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाला गधा वहाँ नही पहुँचा। राज्य सरकार को कुछ तो सोचना था कि हमारी वहाँ कितनी बदनामी हो रही होगी। राजस्थान के लोग कहते होंगे—"धिक्कार है एम पी को। पाँच साल में एक गधा भी ढँग का तैयार नहीं कर सके।"

हम तो कहते है कि आने-जाने का खर्च दे देते तो हम ही चले जाते। बुद्धिजीवी सोचकर सरकार ने सकोच किया होगा लेकिन हमे कोई शर्म नहीं। सरकारी खर्च पर आकाशवाणी कार्यक्रम मे जब हम जा सकते है तो इस सम्मेलन मे जाने मे क्या हर्ज है। ऐसे अवसरो पर साहित्यकारों के साथ सरकार को सकोच नहीं करना चाहिए। हम लोग तो सास्कृतिक कार्यक्रमों के लिए ही जीते है इस देश मे। शान से जाते और राजस्थान के गधो से सदभावना वार्ता भी कर आते और वहाँ की सस्कृति पर कोई काम करके सरकार से पुरस्कार भी ले लेते।

प्रदेश की राजनीति का हम शिकार हो गये, ऐसा लगता है। दिखने मे भले ही हम बगाल-बिहार के लगे, लेकिन प्रदेश के मुख्यमत्री का प्रमाणपत्र हमारे गले में होता तो हम भी डंके की चोट पर वहाँ जाकर कहते—"हम मध्यप्रदेश के गधे हैं। लो, हमारा सम्मान करो। यकीन न हो तो पीछे खडे होकर देख लो। हम इतने सीधे हैं कि दुलत्ती तक नहीं मारते। जितना बोझ हम पर लादोगे, हम हँसते हुए ढो लेंगे

लेकिन हमारी किस्मत में कहां है मध्य प्रदेश का प्रतिनिधित्व। हम तो राजधानी से इतनी दूर बैठे हैं कि हमारा नम्बर आने से पहले मुख्य मंत्री के निवास-स्थान पर सिफारिशी चिट्ठियाँ लेकर एक-से-एक गधे हाजिर हो जायेंगे। भोपाल जैसी राजधानी में रहने वालों को ही इसका लाभ मिलेगा यह हम अच्छी तरह जानते हैं। लोग अपने-अपने गधों को खिला-पिलाकर मोटा-ताजा बना रहे हैं ताकि देखते ही मुख्य मंत्री उन्हें सिलेक्ट कर लें। हमें भी दोस्तों ने सलाह दी कि कोशिश करने में क्या जाता है। हमारी मानो तो मुख्य मंत्री इन दिनों झुग्गी-झोपड़ी वालों से बहुत प्रभावित हैं इसलिए तुम भी किसी झुग्गी-झोपड़ी वाले से एक गधा लेकर राजधानी चले जाओ। सीधे उनके निवास पर जाना। हमारे मुख्य मंत्री बड़े संवेदनशील हैं। किसी को निराश नहीं करते। वहाँ तो रोज पचासों गधे अपना काम करवाकर लौट रहे हैं।

बात हमको जम गई। हम गधा खरीदने निकले तो पता चला कि सम्मेलन के कारण देश में गधों के रेट अनाप-शनाप बढ़ गये हैं। ऐसे गधे जो आज तक घर के न घाट के थे, उनके रेट भी आसमान पर हैं। हम समझते थे कि सस्ते में मिल जायेगा अपने देश में गधा। डिमांड देखकर रेट बढ़ाना तो हमारी परम्परा है। लोगों को पता चला कि सम्मेलन हो रहा है तो सब गधे अंडर ग्राउंड हो गये। एक सज्जन से पूछा तो वे बोले—"तीन हजार ब्लैक चल रहा है—होम डिलेव्हरी।"

हमने सोचा गधा लेने से तो अच्छा है तीन हजार ब्लैक देकर कोई अच्छी चीज ले लेंगे तो कम-से-कम री-सेल वेल्यू तो रहेगी।

घर आकर बताया तो घर वालों ने कहा, "तुम अव्वल दर्जे के मूर्ख हो। तुरन्त ले लेना था। और हम तो कहते हैं एक के बदले तीन ले लेना था। अब तो इस तरह के सम्मेलन पूरे देश में कहीं-न-कहीं होते रहेंगे और ब्लैक तो बढ़ता जायेगा। जब ब्लैक पाँच से सात हजार के बीच पहुँच जाता तो निकाल देते। चार गधों में आधा लाख तो कमा ही लेते।"

हमारी समझ में अब आया कि हमको इस देश में रहकर भी री-सेल वेल्यू की तमीज नहीं है। हम तुरन्त उस सज्जन के पास गये। बोले—"अच्छा दादा! दे दो एक गधा।"

सज्जन बोले—"गधे किसी की इंतजार नहीं करते हुजूर। वे तो चले गये।"

मैंने पूछा—"कहाँ?"

वह बोले—"अभी-अभी एक नेताजी आये थे। चार हजार और देकर ले गये। इस गधे से वह बीस हजार न कमा लें तो हमारा नाम बदल देना और हमारे नाम से कोई गधा पाल लेना। चलो, अब फूटो यहाँ से।"

समय-समय का फेर है। पहले तो सचिवालय के सामने पचासों गधे चरते रहते थे लेकिन सम्मेलन का समाचार आते ही उधर एक गधा भी नजर नहीं आ रहा है। इसीलिए तो कहता हूँ, मुझे जयपुर भेज दें तो मैं मध्य प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर आता। वेजीटेरियन हूँ। पीने-पान की आदत भी नहीं है। विशुद्ध घास पर ही जीता हूँ। कम खर्च में अपने प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाला मुझसे अच्छा और कौन मिलेगा?

अब तो रोज यही प्रार्थना करता हूँ कि, "या मालिक, मुझे अगले जन्म में गधा बनाना।" गधों के बढ़ते हुए मूल्यों को देखकर यह विचार आया है—आप इसे अन्यथा न लें।

हमारी तो आपसे भी सलाह है कि इस देश में जीना है तो गधे की तरह जीवित रहिए। बस आनंद-ही-आनंद है।



तोता बोला–राधेश्याम

जिस दिन से मेरे तोते ने 'राधेश्याम राधेश्याम' रटना शुरू किया उसी दिन से मैं परेशान था।

दरअसल सरकारी नौकरी में बहुत–सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। तोता पालना आसान है लेकिन इस तोते के कारण कोई लफड़ा हो जाए तो साहबों के घर के चक्कर काटना नहीं पोसाता। पता नहीं कौन–सा साहब किस मंत्री के गुट का हो और अपना अहित कर दे।

सुबह–सुबह मास्साब आ गए और तोता–उवाच सुनकर बोले, "कहाँ से पकड़ कर लाए गुरु इस तोते को?"

मैंने पूछा—क्यों, तो वह बोले, "लगातार बिना रुके विधायक जी का नाम लिये जा रहा है और तुम पूछते हो क्यों? इतना तो हम भी समझते हैं गुरु कि आजकल तुम्हारी राजनीति उठान पर है। हमारा भी जरा ख्याल रखना। कहीं इंटीरियर में फेंक दे तो हमें बचाना। आजकल शर्मा जी की बहुत चल रही है। हम तो तुम्हारे तोते की बात सुनकर ही समझ गए कि तुम शर्माजी के आदमी हो।"

मैंने कहा, "मैं समझा नहीं।"

वह बोले, "अब ज्यादा मत बनो गुरु। रोज दस मास्टरों की शिकायत लेकर विधायकजी के पास जाते हो और कहते हो 'समझा नहीं'।"

'समझा नहीं' उन्होंने इस स्टाइल में कहा जैसे कहना चाहते हों, तुमसे अच्छा तो तोता है जो खुले आम बक रहा है कि वह राधेश्याम वाला है। बिगाड़ लो जिसको बिगाड़ना है।

इस तोते का किस्सा यह है कि मैं इसे एक देहात से लाया था। जब वह मेरे यहाँ आया था तब केवल 'तपत-कुरु' ही बोलता था। लोगों ने कहा कि इसे लाल मिर्च खिलाओ तो जल्दी बोलना सीख जाएगा। पिछली बार जब मैं भोपाल गया था तो वहाँ के लोगों ने बताया कि भोपाल की मिर्च बड़ी असरदार होती है। मैं वहाँ से एक किलो लाल मिर्च यह सोचकर लाया था कि जितना तोता खाएगा सो खाएगा बाकी मैं खा लूँगा। थोड़ी-बहुत अपनी भी बोलने की प्रेक्टिस हो जाएगी। कभी शिक्षक-सम्मेलन वगैरह में जाना पड़ जाता है तो मुक्का बैठने में अपने को भी शर्म लगती है।

मास्साब तोते की तरफ इस तरह देख रहे थे जैसे वही उनका सी आर लिखने वाला है। बोले, "गुरु, तुम लक्की हो। एक साला हमारा तोता है सिवाय दाल भात खाने के कुछ नहीं करता। हम तो सिखा-सिखा के मर गए लेकिन ऊँ, आँ भी नहीं करता। दिन-भर साला पिंजरे में ऊपर-नीचे होता रहेगा लेकिन एक शब्द मुँह से नहीं निकालेगा। कभी-कभी इच्छा होती है कि साले की गरदन मरोड़ दूँ। और देखो तुम्हारा तोता। इसे कहते हैं भई तोता। जब से आया हूँ राधेश्याम के सिवाय दूसरा शब्द ही नहीं बोल रहा है।"

मैंने कहा, "मास्साब भोपाल की मिर्ची का असर है वर्ना ये भी मुक्का ही था।"

मास्साब कहना चाहते थे कि अब की भोपाल जाओ तो मेरे लिए भी एक पाव ले आना, लेकिन नहीं बोले। कारण क्या था यह तो नहीं मालूम लेकिन वे मेरी ओर देखने लगे। बोले, "सुना है ट्रांसफर लिस्ट बन रही है।"

मैंने कहा, "वो तो हर साल बनती है। बाबू लोग सौ-पचास मास्टरों का नाम वैसे ही जोड़ देते हैं ताकि गुरुजी लोगों का आना-जाना लगा रहे। इस देश में सबकी रोजी-रोटी लगी है मास्साब।"

तभी पिंजरे से तोता बोला, "राधेश्याम राधेश्याम।"

मास्साब बोले, "सुना है विधायकजी कुछ मास्टरों से बहुत नाराज हैं। लगता है कहीं जंगल में फेकेंगे। कितनी खुशामद करोगे नेताओं की। खादी का एक कुरता पहना नहीं कि समझते हैं मास्टर उनका नौकर हो गया उस दिन नये स्कूल

का उद्‌घाटन था तो विधायक जी मुझसे कहने लगे कि आपके खिलाफ बहुत शिकायतें हैं। यार जरा देखे रहना कहीं हमारा भी नम्बर न लग जाए इस साल।"

मैंने मजाक में कहा, "मास्साब कोई तोता पकड़ लो। आजकल तोतों का ही जमाना है। दो–चार लाल मिर्च डाल दो मुँह में। ट्यूशन में तो इस साल आपने रिकार्ड तोड़ दिया है।"

वह बोले "ठीक कहते हो गुरु। तिवारी सर भी तोता खोजने गए थे इस सण्डे को। कह रहे थे कोई अच्छा तोता दिखे तो बताना।"

मास्साब ने यह बात इस अंदाज से कही कि "प्रजातन्त्र में बिना तोते के कल्याण नहीं है। जब तक आदमी के पास तोता न हो, उसकी कद्र नहीं है। यदि ठीक से रहना हो तो तोता पालो।"

पता नहीं अचानक मास्साब को क्या सूझा। बोले, "गुरु, इस तोते का पिंजरा अन्दर वाले कमरे में रख दो।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

वह बोले," कोई शिकायत कर देगा कि तुम राजनीति कर रहे हो। सरकारी नौकरी में रहकर राजनीति को अन्दर के कमरे में ही रखना ठीक है। बैठक में पचास तरह के लोग आते हैं। इसी बात पर कोई शिकायत हो जाएगी तो डिपार्टमेंटल इन्क्वायरी में फँस जाओगे।"

मैंने कहा "इसमें कौन–सी राजनीति है? तोता भई तोता। जो मुँह में आ रहा है, बोल रहा है। और फिर हमने तो नहीं कहा कि राधेश्याम–राधेश्याम कहो। मास्साब, इतनी स्वतन्त्रता तो हमारे संविधान में है। मास्टरी कर रहे हैं इसका यह अर्थ तो नहीं कि एक तोता भी न पाल सकें? बड़े साहबों के बंगलों पर तो खुले आम तोते लटक रहे हैं। क्या राजनीति केवल मास्टरों के लिए ही है? सिंचाई वाला साहब ब्रीफकेस में नोट भर कर सैकेटेरियेट में जाता है तब राजनीति नहीं दिखती लोगों को?"

मास्साब बोले, "गुरु तुम भी कहीं मिर्ची–विर्ची तो नहीं खा गए हो? इतनी तेज बात कर रहे हो कि हमें भी डर लग रहा है। हम तो सलाह दे रहे थे कि राधेश्याम बोलना सिखा दिया है वहाँ तक तो ठीक है लेकिन इसका प्रचार मत करो।

क्या पता राजनीति में कल क्या हो जाए और तुम लफड़े में पड़ जाओ। वैसे संविधान तो हमने भी पढ़ा है गुरु। लेकिन हर जगह संविधान को लाओगे तो सरकारी नौकरी में चलना मुश्किल हो जाएगा।'

मास्साब थोड़ी देर के लिए रुके। एक बार तोते की तरफ देखा और बोले, ''राजनीति में कौन आदमी कहाँ चला जाएगा, नहीं कह सकते। लेकिन हमारा कहना इतना ही है कि हमारा ख्याल रखना। तोते को समझा देना कि हमें अपना आदमी ही समझे।''

तभी तोता बोला, ''राधेश्याम. राधेश्याम।''



कहाँ हो मुर्गीचोर ?

मेरे लिए यह चिन्ता का विषय है कि देश में आज भी मुर्गीचोर है। मैं तो समझता था कि आजादी के बाद हमारे यहाँ के चोरों का स्तर मुर्गी से ऊपर उठ गया है। मुझे लोगों को बताने में शर्म लगती है लेकिन करूँ भी क्या? यही तो हमारा राष्ट्रीय चरित्र है। मुर्गी जैसी छोटी चीज पर हम अपनी नीयत खराब नहीं करेंगे तो हमें इस देश का नागरिक कौन कहेगा? इक्कीसवीं सदी में जाने को तैयार हैं हम, लेकिन हमारा स्तर तो देखिए! मैं कहता हूँ—अबे मुर्गीचोर! शर्म नहीं आती ऐसा करते? पहले अपना नैतिक स्तर ऊपर कर फिर चले जाना इक्कीसवीं सदी में।

आप सोच रहे होंगे कि मैं अपने ही संस्कारों की बखिया उधेड़ रहा हूँ लेकिन यह भी तो सोचिए कि आपकी पचास रुपए की मुर्गी चोरी हो जाती तो आप क्या करते? नैतिकता और सिद्धान्त की बातें करनी तो मुझे भी आती हैं श्रीमान्! लेकिन मैं पूछता हूँ कि नैतिकता और सिद्धान्त की बात करूँगा तो अण्डे क्या आप देंगे? इसी देशी मुर्गी के अण्डे खा-खाकर मैं इस महान् देश का महान् नागरिक होने का गौरव प्राप्त कर रहा हूँ। भाई लोगों ने इस बार इसी मुर्गी पर हाथ साफ कर दिया। मेरा दिल जल रहा है और आप कहते हैं चुप रहूँ। कैसे हो सकता है यह? मुर्गी जैसे अल्पसंख्यक प्राणी की भी सुरक्षा नहीं रही। बापू के आजादी के सपने चकनाचूर हो गए मेरी इस मुर्गी की चोरी के साथ।

सोचता हूँ अखबार में विज्ञापन दे दूँ कि जिस सज्जन ने खाने के लिए या मारने के लिए मेरी मुर्गी चुराई हो वह अपना नाम और पता जरूर बता दे ताकि मैं उस सज्जन पर कुछ सार्थक साहित्य लोगों को दे सकूँ। लेकिन क्या इस तरह का विज्ञापन देने से कोई व्यक्ति सामने आएगा? ईमानदारी का स्तर अपने यहाँ इतना ऊपर उठ गया

है कि असली मुर्गीचोर को पुरस्कृत भी करना चाहूँ तो वह सामने नहीं आएगा। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? बस, इस कमरे में उदास बैठा हूँ। सूरज क्षितिज को पार करता हुआ पश्चिम दिशा की ओर बढ़ रहा है। आकाश पर हल्के गुलाबी रंग की एक परत जमने लगी है। इस गुलाबी रंग में हमारी नैतिकता, हमारा चरित्र, हमारी संवेदना सब कुछ अस्त होने को है। कवि होता तो ऐसी ठोस स्थिति पर एक धारदार कविता लिख देता लेकिन मुझे तो इस क्षितिज पर केवल एक मुर्गी नजर आ रही है जो देश के मुर्गीचोर के हाथों में फड़फड़ा रही है। मैं जानता हूँ वह उसे मारकर आज अपनी डायनिंग टेबल पर सजा देगा और अपनी शौर्य–गाथा में गौरवान्वित हो लेगा।

अनेक कल्पनाएँ आ रही हैं इस मुर्गी को लेकर। मुर्गी याने कि सर्वहारा वर्ग का प्रतीक। मुर्गी याने कि शोषण की शिकार मुर्गी याने की एक असहाय वर्ग जिस पर छुरा चलाने के प्रति किसी का चिन्तित होने की फुर्सत नहीं है। आप कहेंगे मैं अच्छा खासा व्यंग्य लिखते–लिखते गम्भीर होने लगा। श्रीमान्, मेरी यह मुर्गी मेरे लिए भारतीय सस्कृति की प्रतीक थी। उसके हर अंडे में अच्छे संस्कार की खुशबू आती थी। वह एक मुझ जैसे सभ्य नागरिक के घर में पली थी। इस मुर्गी का चरित्र केवल मैं ही जानता हूँ। दिन–भर पेट के लिए दाने चुगना ही उसकी नियति थी और निश्चित समय पर और निश्चित स्थान पर अण्डे देना ही उसकी सु–संस्कृत मानसिकता थी। बेचारी आज मुर्गीचोरों से बच नहीं पाई। खुदा मुझे यह दु:ख वहन करने की शक्ति प्रदान करे। मेरा अन्तर्मन दु:खी है।

रात मुझे एक सपना आया। मुर्गीचोर मेरे कमरे में खड़ा है। मैं उसे देख रहा हूँ। उसका चेहरा ओजस्वी है। ललाट उन्नत है। सर पर बहुत कम बाल हैं। उसने सफेद कुरता और सफेद पाजामा पहन रखा है। चेहरे पर सौम्य मुस्कुराहट है, जैसे कहना चाहता हो—एक मुर्गी के लिए इतना परेशान क्यों हो रहे हो?

इसके पहले कि मैं कुछ कहता, उसने कहा, "मैं जनता का सेवक हूँ, मेरे योग्य सेवा का आदेश दो।"

मैंने पूछा, "क्या तुमने मेरी मुर्गी चुराई है?"

वह बोला, "हाँ, लेकिन यह कार्य मैंने जन–हित में किया है। जो काम जन-हित में किया जाता है वह चोरी नहीं कहलाता, जन–सेवा कहलाता है और जो जन-सेवा के लिए शहीद होता है उसे खुदा जन्नत में अच्छी जगह देता है। देखो, तुम्हारी मुर्गी जन्नत के फरिश्तों के बीच कितनी खुश नजर आ रही है।"

उसने दीवार पर टंगे हिन्दुस्तान के नक्शे पर हाथ फिराया और मैंने देखा कि नक्शा जन्नत में तब्दील हो गया है। अब जन्नत के दृश्य का वर्णन करने लग जाऊँगा तो आप इस रचना को यहीं छोड़कर पुस्तक का पृष्ठ पलट देंगे और कहेंगे, "मित्र ऐसी जन्नत तो नेताओं की कृपा से हम कई साल से इस नक्शे में देख रहे हैं।"

मैंने मुर्गीचोर से पूछा, "श्रीमान्, यह बताइए कि इस देश में मुर्गी जैसे विकासशील प्राणी को अपनी जिन्दगी जीने का मौलिक अधिकार प्राप्त है फिर आपने उसकी स्वतंत्रता का हनन क्यों किया?"

इतनी स्तरीय हिन्दी सुनकर उसके मन में मेरे प्रति आदर की भावना जागृत होना स्वाभाविक था। भले वह मुर्गीचोर था लेकिन था तो हिन्दीप्रेमी।

वह बोला, "मित्र, वास्तविकता यह है कि डाक-बंगले में एक मंत्री जी अपने जन-सम्पर्क दौरे में रात्रि विश्राम के लिए रुके थे। उनके पी.ए. ने मुझे बताया कि मंत्रीजी मुर्गी-प्रेमी हैं। मैंने उन्हें बताया कि इस विधानसभा क्षेत्र में मुर्गियों की शार्टेज चल रही है। तमाम मुर्गियाँ दाने की तलाश में पलायन कर गई हैं इसलिए मंत्री जी के मुर्गी-प्रेम को रात्रि डाक-बंगले में जीवित रखना सम्भव नहीं है। मेरा जवाब सुनकर पी.ए. ने मेरे देश-प्रेम को ललकारा और मुझे बताया कि मंत्रीजी देश के लिए अपना खून पसीना एक कर रहे हैं तो क्या इस विधानसभा क्षेत्र से उन्हें एक मुर्गी का भी सहयोग नहीं मिलेगा? बस, इसी प्रेरणा से मैंने आपकी मुर्गी चुराई है।"

थोड़ी देर रुक कर वह बोले, "आपकी मुर्गी पर मेरी नजर पड़ी और उसका शारीरिक विकास देखकर मैं समझ गया कि इसके दिन फिर गए। मंत्री जी की कृपा से वह सीधे जन्नत में जाएगी। इसी आदर्श भावना का शिकार यह जन-सेवक हो गया। देखिए, आपकी मुर्गी जन्नत के फरिश्तों के साथ कैसी फुदक रही है।"

उसने फिर हिन्दुस्तान के नक्शे पर हाथ फिराया और मैंने देखा कि पूरी जन्नत इस क्षितिज की तरह लाल हो गई है और एक फरिश्ता हाथ में तेज छुरी लिये मुर्गी की ओर लपक रहा है।

आँख खुल गई। कमरे में कोई नहीं था। दीवार पर देश का नक्शा फड़फड़ा रहा था और मेरी इच्छा फिर से मुर्गीचोर को गालियाँ देने की हो रही थी।



लेखिका का कुत्ता

मिसेज खान उदास थी। तकलीफ तो इस बात की है कि वह औरत होने के साथ लेखिका भी है। और जब लेखिका उदास होती है तो पड़ोसियों को तकलीफ होती है। मुझे भी थी। इसलिए उनसे मिलने को जी मचल रहा था।

मुझे देखकर वह प्रसन्न हुई। बोलीं, "आप जानते ही हैं कि मैं उसे कितना प्यार करती थी। जब से हजरत भागे हैं मेरा तो खाना हराम हो गया है।"

मैंने कहा, "लेकिन कल तो मेरी खान साहब से मुलाकात हुई थी।"

वह बोलीं, "मैं कुत्ते की बात कर रही हूँ। आपने तो देखा था न?"

मैं कहना चाहता था—देखा ही नहीं था अपने आपको कटवा भी चुका हूँ। कहें तो कुत्ते की गाल सील का निशान अभी दिखा दूँ। लेकिन नहीं कहा। यह सोचकर कि इससे मिसेज खान के दुःख का पहाड़ और भारी हो जाएगा। वह संवेदनशील लेखिका है और संवेदनशील लेखिका का दुःखी होना कम-से-कम मैं तो बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा क्योंकि वह संवेदनशील होने के साथ-साथ खूबसूरत भी है।

लेखिकाओं के कुत्ते भी घर से भागते हैं, यह मैं पहली बार देख रहा था। मैं तो समझता था कि लेखिकाएँ बड़ा सीधा-सादा कुत्ता ही पालती हैं, जो केवल दुम हिलाकर ही खुश हो जाता है। लेकिन लगता था कि वह कुत्ता जरूर क्रांतिकारी विचार-धारा से प्रेरित है।

मिसेज खान ने रूमाल निकाल लिया। मैं थोड़ी देर और चुप रहता तो शायद वह रोने लगतीं। मैंने महसूस किया कि कुत्ते की पीड़ा उनके चेहरे पर उभर रही थी

मैने कहा "जी हाँ! बड़ा जानदार था। दरवाजे पर खड़ा रहता था तो लगता था कि घर का मालिक खड़ा है।"

वह बोलीं, "आप तो देख ही रहे हैं कि मैं कितनी दुःखी हूँ। उसका गम मुझे खाता जा रहा है। आप जैसे लोग मिलने आ जाते हैं तो मैं कुछ देर के लिए कुत्ते का गम भूल जाती हूँ।"

ऐसी दुखद स्थिति मे मेरा महत्त्व मुझे खुशी दे रहा था।

वह बोलीं, "आठ दिनों से अखबार में इश्तहार दे रखा है लेकिन कुछ नहीं हो रहा है। और हाँ देखिए न अखबार वालों ने भी विज्ञापनों के कितने रेट बढ़ा दिए हैं। पूरे पचास रुपये लग गये। मुझे अच्छी तरह याद है कि पापा ने जब मेरी शादी के लिए विज्ञापन दिया था उस समय केवल पच्चीस रुपये लगे थे।"

शादी को याद करके मिसेज खान के चेहरे पर परिवर्तन की लहर आ गयी। शायद वे थोड़ी देर के लिए अपना दर्द भूल गयी थी बोलीं "मैं लाने वाले को एक सौ रुपये इनाम भी देने की सोच रही हूँ।"

मेरी इच्छा हुई कि मैं कुत्ते को ढूँढने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दूँ। मुझे लगा वास्तव मे मिसेज खान बड़ी लेखिका हैं।

और एक मेरा कुत्ता है। पत्नी ने प्यार से नाम रखा है, कालू। भला यह भी कोई कुत्ते का नाम हुआ! बिल्कुल आदमी के नाम की तरह लगता है। किसी के सामने नाम लेने में भी शर्म आती है। दिखने मे काला ठूस। शरीर पर कई जगह बाल झड गये हैं जैसे मखमल के कपडे के रेशे झड गये हो। कुत्ता तो परिवार की शान होता है। जब पत्नी उसे प्यार से कालू कहती है तो इच्छा होती है कि साले को दो लात लगाऊँ। पत्नी के सामने दुम हिलाने में तो उसने बड़े से बडे को भी मात कर दिया है।

मिसेज खान कुत्ते का मूल्यांकन कर रही थीं। और मुझे कोफ्त हो रही थी। कालू याद आ रहा था जो कमबख्त मेरे घर से भागने का नाम ही नहीं लेता था। आखिर मैं भी तो छोटा-मोटा व्यंग्यकार हूँ। घर से भाग जाना तो कम-से-कम साहित्यकार तो हमदर्दी दिखाते। मैं सोच रहा था कि घर जाकर श्री कालू जी को दस-बीस डंडे जमाऊँगा। डंडे से तो बड़े से बड़े भूत भी भाग जाते हैं आखिर वह तो कुत्ता है। कम-से कम इसी बहाने साहित्य में कुछ नाम हो जाएगा।

मिसेज खान ने मेरी दुखती रग पर हाथ रख दिया। बोलीं, "आपका कुत्ता भी तो शायद भाग गया था न।"

मैं कहना चाहता था—मेरे ऐसे भाग्य कहाँ। लेकिन इससे मैं हीनता की भावना से ग्रसित हो जाता। और एक लेखिका के सामने ऐसी हरकत करने में मुझे शर्म आ रही थी, इसलिए बोला, "जी हाँ। आपको याद है पिछली बार जो कवि सम्मेलन हुआ था। मैं यह सोचकर कि व्यंग्यकार का कुत्ता है, कुछ साहित्यिक टेस्ट तो रखता ही होगा उसे अपने साथ कवि सम्मेलन में ले गया। लेकिन पट्ठा वहाँ से जाने कब गायब हो गया। न पूछिए, बीवी इतना रोई कि क्या कहूँ। कहने लगी आग लगे कवि सम्मेलन को। माटी मिले कवियों का मुर्दा निकले। मेरे प्यारे कालू को मुझसे छीन लिया। खुदा उनको दोजख नसीब करे।"

"आप ठीक कहते हैं। इसको केवल औरत ही समझ सकती है कि कुत्ते के लिए उनके दिलों में कितनी जगह होती है। आप ठहरे मर्द। आप क्या जानेंगे कुत्ते का दर्द।"

मैं कहना चाहता था—"मर्द कुत्ते का नहीं कुत्ते के काटने का दर्द ही समझ सकते हैं।"

मिसेज खान बोलीं, "मेरा टाइगर भौंकता था तो पूरा मुहल्ला सहम जाता था।"

वे फिर उदासी की सीढ़िया पर चढ़ने की भूमिका बना रही थीं। और मेरा कुत्ता है, किसी को भौंकेगा तो पहले दुम दबाकर घर में घुसेगा और फिर परछी पर खड़ा होकर ऐसी मरियल आवाज में भौंकेगा कि मक्खी भी नहीं डरेगी। क्या करें पत्नी ने उसे ट्रेनिंग ही ऐसी दी है।

मिसेज खान बोलीं "मेरा लेखन मफर कर रहा है। कुछ लिख ही नहीं पाता हूं। कुछ सूझता ही नहीं। जब तक वह सामने नहीं होता कोई प्लॉट ही नहीं आता दिमाग में।"

वह एमे बोल रहो थीं जैसे उनके बदल उनका कुत्ता ही कहानियाँ लिखता है और उस पर मौलिक तथा अप्रकाशित का प्रमाण-पत्र भी लगा देता है।

मेरी इच्छा नहीं हो रही थी कि कुत्ते पर आधारित इस परिचर्चा गोष्ठी को छोडकर उठ जाऊँ। लेकिन इसी बीच पत्नी का संदेश आया कि जल्दी आओ।

घर पहुँचा। पत्नी मुँह फुलाए बैठी थी। वैसे तो खुदा के फजलो-करम से उसका चेहरा ही ऐसा है कि कुछ पता नहीं चलता कि किस मूड में है। लेकिन आज चेहरे पर फूलन कुछ ज्यादा परमेंट ही थी। बोली, "घंटे भर से वहाँ क्या कर रहे थे? मेरे पास तो दस मिनट बैठने पर ही जान पर बन आती है।"

मैंने कहा, "मिसेज खान दु:खी हैं। उनका कुत्ता भाग गया है।"

वह तुनक कर बोली, "दूसरो के कुत्तों की पड़ी है। कालू सुबह से घर से गायब है इसकी फिकर नहीं है?"

मैं खुश हो गया। चलो अपना कुत्ता भी समझदार निकला। कम-से-कम मिसेज खान का कुछ तो असर हुआ।

पत्नी बोली, "जल्दी बाजार जाओ। शक्कर और चाय की पत्ती नहीं है। अभी मुहल्ले की औरतें पूछने आएँगी। मैंने मुहल्ले में सबको खबर कर दी है कि हमारा कुत्ता भी भाग गया।"

मैं बाजार जाने के पहले मिसेज खान को यह खुशखबरी सुनाना चाहता था।

जैसे ही उनके घर पहुँचा तो देखा कि मेरा कालू मिसेज खान की गोदी में लेटा था और मिसेज खान प्यार से कह रही थीं, "काश, मैंने तुम्हें पाला होता।"

एक कुत्ते से साक्षात्कार

इस मुहल्ले के लगभग सभी कुत्ते आत्मनिर्भर हैं। इन्हें रोजी-रोटी के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। इनकी पूँछ हिलाने की प्रैक्टिस भी करीब-करीब समाप्त हो गयी है। भौंकने के मामले में भी वे आत्मनिर्भर हैं। उन्हें किसी पर भी भौंकने की छूट है। लेकिन इस बीच इन कुत्तों की समझ भी काफी हद तक विकसित हुई है। उनके सोने के कमरों में एक सूची होती है जिन पर उन व्यक्तियों और पदाधिकारियों के नाम होते हैं जिन पर उन्हें अनिवार्य रूप से भौंकना है। ये कुत्ते इन्हें कंठस्थ कर लेते हैं।

सुबह के नाश्ते में इन्हें छीछड़े दिये जाते हैं। इन छीछड़ों में हड्डी नहीं होती। कुत्तों के संस्कार अच्छे बनाने के लिए इन्हें सप्ताह में एक बार हड्डी दी जाती है। वैसे भी अब इन कुत्तों को हड्डियों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि सप्ताह में एक बार मिलने वाली हड्डी की ओर वे देखते तक नहीं। दोपहर में उन्हें गोश्त दिया जाता है। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा इनके भोजन में सन्तुलित रखी जाती है। तब कहीं जाकर इनको समझ आती है कि किन लोगों पर नहीं भौंकना है। शाम को उन्हें आँगन में बाँध दिया जाता है ताकि वे सड़क के बाहर चलने वाले लोगों को देखें और पहचानें कि आदमी कितने प्रकार के होते हैं। शाम के समय वे लगभग मौन धारण करते हैं और गंभीरता से मानव-प्रवृत्ति पर चिंतन-मनन करते हैं।

इस मुहल्ले के हर घर में एक कुत्ता है। जब भी कोई नया आदमी इस मुहल्ले में शिफ्ट होता है तो पहले मकान में कुत्ता आता है। फिर बाद में फ्रिज, टी.वी. और बीबी-बच्चे दाखिल होते हैं। लगभग मुहल्ले के सभी घरों में एक साहब और एक

कुत्ता अनिवार्य रूप से आता है। जब साहब घर पर नहीं होते तो कुत्ता आने वालों का स्वागत करता है। मेम साहब यह बताती हैं कि आने वाले किस आदमी पर नहीं भौंकना है।

कुल मिलाकर खान-पान के मामले से लेकर पूँछ हिलाने और भौंकने तक के मामले में इस मुहल्ले के कुत्ते आत्मनिर्भर हैं। अपनी-अपनी किस्मत है। शहर में यही एक कुत्तों की कॉलोनी है जहाँ भव्य, सुसंस्कृत और संस्कारशील कुत्ते रहते हैं।

साक्षात्कार के संपादित अंश

■ इस मुहल्ले की एकता और अखण्डता के बारे में आप क्या सोचते हैं?

□ इस बारे में मैं अपनी कोई राय नहीं देना चाहता। इतना कह सकता हूँ कि इस मामले में हम आदमियों से अच्छे हैं।

■ लेकिन यह देखा गया है कि आप अपनी ही बिरादरी के लोगों पर ज्यादा भौंकते हैं। क्या इससे अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि आप कुत्ता-समाज की अखण्डता पर प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं?

□ दरअसल उन कुत्तों को हम हेय दृष्टि से देखते हैं जो गलियों और सड़कों पर बिना किसी आत्मसम्मान के घूमते हैं। कुत्ते का अपना आत्मसम्मान होता है, अपनी पूँछ होती है। संविधान में पूँछ हिलाने की स्वतंत्रता जरूर है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम किसी भी आदमी के सामने इसे हिलायें। पूँछ के मामले में हमारे मुहल्ले के कुत्ते जागरूक हैं। हम दूसरे कुत्तों पर भौंकते हैं, वह केवल उन्हें यह सिखाने के लिए कि आत्मसम्मान की जिंदगी जीना सीखो।

■ आपने पूँछ हिलाने की बात कही है। मैं समझता हूँ, यह नैतिक अधिकार है कुत्ते का। आप इस तरह वक्तव्य देकर क्या अन्य कुत्तों के इस नैतिक अधिकार पर प्रहार नहीं कर रहे हैं?

□ नैतिकता की बात आदमी सोचते हैं। हम कुत्तों के लिए नैतिकता एक गैर-कानूनी चीज है। हम स्वामिभक्ति को ही नैतिकता की परिभाषा मानते हैं।

■ आपने स्वामिभक्ति की बात उठाई तो मैं आपसे एक सवाल करना चाहूँगा।

उन कुत्तों के बारे में आप क्या सोचते हैं जो इस इलाके में स्वामियों के अभाव में दिशाहीन हो रहे हैं?

□ आपने अच्छा प्रश्न उठाया है। स्वामिभक्ति हम कुत्तों का पारंपरिक गुण है। हर कुत्ता जब पैदा होता है तो उसकी माँ कहती है—बेटा, किसी अच्छे मालिक की तलाश कर लेना जो तुम्हें संरक्षण देता रहे। फिर जब कुत्ता बालिग होता है तो उसे सही दिशा नहीं मिल पाती। वह मुहल्ले के आवारा कुत्तों के साथ घूमने लगता है। रात देर तक सड़कों पर घूमता है। उसे लगता है कि स्वामिभक्ति से आजादी बड़ी चीज है। वह स्वच्छंद रहना चाहता है। फिर रात के अँधेरे में एक आदमी शराब के नशे में ट्रक चलाता हुआ आता है और उसे रौंदकर चला जाता है। अब आप बताइए कि आजादी बड़ी चीज है या स्वामिभक्ति? हम इस मुहल्ले में आज बरसों से रहते हैं, एक सम्मान की जिंदगी जी रहे हैं। हमें इस बात का भय नहीं है कि कोई तेज ट्रक हमें रौंद डालेगा। यदि किसी ने हमारी ओर उँगली उठाई तो हमारा स्वामी हमारे लिए उसकी उँगली तोड़ देता है।

■ मैं समझता हूँ, आप विषय से हट रहे हैं। बात दिशाहीनता की हो रही थी और आप स्वामिभक्ति की लाइन पर आ गये। मेरा मूल प्रश्न यह है कि कुत्ता समाज की इस दिशाहीनता की जिम्मेदारी आप किस पर डालते हैं? और, दूसरी बात यह है कि क्या आप यह सोचते हैं कि हमारे इन कुत्तों के हित में किसी स्वामी का होना आवश्यक है?

□ मैंने जैसा आपसे कहा था कि हर कुत्ता इसीलिए पैदा होता है कि वह एक ऐसा स्वामी तलाश करे जो उसे यह बताये कि कब, कहाँ और किस पर भौंकना है। यह भौंकने की तमीज हर कुत्ते में होनी जरूरी है। जब हम भौंकते हैं तो हमें अपने स्वामी का संरक्षण प्राप्त होता है। वह भौंकने के मामले में हमें एक दिशा देता है। अक्सर आपने देखा होगा कि एक विशेष मुहल्ले का कुत्ता केवल अपने मुहल्ले में प्रभावशाली ढँग से भौंक पाता है। लेकिन, जब वह दूसरे मुहल्ले में जाता है तब उसकी यह भौंकने की क्षमता बहुत कम हो जाती है। कभी आपने सोचा है कि ऐसा क्यों होता

है? यह सच इसलिए होता है कि अपने मुहल्ले के अतिरिक्त उसे दूसरे मुहल्ले में संरक्षण का अभाव नजर आता है।

■ मुझे क्षमा करें। अभी आप मूल प्रश्न पर नहीं हैं।

□ हम कुत्तों से आप इससे अधिक और किसी प्रकार की अपेक्षा न करें तो ज्यादा अच्छा है। इस मुहल्ले में हमें यही सिखाया जाता है कि जो कुछ कहो बहुत सोच-समझकर कहो। कुत्ते हो—इसका यह मतलब नहीं कि जैसा मुँह में आया भौंक दिया। हमें यह सिखाया जाता है कि बिना सोचे-समझे भौंकने के परिणाम घातक भी हो सकते हैं।

■ मैंने आपका बहुत समय ले लिया। अंत में आपसे केवल इतना ही पूछना चाहता हूँ कि आप अपनी बिरादरी के नाम कोई संदेश देना चाहें तो मुझे बतायें।

□ जिन कुत्तों के सामने जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है मैं उनके बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। जो कुत्ते अपनी जिम्मेदारी समझते हैं, जो यह महसूस करते हैं कि उन्हें आदमी की अपेक्षा समाज में ऊँचा स्थान बनाना है, उनसे मेरा यही कहना है कि वे यह न भूलें कि वे कुत्ते हैं, और कुत्ता होने के नाते उनके भी कुछ मौलिक अधिकार हैं, जिनका उपयोग उन्हें काफी सोच-समझकर करना है। जो कुत्ता भौंकने की आजादी का मतलब समझ जायेगा वह कभी दुःखी नहीं होगा।

साक्षात्कार पूरा करके जब मैं बाहर निकला तो एक लावारिस कुत्ते ने मेरी ओर ललचाई नजरों से देखा जैसे कहना चाहता हो—"हमारा साक्षात्कार कब लोगे?"

❑

छूटे हुए कबूतर

पहली बार अपने मंत्री जी ने दूरदर्शन पर कबूतर उड़ाए। मन प्रसन्न हुआ। कई दिनों से टी वी पर नाना प्रकार के जानवर देखकर बोरियत होने लगी थी। मन्त्री जी के हाथों से कबूतर उड़े और दूरदर्शन वालों ने कैमरा आसमान में तान दिया। फिर नहीं कहना कि दूरदर्शन वालों ने शांतिदूतों को सही कवरेज नहीं दिया। शेर-चीते देखकर हमारी मानसिकता भी मांसाहारी होने लगी थी। इस राजनीति में कबूतर जैसे प्राणी पर किसी का ध्यान नहीं गया। अब अपनी कुर्सी बचाने के चक्कर में रहे अचानक जब मंत्री जी ने कबूतर उडाए तो लगा जैसे कबूतरों के भावों का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए व्यवस्था में बैठे लोग हड़बड़ा रहे हैं।

उधर मंत्री जी ने राजधानी में कबूतर उड़ाए और इधर अपने शहर में एक खेल-प्रतियोगिता का शुभारम्भ करते हुए एक उच्च प्रशासनिक अधिकारी ने भी यही काम किया। उड़ा दिये कबूतर। याने कि अब व्यवस्था और प्रशासन में चारों तरफ कबूतर उडाने का फैशन चलेगा। हम ईमानदार नागरिक हैं। जो काम हमारे मंत्री करेंगे वही काम हम भी करेंगे। जहाँ मौका दिखेगा, उड़ा देंगे कबूतर।

मेरे एक मित्र ने कहा, "यार, बड़े जोरदार कबूतर हैं। कहाँ से पा गए पुलिस वाले। अपने यहाँ तो लकवा के इलाज के लिए भी कबूतर नहीं मिलते।"

मैंने कहा, "डॉक्टर काजी साहब के यहाँ से लाए होंगे पुलिस वाले। उन्हें कबूतर पालने का बड़ा शौक है। ऊपर से आदेश हुआ होगा कि बड़े साहब इस बार कबूतर उड़ाकर समारोह का शुभारम्भ करेंगे। एस पी साहब ने थानेदार को वायरलैस पर खबर दी होगी कि दो-चार अच्छे कबूतर भिड़ाकर रखना, बड़े साहब के लिए।

कहीं ऐसा न हो कि प्रशासन में पुलिस की भूमिका संदिग्ध हो जाए और साहबों को ऐसा लगे कि पुलिस दो कबूतर के लायक भी नहीं रही।"

वह बोले "यार, तुम बे-पर की हाँकते हो। इतना बड़ा एस.पी. क्या ऐसा आदेश देगा? एस.पी. साहब भी जानते हैं कि देश में शांति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए कबूतरों की नहीं, पुलिस के जवानों की जरूरत होती है। कबूतरों के भरोसे रहने के दिन गए बॉस... जब तक पुलिस की लाठी नहीं चलेगी हमें भी नहीं लगता कि हम शांति-व्यवस्था में जी रहे हैं। तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूँ कि इस तरह कबूतर उड़ा देने से शांति स्थापित नहीं होती। आजादी के बाद हमारी आदतें बदल गई हैं। अब कबूतर देखकर हमें उसके खून की मालिश करने की इच्छा होती है। शांति-दूत की दुर्गति हो रही है बॉस! क्या?"

कार्यक्रम का शुभारम्भ हो चुका था और मुख्य अतिथि अपनी आसंदी से लोगों को समझा रहे थे कि प्रतियोगिताओं और खेलों में आपसी सद्भाव कितना अच्छा है... हार-जीत तो होती ही रहती है, लेकिन सद्भाव कायम रखने में ही लाभ है। दो दलों में एक दल तो हारता ही है, लेकिन खिलाड़ी की भावना का परिचय देना ही हमारी परम्परा रही है। मुख्य अतिथि ने लोगों को हमारी महान संस्कृति की याद भी दिलाई और बताया कि हम कितने महान् हैं। वे अकबर और जोधा बाई का उदाहरण देने के मूड में आ गए थे, लेकिन कुछ सोचकर उन्होंने बात को इस तरह मोड़ दिया—"मैं अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ कि ये खेल आपसी सद्भाव और शांतिपूर्वक निपट जाएँ। आपने मुझे इस अवसर पर कबूतर उड़ाने का अवसर प्रदान किया, इसके लिए मैं खेल-समिति के सम्मन्न पदाधिकारियों का आभारी हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप आसमान में उड़ते इन कबूतरों से प्रेरणा लें और अपने जीवन में ऊपर उठने का प्रयास करें... आपको कबूतरों से शांति बनाए रखने की प्रेरणा भी लेनी है, इसे न भूलें। मुझे विश्वास है कि इन शांति-दूतों को आप खेल में नहीं भूलेंगे। जय हिन्द!"

उधर मुख्य अतिथि ने भाषण में जय हिन्द लगाया और इधर मेरे मित्र बोले, "बॉस, मुझे लगता है कि अपने प्रधानमंत्री अब हर राज्य में कबूतर उड़ाना कम्पलसरी कर देंगे... रीयली दिस बर्ड इज ए परफेक्ट शांतिदूत। आपका क्या विचार है? व्हाट डू यू थिंक अबाउट दिस कबूतर कार्यक्रम?"

मैंने कहा, "मुख्य अतिथि कितनी ऊँची बात कर रहे थे और तुमने यह टिप्पणी कर उनकी उच्च भावना का सत्यानाश कर दिया। कभी तो राजनीति से ऊपर उठकर सोचा करो। क्या हमने अपने मंत्रियों को कबूतर उड़ाने के लिए विधानसभाओं और लोकसभाओं में भेजा है? कबूतरों को कबूतर ही रहने दो, उन्हें किसी राजनीति या प्रदेश से मत जोड़ो।"

मित्र ने दूसरा सवाल किया, "अच्छा बॉस, मान लो कि अपने प्रधानमंत्री ने प्रदेश के मुख्यमंत्रियों को आदेश दे दिया कि हर कार्यक्रम में कबूतर उड़ाना अनिवार्य है। बिना कबूतरों के कोई समारोह किसी भी राज्य में सम्पन्न न हो। फिर क्या होगा?"

मैंने पूछा, "हर कार्यक्रम से मतलब?"

वह बोले, "मतलब यह कि ऋण माफ कर रहे हैं तो कबूतर उड़ा रहे हैं, आरक्षण लागू कर रहे हैं तो कबूतर उड़ा रहे हैं, भूमिहीनों को जमीन के पट्टे बाँट रहे हैं तो कबूतर उड़ा रहे हैं और किसी जेल का उद्घाटन कर रहे हैं तो भी कबूतर उड़ा रहे हैं। प्रधानमंत्री स्ट्रिक्टली यह आदेश दे दें कि किसी भी प्रदेश में कोई भी मंत्री बिना कबूतर के दौरे पर न निकले। पहले देख ले कि कबूतर की व्यवस्था हुई है या नहीं, उसके बाद ही अपनी लालबत्ती वाली गाड़ी में बैठे। अब कहो, कहाँ से आएँगे इतने कबूतर? अपने काजी साहब का पूरा दड़बा पुलिस वाले ही खाली कर देंगे क्योंकि अपने यहाँ हफ्ते में दो बार कोई-न-कोई मंत्री आ रहा है।"

मैंने कहा, "अपने प्रधानमंत्री को देश की चिन्ता है, कानून और व्यवस्था की चिन्ता है, पेट्रोल-संकट की चिन्ता है, साम्प्रदायिक दंगों और आतंकवाद की चिन्ता है, और तुम काजी साहब के दड़बे के लिए परेशान हो? एक बात अच्छी तरह समझ लो—जिस क्षेत्र में हमारा मंत्री जाएगा वहाँ का दड़बा आज नहीं तो कल खाली हो ही जाएगा। एक मंत्री आता है तो स्वागत-समारोह में हजारों और लाखों रुपए खर्च होते हैं। यह रुपया क्या तुम अपने घर से भरोगे? जो पार्टी के कार्यकर्ता होते हैं, वही चंदे से रुपया जमा करते हैं और मंत्री जी को प्रसन्न करते हैं। ट्रकों और बसों में लोगों को बिठाकर लाया जाता है ताकि मंत्री जी को लगे कि इस क्षेत्र में उन्हें तगड़ा जन-समर्थन प्राप्त है। ऐसी स्थिति में काजी साहब तो क्या, किसी का दड़बा नहीं बचेगा।"

वह बोले, "यानी कि अब जो भी आदमी थाने में रिपोर्ट दर्ज करवाने जाएगा उससे मुंशी जी कहेंगे पहले दो कबूतर लाओ, फिर तुम्हारी रिपोर्ट दर्ज करते हैं रोजनामचे में। और जब फरियादी कहेगा कि कबूतर नहीं मिल रहे हैं तो मुंशी जी उसके सम्मान में आदरसूचक शब्दों का इस्तेमाल करते हुए कहेंगे—नहीं मिल रहे हैं तो थाने में रिपोर्ट लिखवाने क्यों आ गए? जाओ अपना मुँह काला करो। साले, कानून भी भंग करोगे और बिना कबूतर के पुलिस से तफतीश करवाओगे? यहाँ हम मंत्रियों के मारे परेशान हैं ऊपर से बड़े साहब ने लिख दिया है कि थाने में उन्हें कबूतर नहीं मिले तो पूरे थाने को लाइन-अटैच कर दिया जाएगा, और तुम कहते हो कहाँ से लाएँ? पुलिस से काम करवाना है तो कहीं से भी लाओ नहीं ला सकते तो अपने घर बैठो कोई तुम्हारी रिपोर्ट के भरोसे पुलिस विभाग नहीं चल रहा है।

वह इस तरह संवाद बोल रहे थे जैसे कोई मँजे हुए कलाकार हों। मैंने कहा, तुम तो दूरदर्शन या आकाशवाणी में चले जाओ क्या संवाद बाँधा है। मुझे तो लग रहा था जैसे साक्षात् थाने के मुंशी जी मुझसे कह रहे हों कि कहीं से भी कबूतर लाओ और अपना काम करवाओ।"

अपनी तारीफ सुनकर वे बोले, "बॉस, हम तो इस नौकरी के चक्कर में मार खा गए, नहीं तो आज बहुत बड़े कलाकार होते। फिल्म-लाइन में जाने के लिए हम घर से पैसे लेकर भागने की पूरी मानसिकता बना चुके थे, लेकिन तभी क्या हुआ कि फादर एक्सपायर कर गए। हमने सोचा कि छोटी-मोटी नौकरी मिल जाए तो घर का खर्च चले, यही सोचकर मास्टरी की लाइन में आ गए। हमें इतना कमजोर मत समझना बॉस हमारी कल्पनाशक्ति एकदम टाइट है इस मुख्य अतिथि से हम अच्छा भाषण दे सकते हैं। क्या? लेकिन क्या करें। साली यह मास्टरी हर वक्त आड़े आ जाती है।"

मैं उनकी बातें सुन रहा था। वे प्रसन्न थे। उनके चेहरे पर वही भाव थे कि यदि वे इस मास्टरी के माया-मोह में नहीं पड़े होते तो आज श्री देवी या जयाप्रदा के साथ होते और बच्चों को देश का इतिहास और भूगोल पढ़ाने के बदले डिस्को डांस कर रहे होते। उन्हें छेड़ना मुझे अच्छा लग रहा था।

मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए उन्हें छेड़ा, "यो बात तो सही है लेकिन मैं

कहता हूँ कि इन कबूतरों का मंत्रियों और राजनीति में क्या फँसा रहे हो? शांतिदूत हैं बेचारे अपनी औकात के हिसाब से शांति का संदेश दे रहे हैं।''

इस बार वह जरा गरम हो गए। या कहूँ कि ताव खा गए। बोले, ''शांतिदूत हैं तो क्या उन्हें आग में झोंक दोगे? पेईचिंग की खेल-प्रतियोगिताओं में जो कबूतर उड़ाए गए थे वे मशाल में घुस गए और वहीं पार हो गए। मेरा कहना है कि आप खेल करो, लेकिन इन कबूतरों के भरोसे हमें सद्भावना बनाए रखने का संदेश दोगे तो इस प्रजातन्त्र में कबूतरों की पूरी नस्ल ही बरबाद हो जाएगी और हालत यह होगी कि किसी का पेरालिसिस हो जाएगी तो वह कबूतर के खून की एक बूँद के लिए तरस जाएगा। आखिर इस खेल में कबूतरों का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा। हम तो एक ही ढर्रे पर चलने वाले लोग हैं। बस कबूतर उड़ाते रहेंगे और अन्दर से साम्प्रदायिकता पालते रहेंगे। इसलिए मैं कहता हूँ कि पहले अपने-आपको अन्दर से साफ करो, फिर उड़ाते रहना कबूतर, कौन रोकता है तुम्हें?''

वह थोड़ी देर के लिए रुके, चारों तरफ देखने लगे। खेल का मैदान अलग-अलग दलों से भरा था और हर बैनर के नीचे खिलाड़ी बैठे थे। सद्भावना-संदेश समाप्त होगा और वे मैदान में कूद जाएँगे। इन कबूतरों से उनका ध्यान हट जाएगा। यदि वे अपने खेल में कबूतरों को याद करते रहे तो अपनी जीत के लक्ष्य को भूल जाएँगे। उनका लक्ष्य है सामने वाले को हटाकर सीधे फाइनल में पहुँच जाना। यह फाइनल में पहुँचने की राजनीति में पूरा प्रजातंत्र ग्रसित है। एशियाड में हमने कितने कबूतर उड़ाए, लेकिन इसके बाद भी क्या हम दंगों को रोक सके?

मैं उनसे और भी बातें करना चाहता था, लेकिन तभी खेल के मैदान से माइक पर घोषणा हो गई कि टीमें अपने खिलाड़ियों के साथ मैदान में आ जाएँ।

मैंने आसमान की ओर देखा। कबूतर नहीं थे। हो सकता है वे फिर अपने दड़बों में छिप गए हों और किसी मजबूत पकड़ से छूट जाने का शुक्राना अदा करने के लिए अपने दड़बों को पाक-साफ बनाने की सोच रहे हों।

❑

नेताजी–बन्दर वाले

नेताजी इन दिनों बेकार हैं। बेकार इसलिए कि वे फिलहाल किसी संस्था के अध्यक्ष नहीं हैं और जब वे अध्यक्ष नहीं होते तो अपने को बेकार ही मानते हैं। एक–एक कर सभी समितियों के अध्यक्ष पद से उन्हें किक पड गई। अभी तक तो यही होता रहा कि उधर किक पडी और इधर नेताजी दूसरी समिति के अध्यक्ष हो गए। लेकिन इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ इसलिए उनका चिन्तन गंभीर हो गया और वे देश के बारे में बहुत गंभीरता से विचार करने लगे।

कल मैं भैयाजी के राजनीतिक गैरेज के सामने से गुजरा तो वे अपने गैरेज के सामने एक बन्दर नचवा रहे थे। मदारी डुगडुगी बजा रहा था और बन्दर नेताजी के सामने मगन होकर नाच रहा था। मदारी लकड़ी सामने रखता और बन्दर को आदेश देता—चल बेटा ... कूद जा। बन्दर कूद जाता। नेताजी उसे देखते और देश के बारे में सोचने लगते—इस देश का क्या होगा?

मैंने नेताजी से कहा—बड़े दिनों बाद आपको गंभीर चिंतन में देखा है ... क्या सोच रहे हैं आप?

नेताजी ने मेरी बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और मदारी से बोले—क्यों रे मदारी ... कितने दिनों से नचा रहा है तू इस बन्दर को?

मदारी ने कहा—हुजूर, हम तो खानदानी बन्दर नचाने वाले हैं। वैसे यह बन्दर पिछले पाँच सालों से मेरे पास है। बड़ा निष्ठावान है सरकार। जैसा नचवा लो कोई ना–नुकुर नहीं करता।

नेताजी कुछ सोचकर बोले—अबे पाँच साल तो हो गए ... अब छोड़ इस ... कायदे से तू इसे अब नहीं नचा सकता।

मदारी बोला—हुजूर कायदा–कानून तो आप नेता लोग ही जाने लेकिन हम तो इतना जानते है कि इसी बन्दर की रोजी-रोटी मे हमारे बाल–बच्चे पल रहे हैं। बड़े–बड़े साहब लोग इसका नाच देखते ह और पैसा फेंकते है। और असली बात तो यह हुजूर कि पाँच साल मे यह इतना ट्रेंड हो गया है कि आने वाले पाँच साल तक यह बहुत अच्छा नाचेगा।

पाँच साल बाद फिर क्या करोगे? नाचने लायक नहीं रहा तो?

नाचने लायक नही रहा तो दूसरा बन्दर ले आऊँगा मालिक हमे तो अपनी पूरी जिन्दगी इन्ही बन्दरो के बीच रहना है।

—अबे कहाँ स लाएगा, हमे भी बता?

—सुना है गुजरात में अच्छे बन्दर मिलते हैं। इस बार वहीं जाऊँगा सरकार। कुछ जुगाडमेन्ट तो बिठाना ही पड़ेगा।

मुझ नेताजी और मदारी की बातो मे आनन्द आ रहा था। लगता था जैसे अपने–अपने फन मे माहिर दो लोग देश की किसी ज्वलन्त समस्या पर बात कर रहे हों। मैं नेताजी से कहना चाहता था—"इस मदारी की बात मे मत आना हो नेताजी। ये बडा चालू किस्म का दिखता है।" लेकिन इसके पहले ही नेताजी ने मेरे लिए मीठे पान का आर्डर देकर मुझे अपनी बैठक मे बुला लिया। यही तो नेताजी का राजनीति मे अपना अनुभव है। जानते हैं कि हम जैसो का मुँह बन्द करना हो तो मुँह मे एक मीठा पान भर दो, बस।

नेताजी की बैठक वाला कमरा नेताओं की तस्वीरों से लबालब भरा था। दीवार पर हर जगह नेता ही नेता टँगे थे। बापू की तस्वीर पर नेताजी ने खादी की माला डाल रखी थी। इस एक माला के कारण ही नेताजी का कमरा गाँधीवाद स महक रहा था। सामने की आलमारी में तीन बन्दरो की मूर्तियाँ थी। नेताजी का कहना था कि ये मूर्तियाँ वे किसी अधिवेशन से लाए थे।

अब मेरे और नेताजी के अतिरिक्त बैठक मे जो उल्लेखनीय वस्तु थी, वह एक अभिनन्दन–पत्र था जिसे नेताजी ने फ्रेम करवा कर ऐसी जगह टाँग रखा था कि बैठक मे आने वाले हर आदमी की नजर पहले उस पर पड़े। यह अभिनन्दन–पत्र नेताजी को सफाई कर्मचारियों की ओर से दिया गया था।

मैंने वातावरण और नेताजी की चिन्ता की गंभीरता को समाप्त करने के लिए कहा—नेताजी, इस बार आप बन्दरों की समिति के अध्यक्ष क्यों नहीं बन जाते? मेरे विचार से तो शहरी और ग्रामीण दो समितियाँ बना कर किसी एक पर अपनी अध्यक्षता जमा दें? क्यों?

लगता था कि नेताजी ने मेरी इस बात को गंभीरता से लिया है। उनकी आँखों में चमक आ गई। बोले—ठीक ही कहते हो... इस बार यही सही... लेकिन ये तो बताओ कि बन्दरों की समिति का अध्यक्ष बनकर मैं करूँगा क्या? मेरा मतलब है कुछ तो मानफेस्टो होना ही चाहिए ना?

मैंने कहा—नेताजी, ये बात तो आप छोड़ दो बन्दरों पर। इस पर उन्हें विचार करना है, आपको नहीं। मैं तो इतना जानता हूँ कि स्कोप बहुत है। देखिए ना दिल्ली में सरकार उल्लुओं और चमगादड़ों के लिए वातानुकूलित कमरे बनवा रही है। यहाँ तक कि सरकार ने भालुओं और बिल्लियों तक को आवास योजना में शामिल कर लिया है। हम कहते हैं कि बेचारे भारतीय बन्दरों ने क्या बिगाड़ा है? जब तक बापू थे देश में बन्दरों की इज्जत थी। क्या बापू ने इसी दिन के लिए भारत को आजाद करवाया था? क्या उल्लू और चमगादड़ में भी गया-बीता हो गया अब देश में बन्दर? इसका विरोध तो होना ही चाहिए। हम आपसे अपेक्षा रखते हैं कि आप इस सैद्धांतिक विरोध का नेतृत्व करें।

बात इतनी गंभीरता से रखी गई थी कि नेताजी फिर गंभीर हो गये। बाहर मदारी अभी भी अपना बन्दर नचा रहा था और अन्दर नेताजी को किसी संस्था के अध्यक्ष होने की पीड़ा कचोट रही थी। वे वर्तमान राजनीतिक परिवेश में जानवरों के मौलिक अधिकारों को लेकर चिंतित नजर आ रहे थे। मुझे पूरा विश्वास था कि वे इस बार किसी सांसद से मदारी की रस्सी पर नाचने वाले बन्दरों के हितों और अधिकारों पर कोई गंभीर चर्चा अवश्य करेंगे। इसी बहाने जनचर्चा का कोई नया मुद्दा भी वे जरूर उठाएँगे। जब भी वे किसी संस्था से अध्यक्ष की हैसियत से जुड़े हैं, उन्होंने ऐसा ही किया है।

नेताजी मदारी से कुछ जरूरी सवाल पूछने के लिए बैठक से बाहर आ गए।

मदारी ने नेताजी की ओर देखकर कहा—मिले माई-बाप इस बन्दर के लिये कोई फटा-पुराना कपड़ा मिल जाए हुजूर!

फिर मदारी ने बन्दर की ओर देखा और कहा—चल बेटा लेट जा नेताजी के पगों में हाँ शाबाश।

मदारी बोला—बस, अब खड़ा हो जा और दिखा दे अपनी हैसियत।

बन्दर पिछली दो टाँगों पर खड़ा हो गया और दोनों हाथों से अपना पेट बजाने लगा। जैसे कहना चाहता हो—नेताजी, इस पापी पेट का सवाल है।

नेताजी फिर गंभीर हो गए। उन्हें लगा कि इस बार अध्यक्ष बनने पर उन्हें नई जिम्मेदारियों से जूझना पड़ेगा।

राष्ट्रीय हजामत निगम

महँगाई तेजी से बढ़ रही है। अब तो हजामत भी महँगी हो गई। पूरे बीस रुपये लगते हैं। हमारे दादाजी जब इलाके में आये थे तब उनकी तनख्वाह पाँच रुपये महीना थी। वह पूरे महीने में मुश्किल से एक रुपया खर्च कर पाते थे। एक रुपया बुरे दिन के लिए बचाकर रखते थे और तीन रुपये देश भेज देते थे। यह तो उनकी बचत की प्रवृत्ति का परिणाम है कि आज हम बीस रुपये वाली हजामत बनवा रहे हैं। वे कुछ नहीं बचाते तो हमको आज हजामत के लाले पड़ जाते।

आजादी के बाद हजामत के स्तर में काफी विकास हुआ है। हजामत की शैली भी काफी परिष्कृत हुई है। पहले तो जब माननीय हजामतकर्ता हमारी गली में आते तो हम तुरन्त उन्हें देखकर भाग जाते। पिताजी पकड़ते और माँ दो तमाचे लगाती तब कहीं जाकर हमारी हजामत सम्पन्न होती थी। फिर पीठ पर छितरे अवशेषों को खुजाते दिन बीत जाता। माँ पीट-पीटकर नहलाती तब कहीं हम शुद्ध हो पाते। शैम्पू तो था नहीं, काली मिट्टी से माताजी इतना तेज रगड़तीं कि यह प्रक्रिया हजामत से कहीं अधिक कष्टप्रद होती। अब तो हमारा बच्चा खुद चलकर सैलून जाता है, और माननीय बंधु से पूछता है कि इमामी की क्रीम है या नहीं? आफ्टर शेव भी ऊँचा होना चाहिए।

यह व्यवसाय इतना लोकप्रिय हुआ अपने देश में कि हर शहर में इस धंधे में रुचि लेने वालों की तादाद में वृद्धि होने लगी। अब तो आलम यह है कि आप जिस गली से गुजरें कोई-न-कोई हेयर ड्रेसर आपके स्वागत के लिए तैनात है। फिर भी हजामत के भाव आसमान को छू रहे हैं। लोग दाढ़ी पर हाथ रखने का पाँच रुपया ले

रहे हैं। और, फिर हजामत तो आदमी के लिए नेसेसिटी है, कोई लग्जरी नहीं। अब लोग चिल्लायेंगे नहीं तो क्या करेंगे?

लोगों ने उचका दिया कॉलिज के लड़कों को। कॉलिज खुलने के बाद अब तो अक्टूबर लग गया था और कोई आन्दोलन इस साल कॉलिज वालों ने अभी तक नहीं किया था तो छात्र संघ अध्यक्ष को भी शरम आ रही थी। उसने कॉलिज के छात्रों को ललकारा और आन्दोलन छिड़ गया हजामत के बढ़ते हुए मूल्यों के खिलाफ। छात्र क्रमिक भूख हड़ताल पर बैठ गए। चार-चार छात्र घर से खाना खाकर आते और आठ घण्टे की भूख हड़ताल पर बैठ जाते। आठ घंटे बाद दूसरी टोली आती और पहली टोली खाना खाने चली जाती। इस तरह भूख हड़ताल सफलतापूर्वक चल रही थी।

छात्रों की माँग थी कि रेट कम होने चाहिए, और उन्हें छात्र कनसेशन दिया जाना चाहिए। आम जनता को 'जनता हजामत' की सुविधा प्रदान की जाय। राष्ट्रीय हजामत निगम का गठन किया जाये और हजामत उद्योग को सरकार अपने हाथ में ले।

छात्र आठ दिन तक क्रमिक हड़ताल पर बैठे लेकिन जब नतीजा कुछ नहीं निकला तो विवश होकर उन्होंने राज्य परिवहन निगम की दो बसें जला दीं। फिर नगर में आह्वान किया कि व्यापारी बंधु छात्रों की माँग के समर्थन में एक दिन की हड़ताल करें। व्यापारियों ने डर के मारे दुकानें बंद रखीं। हड़ताल सफल हुई। छात्र वर्ग फिर दूसरी शासकीय संपत्ति की खोज में लग गया।

छात्र आन्दोलन भड़क उठा। एक नगर से दूसरे नगर यह लहर आग की तरह फैल गई। दूसरे कॉलिजों के छात्र संघों के अध्यक्षों का पौरुष भी जागा और वे इस आन्दोलन में कूद गए। जिन कॉलिजों के छात्र संघ अध्यक्षों ने इस आन्दोलन का समर्थन नहीं किया उन्हें चूड़ियाँ भिजवाई गयीं। सैलूनों और हेयर ड्रेसिंग हालों पर छात्र तैनात हो गये। छात्र एकता जिंदाबाद के नारे लगने लगे और जो आदमी हजामत बनवाने जाता उसकी ठुकाई होने लगी। इस व्यवसाय से जो लोग जुड़े थे वे सहम गए। इज्जतदार लोग चोरी-छिपे रात को बारह बजे के बाद अपने घरों में छिपकर हजामतें बनवाने लगे। खामखाह कौन छात्रों से उलझे? कॉलिजों में दाढ़ी और बाल बढ़ाने के फैशन का सूत्रपात हुआ। हजामत बनाने वाला निवेदन करता—भैया किसी को मत बताना—नहीं तो लड़के मेरा घर जला देंगे।

स्थिति बड़ी नाजुक हो रही थी। सरकार छात्रों के इस आन्दोलन की ओर ध्यान नहीं दे रही थी जो छात्र जगत के लिए अपमान की बात थी। विरोधी नेता छात्रों को समर्थन दे रहे थे। आम सभायें हो रही थीं। फिर विधानसभा में विरोधी पक्ष के नेता ने प्रश्न उठाया कि युवा पीढ़ी समाज को एक रचनात्मक दिशा देने के लिए आन्दोलनरत है और सत्ता पक्ष की उदासीनता से कई घर बर्बाद होने की पूरी आशंका है, छात्रों का एक दल मुख्यमंत्री को अंतिम अल्टीमेटम दे आया कि पन्द्रह दिनों के अन्दर सरकार ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया तो छात्र विश्वविद्यालय परीक्षाओं का बहिष्कार करेंगे और प्रान्त व्यापी आन्दोलन की राह पर उतर जायेंगे। पूरे प्रदेश के कॉलिज बन्द कर दिये जायेंगे और लूटमार शुरू हो जाएगी। पूरा जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा, जिसकी पूरी जिम्मेदारी शासन की होगी।

विरोधी पक्ष के जिन नेताओं को कोई काम नहीं था, वे अचानक सक्रिय हो गए। खुले मंचों पर भाषण होता—

"हजामत हमारी संस्कृति है। हमें इसे बचाना है, क्या किया आज तक सत्ता के लोगों ने? मजदूरी का मूल्य तो सरकार ने निर्धारित कर दिया। लेकिन, कभी सरकार ने यह भी सोचा कि जिस दिन मजदूर हजामत बनवा लेता है उस रात उसके घर में चूल्हा नहीं जलता। यदि इसी तरह हजामत के बढ़ते हुए मूल्यों पर कोई कारगर कदम सरकार द्वारा नहीं उठाया जायेगा तो आने वाले बीस सालों में भारतीय हजामत की संस्कृति का लोप हो जायेगा। सरकार ने कभी यह नहीं सोचा कि ऐसी स्थिति में हम विदेशों में क्या मुँह दिखायेंगे? तो दोस्तो, यह कोई मामूली मसला नहीं है। छात्रों का साथ देना जिम्मेदार नागरिक का कर्तव्य है। छात्रों की माँगें बिल्कुल उचित हैं लेकिन सरकार नहीं चाहती कि इस बढ़ती हुई महँगाई पर रोक लगाई जाये। मैं इस खुले मंच से सरकार से सवाल करता हूँ कि आज तक हजामत पर कोई टेक्स क्यों नहीं लगाया गया? आप गम्भीरता से सोचेंगे तो आपको पता लगेगा कि यह मात्र वोटों की राजनीति है सत्ता पक्ष की। सबसे कम पूँजी का व्यवसाय है यह। बस एक कैंची, उस्तरा और कंघी और आईने की लागत से प्रारम्भ होने वाले व्यवसाय से देश का एक बहुत बड़ा वर्ग जुड़ा है। किसी मान्यता प्राप्त ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं है और न ही सरकार ने कोई योग्यता-रेखा इस व्यवसाय के लिए निर्धारित की है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि देश का एक बहुत बड़ा वर्ग राजधानी से लेकर ग्रामीण अंचल तक इस व्यवसाय

से जुड़ा है। हम जानते हैं कि जिस दिन सरकार इस व्यवसाय के प्रति कड़े कदम उठायेगी। उसका बहुमत समाप्त हो जायेगा। तो दोस्तो, आन्दोलन की महत्ता को समझो और छात्रों का साथ दो। बोलो —भारतमाता की—जय। वन्दे—मातरम्।''

इस व्यवसाय से जुड़े लोगों की तो हालत खराब थी। कई लोग अपनी दुकानें बंद करके बैठ गए। बहुत से लोग पासपोर्ट बनवाकर खाड़ी के देशों में जाने की सोचने लगे। वे कॉलिज के छात्रों को देखकर घरों में छिप जाते। आन्दोलन बहुत उग्र रूप धारण कर रहा था। छात्रों द्वारा घर और सैलून जलाने के समाचार मिलने लगे थे

केन्द्र से बराबर निर्देश मिल रहे थे कि स्थिति सामान्य है। टी वी पर इस व्यवसाय से जुड़े वरिष्ठ लोगों के विचार बराबर प्रसारित किये जा रहे थे। राष्ट्रीय प्रसारण पर हफ्ते में दो बार यह बताया जाता था कि किस बड़े शहर में सैलून खुल रहे हैं और लोगों ने बिना किसी भय के हजामतें बनवाई। केन्द्र में मुख्य मंत्री को बुलाया गया फिर केन्द्र ने बहुत सोच–समझकर निर्णय लिया कि राष्ट्रीय हजामत निगम का गठन किया जाये और प्रदेश में होने वाली हर हजामत पर केन्द्र का नियन्त्रण रहे, ताकि गरीब जनता को बढ़ती हुई महँगाई में राहत मिल सके। दूरदर्शन और आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हुए सरकार ने इस जनहित सम्बन्धी निर्णय की सूचना दी। छात्रों ने पटाखे फोड़े। लोगों को गुलाल लगाया और विजय जुलूस निकाला मिठाइयाँ बाँटी गईं। यह इस वर्ष का पहला छात्र आन्दोलन था, जिसके आगे केन्द्र को झुकना पड़ा।

राष्ट्रीय हजामत निगम के पहले अध्यक्ष ने अपने संबोधन भाषण में लोगों से अपील की—

—"हम कोशिश करेंगे कि भारतीय जनता को कम से कम कीमत पर सरकारी हजामत उपलब्ध कराई जाये। अभी हम देश के सभी प्रदेशों की राजधानियों और प्रमुख शहरों में निगम की उप-समितियाँ गठित कर रहे है। सरकारी तौर पर व्यवसाय के लिए विधिवत् प्रशिक्षण के लिए सरकार का प्रशिक्षण-केन्द्र खोलने की योजना है जिससे युवा और शिक्षित बेरोजगार वर्ग लाभान्वित हो सकेगा। सरकारी तौर पर अभी भरती प्रारम्भ हो गयी है और प्रशिक्षण सम्बन्धी मान्यता प्राप्त नियमों में ढील दी गयी है। केवल अनुभव के आधार पर ही हम काम शुरू कर रहे है। हमारी कोशिश रहेगी कि पिछड़ी जन-जाति और अनुसूचित जाति का आरक्षण मिलता रहे।

—"प्रारम्भिक कठिनाइयों के कारण फिलहाल सरकार ऐसे हर शहर में सरकारी हजामत की व्यवस्था कर रही है जिसकी आबादी पाँच हजार से कम न हो। और धीरे धीरे ग्रामीण अंचलों को भी यह सुविधा प्राप्त होने लगेगी। सरकार ने पूरी हजामत का मूल्य पाँच रुपया चालीस पैसा और दाढ़ी का मूल्य दो रुपया चालीस पैसा निर्धारित किया है। अभी हमें उस्तरों का आयात करना पड़ता है। सरकार द्वारा इस दिशा में शीघ्र ही त्वरित कदम उठाकर अपने देश में भारतीय पद्धति के उस्तरों के निर्माण के कारखानों की स्थापना के लिए विचार करेगी और जब हम उस्तरों के मामले में आत्मनिर्भर हो जायेंगे हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हजामत के इन मूल्यों में और कमी आयेगी।

—"अंत में मैं आप सबसे आग्रह करता हूँ कि बिना हजामत केन्द्र से टिकिट लिये हजामत न बनवाये। इससे सरकार के बजट पर प्रभाव पड़ सकता है। हजामत केन्द्र शासकीय और सार्वजनिक अवकाशों के अतिरिक्त प्रतिदिन आठ घंटे खुले रहेंगे। सरकारी कर्मचारियों के लिए प्रतिदिन दाढ़ी बनाने के लिए हमने मासिक पास भी जारी करने की योजना बनाई है। लेकिन वर्तमान में यह योजना केवल ऐसे शहरों में लागू रहेगी जिनकी आबादी पाँच लाख से अधिक है।

—"देश के विकास की जिम्मेदारी आप पर है। इस निगम की सफलता केवल आपके सहयोग पर आधारित है। राष्ट्रीय हजामत निगम की ओर से हार्दिक शुभकामना देते हुए मैं जनता से सहयोग की अपील करता हूँ। जयहिन्द।"

☐

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या

"आप चुप हैं। गणतंत्र दिवस पर आप चुप रहे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा कुछ बोलेंगे नहीं?"

"क्या बोलें? समझ लो कि अपनी बोलती बन्द है। स्कूल में देशभक्त लोग गणतंत्र दिवस मना रहे हैं। बच्चे परेशान कर रहे हैं। नया ड्रेस सिलवा दो, सफेद जूते खरीद दो, लाल मोजे ले दो। तीन सौ रुपए की सीधी चपत पड़ गई इस गणतंत्र पर।"

"आजादी मिली है तो तीन सौ से नहीं डरना चाहिए आपको। साहबों और इन्सपेक्टरों को हजारों रुपया हँसते-हँसते खिला देते हो और बच्चों को नया ड्रेस सिलवा देने के नाम पर इतने उदास हो गए?"

वह चुप हो गए। अपनी दुकान पर रखे सेव गाँठिया के डिब्बों को देखने लगे। दिन-भर मिक्शचर की पुड़िया लपेटते हैं लोगों के लिए। दुकान पर नमकीन भण्डार का इतना बड़ा बोर्ड लगवा रखा है कि बोर्ड देखकर ही सेल टैक्स वाला बोर्ड को बाद में, पहले इन्हीं को नीचे उतार दे। जनता शासन में उनका जलेबी भण्डार था। उधर जनता शासन टूटा और इधर उनकी जलेबी टूट गई। जितने उदास मना चले जाने से जनता पार्टी वाले नहीं हुए थे, उससे अधिक उदास वे ड्रेस सिलवाने के नाम पर हो रहे थे। उन्हें लग रहा था कि गणतंत्र दिवस पर किए जाने वाले इस फालतू खर्च को मेक-अप करने के लिए उन्हें कई किलो सेव-गाँठिया तौलना पड़ जाएगा। उनके चेहरे पर फालतू खर्च की पीड़ा सरकारी सोयाबीन तेल में गर्म कड़ाही पर उभरते झाग की तरह उभर रही थी।

अचानक सेव–गाठियें निकाल कर वह बोले "हम तो इन मास्टरों और बहनजियों के मारे परेशान हैं ... पढ़ाई–लिखाई तो गई भाड़ में, ड्रेस–जूते पर सबका ध्यान केन्द्रित हो गया है। आप ही बताइए कि बिना नये ड्रेस के क्या गणतंत्र दिवस नहीं मनाया जा सकता? जूते? सफेद होने चाहिए। और मोजे? बिल्कुल लाल ... आदमी के खून की तरह। दिन–भर सेव–गाठिया बेच–बेच कर हमारा खून कितना लाल रह गया है यह सोचने की फिकर किसी को नहीं है। तीन सौ रुपया कमाने के लिए हमें कितनी तोड़–ताड़ करनी पड़ती है, हम ही जानते हैं ... बस, हुकुम जारी कर दिया— नया ड्रेस सिलवा कर लाओ ... नये जूते लाओ ... चारों तरफ लाओ–लाओ। मरे सेव–गाठिया वाला। ऐसा गणतंत्र भी किस काम का।"

मैंने कहा, "कैसे नागरिक हैं आप? गणतंत्र दिवस पर आपको खुशी नहीं होती?"

वह बोले, "होती है भइया ... बहुत होती है। देख रहे हो, खुशी के मारे हमारा वजन सात किलो कम हो गया है। पिछले गणतंत्र पर 65 किलो था, इस बार रेलवे प्लेटफार्म की मशीन के कथनानुसार हम 58 किलो के हो गए हैं ... जूते–कपड़ों का वजन जोड़कर। सात किलो सूख गए एक ही साल में।"

"याने कि आप हर गणतंत्र दिवस पर अपने आपको तौलते हैं?"

"अरे भइया, तौलते क्या हैं अपनी तसल्ली के लिए देख लेते हैं कि बदन पर इस व्यवस्था के लिए कितना माँस बाकी है। इस मँहगाई और भ्रष्टाचार के मारे जितना बच जाए अच्छा है।"

मैंने व्यंग्य–प्रसंग का छोर पकड़ लिया था। बातों का सिलसिला जारी रखते हुए मैंने कहा, "शरीर पर ज्यादा माँस बचा कर क्या करेंगे? जितना ज्यादा माँस होगा उतने ही चील–कौवे आपके पास मँडरायेंगे।"

वह बोले, "एक साल में सात किलो माँस चील–कौवे नोंच गए, इस पर भी आपको संतोष नहीं हुआ? मैं पूछता हूँ कि क्या हम ही मिले हैं आपको इस बार गणतंत्र दिवस पर व्यंग्य करने के लिए? थोड़ा–बहुत व्यंग्य तो हम भी समझते हैं गुरु ... जगन्नाथ प्रसाद मिश्र के इलाके के हैं।"

"याने कि चील–कौवे का मतलब समझ गए आप?"

"आपने हमें इतना मूर्ख समझ लिया है? चील-कौवों के बीच जी रहे हैं और मतलब नहीं समझेंगे?"

"समझ गए तो हमें बता दीजिए कि किस डिपार्टमेंट के हैं ये चील कौवे?"

"अरे साहब, सभी डिपार्टमेंट में भरे पड़े हैं। ये तो गिद्धों की बस्ती है, सरकार ने पाल रखे हैं हमारे लिए। अपनी दुकान का बड़ा बोर्ड देखकर कल एक सेल-टैक्स ऑफिस का चील उड़ता हुआ आया और दुकान पर बैठ गया। देखने लगा हमारा बदन। हमने कहा— नोंच लो दादा तुम भी दो-चार सौ ग्राम नोंच लो, जब तक बदन में माँस है ले जाओ।"

"इस बार गणतंत्र दिवस पर इतने ऊँचे विचार आपके मन में कहाँ से आ रहे हैं?"

"सात किलो वजन कम हो जाने के बाद ऊँचे विचार नहीं आएँगे तो क्या घटिया विचार आएँगे? सच कहें तो हमारी आत्मा बड़ी दुःखी है यह सब देखकर। और जब आत्मा दुःखी होती है तो ऊँचे विचार ही आते हैं।"

"ये आत्मा कहाँ से आ गई बीच में इस गणतंत्र दिवस पर?"

"सात किलो माँस कम हो जाने के बाद शरीर में आत्मा ही शेष रह जाती है।"

"कैसी है आपकी आत्मा? आपकी आत्मा को दुःखी होने के अलावा और कोई काम नहीं है? लाल किले पर फहराता झंडा देखकर भी आपकी आत्मा प्रसन्न नहीं होती?"

उन्होंने आज के अखबार को फाड़ कर चार टुकड़े किये और एक ग्राहक के लिए ढाई सौ ग्राम सेव-गाठिया तौलते हुए बोले, "चालीस रुपए किलो का तेल खाने के बाद आत्मा दुःखी ही होगी। जायज काम के लिए रिश्वत देने के बाद किसकी आत्मा है जो प्रसन्न होगी? दुःखी लोगों की आत्मा को कितना भी खंगालो, उसके अन्दर से केवल दुःख ही निकलेगा।"

"याने कि आप आदमी नहीं, एक दुःखी आत्मा हैं?"

"हाँ भइया वही समझ लो। तुम्हारे पेट में कुछ दर्द हो तो साफ–साफ बताओ दो–चार सौ ग्राम तुम भी नोंच लो इस बदन से तुम्हें भी क्यों पछतावा रह कि तुम कुछ नही नोंच पाए प्रजातंत्र को समर्पित यह मोटो का चोला तुम्हारे कुछ काम आ गया तो हम अपने आपको धन्य समझेंगे।"

"बड़ी नपी–तुली बातें कर रहे हैं आप इस बार।"

"वह इसलिए कि कल ही दुकान पर नाप–तौल वाले साहब आए थे हमसे कहने लगे कि हम नकली बाट रखते हैं काँटा मारते हैं ग्राहकों का शोषण करते हैं। आप ही बताइए कि एक पाव गाठिये मे हम कितना शोषण कर लेंगे? जहाँ लाखों रुपयों का शोषण हो रहा है वहाँ कोई नाप–तौल वाला नहीं है ढाई सौ ग्राम सेव–गाठिये वाले के पीछे सरकार पड़ी है। कहने लगे कि वे हमारा चालान करेंगे।"

"क्या कहा फिर आपने?"

"हमने कहा कि पूरे बाट देख लो एक–एक तौल ले लो थोड़ा भी फर्क हो तो चालान कर देना। हमारी बात सुनकर वे मुस्कराए। बोले—सरकारी नौकरी कर रहे हैं तो फर्क निकालना हम जानते है।"

"यानी कि आपका नाप–तौल के चक्कर मे चालान हो ही गया।"

"नहीं हुआ चालान। जब तक इस बदन पर माँस है चालान नहीं हो सकता यह हम जानते हैं। साढ़े तीन सौ ग्राम वे भी ले गए। हमने कहा—ले जाओ साहब जब सारा ले जा रहे है तो नाप-तौल वालों ने क्या बिगाड़ा है।"

"मतलब यही हुआ कि आप बेईमान सिद्ध हो गए।"

"बिलकुल सिद्ध हो गए भइया। ईमानदारी का ठेका तो चोरों–कौवों ने ले रखा है यही काम कर रहे है फिर भी नुचवा रहे हैं अपने आपको। इसलिए हम कहते हैं कि हमारी आत्मा दुःखी है।"

मैंने कहा "फिर इस गणतंत्र दिवस पर बच्चों का क्या होगा? नया ड्रेस मिलेगा या नहीं? सफेद जूते आएँगे या नहीं? लाल मोजे उन्हें मिलेंगे या नहीं?"

वे चुप हो गए। बहुत देर तक सेव–गाठिया वाले डिब्बों को देखते रहे। इस प्रसंग को आगे बढ़ाने की मेरी हिम्मत भी नहीं रही।

□

ईमानदारी की गोलियाँ

उनके दिमाग मे अजीबोगरीब बातें पैदा होती रहती हैं। एक दिन मुझसे कहने लगे "यार, मैं एक यंत्र बनाना चाहता हूँ आनेस्टी डिटेक्टर जिसके बदन पर रख दोगे, पता चला जाएगा कि वह आदमी कितना ईमानदार है।"

फिर एक दिन मिले तो कहने लगे, "यार, मैंने वो आइडिया ड्राप कर दिया।"

मैंने पूछा—क्या? तो वे बोले, "इसमे बड़ा लफड़ा हो जाएगा कई लोग एक्सपोज हो जाएँगे अभी हम जिन्हें ईमानदार समझ रहे हैं वे सब बेईमान निकल जाएँगे तो हमे दु:ख होगा।"

मैंने पूछा, "दु:ख किस बात का?"

उन्होंने अपना चश्मा निकाल लिया। अपने कुरते के एक कोने से उसे साफ करते हुए बोले "अभी हम यह सोच कर अच्छा लगता है कि अपने यहाँ कुछ ईमानदार लोग बचे हैं। यदि वे भी बेईमान निकल गए तो दु:ख ही होगा। इसलिए बेहतर यही है कि हम उन लोगो को ईमानदार समझ कर खुश होते रहें।"

मेरे एक और मित्र हैं जो अपने आपको बहुत ईमानदार बताते हैं। पहले कुछ दिनो विपक्ष की नेतागिरी की और सत्ता पक्ष को बेईमान कहते रहे। फिर आपात्काल लगा और और उनकी खोज प्रारम्भ हुई। वे जेल जाना नहीं चाहते थे, इसलिए तत्कालीन सत्ता पक्ष की पार्टी ज्वाइन कर ली। फिर वे सत्ता पक्ष की ईमानदारी के गुण गाने लगे और उन्हें एक सरकारी पद पर बिठा दिया गया जहाँ वे ईमानदारी से काम करने लगे। वैसे उनकी ईमानदारी पर बहुत लोगों को शक था लेकिन उनके मुँह पर यह बात कहने की हिम्मत किसी ने नहीं की। मैंने भी नहीं।

एक शिक्षित बेरोजगार एम.ए. पास लड़के को नौकरी दिलवाने के सिलसिले में मैं उनसे मिला था। मैंने उनसे निवेदन किया कि उस गरीब को कोई नौकरी दिलवा दो। घर की जिम्मेदारियों का बोझ उस पर है।

वह विचार मे पड़ गए। बोले, "ईमानदारी की बात तो यह है कि यदि मैं इस लड़के की सिफारिश कर भी दूँगा तो उस विभाग में काम करने वाले इसे नौकरी नहीं देंगे।"

मैंने कहा, "आपकी इतनी पकड़ है, तमाम मंत्रियो से मित्रता है, और यहाँ तक कि आप मुख्यमंत्री के खास आदमी समझे जाते हैं, फिर कैसे नहीं मिलेगी उस गरीब को नौकरी? आप यदि इस आवेदन-पत्र पर अपनी ओर से एक स्लिप लगा दे तो मेरा विश्वास है कि उसे नौकरी जरूर मिल जाएगी।"

वह बोले "अरे पकड़-वकड़ कुछ नहीं है। सच बात तो यह है कि आजकल लेक्चरर की पोस्ट का रेट दस हजार रुपए चल रहा है। यदि मैं इस आवेदन-पत्र पर अपनी स्लिप लगा भी दूँगा तो मैं जानता हूँ कि सेक्रेटरी उस पर नोट लिख देगा कि प्रदेश की वित्तीय स्थिति को ध्यान मे रखते हुए प्रशासन ने नयी भर्ती पर बैन लगा रखा है इसलिए आवेदन-पत्र पर कोई विचार नहीं किया जा सकता।"

मैंने कहा, "याने कि जिस सत्ता पक्ष की ईमानदारी का गुणगान आप करते हैं उसमे कोई भी काम बिना पैसे दिये नहीं होगा ... यहाँ तक कि एक छोटी-सी नौकरी भी बिना घूस दिये नहीं मिल सकती।"

वे संतुलित रहे। ईमानदार आदमी किसी प्रहार से विचलित नहीं होता। ईमानदार आदमी की भी यही पहचान है कि आप उसे मुँह पर गालियाँ देते रहेंगे तो वह मुस्कुराता रहेगा। लगभग वही मुस्कुराहट उनके चेहरे पर थी।

वह बोले, "तुम तो भावुक हो गए। भावुकता के दिन अब रहे कहाँ? जरा प्रेक्टिकल हो जाओ। देखो, मैं समझाता हूँ तुम्हे।"

थोड़ी देर वे चुप रहे। कुछ सोचते रहे और फिर बोले, "मैं कहता हूँ कि सरकारी नौकरी मे क्या धरा है? साहबो की डाँट सुन-सुन कर आदमी का नैतिक मनोबल गिर जाता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हारे मित्र को सलाह दो कि वह कोई बिजनेस करे ... किसी धंधे मे लग जाएगा तो उसकी जिन्दगी सुधर जाएगी।"

"लेकिन बिजनेस करने के लिए रकम की जरूरत होती है छोटे से छोटा बिजनेस करेगा तो भी उसमें दस हजार रुपए लगेंगे।"

"याने कि दस हजार रुपए लगाने ही पड़ेंगे उसे। और ऊपर से यह रिस्क रहेगा कि कहीं घाटा हो गया तो पूरे पैसे डूब गए। धंधा नहीं चला तो रकम डूब जाएगी।"

"हाँ।"

"अब यह समझ लो कि वह दस हजार रुपए धंधे मे लगा रहा है ऐसा मत समझो कि वह घूस दे रहा है। दस हजार देगा। कम-से-कम तीस साल नौकरी करेगा। यदि लेक्चरर ही रहा तो उसे नये वेतनमान के हिसाब से कम-से-कम बाईस सौ रुपए महीने म मिलेंगे। याने कि साल में छब्बीस हजार चार सौ . और तीस साल में ।"

फिर उन्होंने बच्चे को बुलाकर केलकुलेटर मँगवाया और बोले, "अब देखो, तीस साल मे सात लाख 82 हजार का शुद्ध लाभ होगा उसे . . वैसे यह रकम और भी अधिक हो सकती है क्योंकि सरकार हर दो-चार साल के बाद सेलरी बढ़ाएगी उसे इन्क्रीमेंट मिलेंगे . लेकिन अपने सात लाख 82 हजार ही मान कर चलते हैं। अब देखो, 7 लाख 82 हजार लाभ के लिए उसने केवल दस हजार की पूँजी लगाई याने कि ।"

उन्होंने केलकुलेटर पर उँगलियाँ चलाते हुए मेरी ओर देखा और थोड़ा देर बाद बोले "सात हजार आठ सौ बीस परसेंट लाभ होता है इतने बड़े लाभांश के लिए दस हजार का इन्वेस्टमेंट बिल्कुल वाजिब है मैं समझता हूँ कि यह अपने देश की गरीब जनता की देयशक्ति के अनुरूप है . यदि वह दस हजार रुपया वापस भी करना चाहे तो. ..।"

वे थोड़ी देर रुके और केलकुलेटर पर आँकड़े निकाल कर बोले, "प्रतिदिन उसे केवल 91 पैसे देने होंगे- बाईस सौ रुपए बेसिक पाने वाले के लिए यह रीपैमेंट आसान ही है बस 91 पैसे प्रतिदिन देते जाओ तीस साल में कर्ज भी पूरा हो जाएगा और कोई लायबलिटी भी नहीं रहेगी।"

वे मुझे देखकर फिर मुस्कुराए बोले, "अब तुम आ गए हो तो ईमानदारी के साथ इतना कर सकता हूँ कि दस हजार के काम के लिए तुम केवल आठ हजार

मेरे पास छोड़ जाओ मैं सक्रेटरी से यह कह सकता हूँ कि मेरा अपना काम है और उस आठ हजार में काम करना पड़ेगा इतना ख्याल तो मैं व्यवस्था पर तुम्हारे सम्बन्धों के कारण डाल ही सकता हूँ।"

ईमानदारी अभी भी उनके चेहरे से टपक रही थी। उन्होंने जानबूझ कर चेहरे पर रुमाल नहीं लगाया। उन्हें डर था कि रुमाल लगाते ही ईमानदारी की पर्त साफ हो जाएगी। मेरी ओर देखते हुए बोले, "ईमानदारी का परिणाम तुम देख ही रहे हो . मेरे साथ जिन लोगों ने राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया था आज उनके पास करोड़ों रुपया है कई बंगले हैं, बड़े विदेशी बैंकों में करोड़ों रुपया जमा है। लेकिन हम तो रहे वैसे ही नंगे के नंगे एक मकान शहर में क्या बनवा लिया लोग हमारी ईमानदारी पर ही शक करने लगे कल ही एक साहब आए थे पचास हजार रुपया नगद साथ लाए थे हमसे कहने लगे कि उनका प्रमोशन करवा दें सिंचाई विभाग में एस ई की पोस्ट पर उन्होंने सूटकेस हमारी ओर सरका दिया तो हमने पूछा कि इसमें क्या है? वे मुस्कुरा कर कहने लगे—जी कुछ नहीं, बच्चों के चाकलेट के लिए थोड़ी-सी रकम है . हमने बहुत जिद की तो बोले—बस, पचास हजार है आपकी सिफारिश रहेगी तो काम जरूर हो जाएगा हमने उन्हें बहुत समझाया कि यह रकम वे किसी अस्पताल में लगा दें या फिर किसी स्कूल के लिए दो कमरे बनवा दें इस तरह कुछ जनसेवा का भी लाभ ले लें तो मरने के बाद उन्हें मोक्ष भी मिल जाएगा लेकिन वे नहीं माने बस हँसते रहे और कहने लगे, कि हम बहुत अच्छा व्यंग्य कर लेते हैं।

मैंने पूछा, "फिर क्या किया आपने?"

वह बोले "कुछ करने का समय ही कहाँ था . वे बहुत जल्दी में थे हमने कहा कि हम कोई आश्वासन नहीं दे सकते क्योंकि आजकल राजधानी के सभी विभागों में लोग केलकुलेटर लेकर बैठे हैं ब्रीफकेस भले ही आप छोड़ जाइए लेकिन हम वादा नहीं कर सकते कि आपका प्रमोशन एस ई की पोस्ट के लिए हो जाएगा। साफ बात तो यह है कि हम हैं ईमानदार आदमी हम अपने हाथ से एक रुपया भी इसमें से नहीं निकाल सकते सीधे मंत्रीजी से मिलेंगे और कह देंगे कि यह ब्रीफकेस है और ये फलाँ साहब हैं जमता है तो देख लो और नहीं जमता

हो तो वैसा कहो लेकिन सोच-समझ कर जवाब देना कहीं हमारी ईमानदारी पर बट्टा न लग जाए।''

अचानक वे चुप हो गए। उन्हें कुछ याद आया और बोले, ''अरे मैं तो भूल ही गया था बोलो क्या लोगे? गरम या ठंडा? और सुनो, हम तो ईमानदार आदमी हैं, तुम्हें जूस-वूस तो पिला नहीं सकेंगे। हाँ, ठंडा लेना हो तो नमक वाला नीबू का शबत बनवाते हैं और गरम लेना हो तो चाय पिलवाते हैं। बोलो, क्या चलेगा?''

मैंने कहा, ''जी कुछ नहीं। मैं आपके पास जिस काम से आया था वह नहीं होगा यह सोचकर मेरी इच्छा कुछ लेने की नहीं हो रही है।''

वह बोले ''हमने कब कहा कि नहीं होगा। हमने तो स्थिति स्पष्ट कर दी ईमानदारी से। सच बताऊँ तुम्हें, अपनी इसी स्पष्टवादिता के कारण हम भुगत रहे हैं हजारों दुश्मन पैदा कर लिये हैं हमने जिसे साफ जवाब दो वही नाराज हो जाता है लेकिन हम यह मानते हैं कि ईमानदारी में जो सुख है वह कहीं नहीं ...दो टाइम की दाल-रोटी निकल रही है यही क्या कम है . कोई तनाव तो नहीं है . कोई डर नहीं है कि सरकार इन्क्वारी कमीशन बिठा देगी सपत्ति की जाँच हो जाएगी जो सीना विपक्ष में तान कर चलते थे वही सीना आज सत्ता में भी तान कर बैठे हैं मजाल है कोई हमारी ईमानदारी पर उँगली उठा दे।''

उन्होंने मुन्न को बुलाकर कहा, ''बेटे, मम्मी से कहो कि दो ग्लास नीबू शरबत बना कर भिजवायें और सुनो ये केलकुलेटर हमारे कोट की जेब में रख देना।''

उनके मुँह से ईमानदारी की बातें सुनते-सुनते मैं थक गया था लेकिन उनके चेहरे पर ताजगी ही थी। वे पिछले कई सालों से इस तरह की बातें कर रहे थे और शायद इसलिए न थके हों लेकिन मुझे लग रहा था कि नीबू के शरबत से मुझमें जरूर ताजगी आ जाएगी।

उन्होंने माहौल को सामान्य करने के उद्देश्य से कहा, ''और सुनाओ? और कितनी बच्चियाँ रह गईं शादी के लिए? तुम्हारी कास्ट में तो दहेज-वहेज का प्राब्लम ज्यादा नहीं है।''

मुझे लगा कि कहीं वे इस पर भी ईमानदारी का कोई चिंतन मुझ न पिला दें इसलिए मैंने बात को पूरी तरह दूसरी दिशा में मोड़ते हुए कहा, "अल्लाह के फज्लो करम से सब निपट जाएगा जिसने भेजा है वही निपटायेगा उन्हें।"

वे ठहाका मारकर हँसे। बोले, "जिंदादिल हो इसीलिए इतनी अच्छी हेल्थ बनाई है हमें देखा। बदन पर गोश्त जमा ही नहीं होता।"

शरबत के दो ग्लास आ गए थे। मेरी ओर एक ग्लास बढ़ाते हुए बोले, लो हाजमे के लिए नीबू और नमक का शरबत अच्छा होता है मैं तो यही लेता हूँ। पेट भी साफ रहता है और ताजगी भी आती है। और ईमानदारी से कहूँ तो मध्यमवर्गीय हर परिवार को यही पेय पदार्थ लेना चाहिए क्यों ठीक है न?"

उन्होंने शरबत का ग्लास मेरी ओर बढ़ाया तो मुझे लगा जैसे वे ईमानदारी का डिटेक्टर मेरी ओर बढ़ा रहे हैं। अचानक मुझे अपने उस सनकी मित्र की याद आ गई जिसने यह यंत्र बनाने का विचार किया था लेकिन बाद में त्याग दिया।

अचानक उन्हें कुछ याद आया। बोले, "हाँ, एक मजेदार बात बताता हूँ कल एक सज्जन आए थ कहने लगे कि उन्होंने ईमानदारी की गोलियाँ बनाई है।"

उन्होंने मुन्ने को आवाज देकर कहा, "बेटे, जरा मम्मी से कहो कि हमने जो गोलियो की शीशी उन्हें दी थी, भिजवाये।"

मुन्ना शीशी लेकर आ गया तो वे बोले "भई अपने देश म एक-से-एक लोग हैं वैसे भी आयुर्वेद वाले है हम लोग मुझे दे गए सेम्पल के तौर पर यह शीशी और कहा कि उन्होंने बड़ी साधना की है इन गोलियो के पीछे तो मैंने उनसे कहा कि आपने बहुत बड़ा काम कर दिया है इस देश के लिए ईमानदारी की गोलियों से देश की नैतिकता को बल मिलेगा।"

मै समझ गया कि मेरा वही सनकी मित्र आया होगा।

वह बोले, "भई, हमने तो कहा कि हम क्या, देश को उन पर गर्व है हमारे योग्य कुछ सेवा हो तो कहे।"

"कुछ कहा उन्होंने?"

" हाँ। बोले कि उनकी वस आयुर्वेदिक मेडिसन का पेटेंट करवाना चाहते हैं और आप भी ईमानदारी के क्षेत्र में कुछ शोध करना चाहते हैं इसलिए शासन से उन्हें कोई फेलोशिप दिलवा दूँ और प्रशासन की ओर से यह सरकुलर जारी करवा दूँ कि सरकारी ऑफिसों में काम करने वाले हर कर्मचारी को दिन में तीन गोलियों का सेवन अनिवार्य हो।"

मैं कहना चाहता था कि "इसके बाद आपने कैलकुलेटर निकाल लिया होगा" लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। मुझे लग रहा था कि उन्होंने सुबह ट्रायल के तौर ईमानदारी की एक गोली जरूर निकाली होगी और सोचा होगा कि वे इसे खायें या नहीं।

❑

हम ईमानदार हैं

मैं सोचता था कि ईमानदार आदमी नहीं मिलेगा इस युग में। लेकिन वे मिल ही गए। कहने लगे, "मुझसे बड़ा ईमानदार आदमी आपको इस देश में नहीं मिलेगा।"

मैंने पूछा, "क्या करते हैं आप?"

वह बोले, "बस जी, ईमानदारी करते हैं। समझ लो कि हर काम ईमानदारी से करना हमारा उद्देश्य है। किसी को गोली भी मारते हैं तो ईमानदारी से ताकि उसे ऐसा न लगे कि हम उससे प्यार कर रहे हैं ... और किसी का गला भी काटते हैं तो पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ।"

मैंने कहा, "याने कि आप गला भी काट लेते हैं?"

वे मुस्कुराए। कहा, "हाँ जी, ईमानदारी से गले को काटने का मजा ही कुछ और है। देखिए ना, लोग ऊपर से बड़ी मोहब्बत जताते हैं और अन्दर-ही-अन्दर गला काटते हैं ... हम वैसे नहीं हैं। गोली मारना है तो बस गोली मारना है और गला काटना है तो बस गला काटना है। हम ये नहीं देखते कि अन्दर क्या है और बाहर क्या है?"

मैंने पूछा, "इसके अलावा भी कुछ करते हैं आप?"

उन्होंने मुझे घूर कर देखा। बोले, "बहुत कुछ करते हैं जी ... इस देश में सब कुछ पूरी ईमानदारी के साथ।"

इसके पहले कि मैं उनसे पूछता कि वे क्या-क्या काम करते हैं, वे बोले, "वोट देते हैं जी पूरी ईमानदारी के साथ। जिससे पैसा लिया, जिसका दारू पिया, जिसका मुर्गा खाया ईमानदारी से उसके चुनाव-चिह्न पर मुहर लगाते हैं जी। हमारी

ईमानदारी का एक नमूना और देखिए — हम किसी का काम बगैर पैसे लिए नहीं करते — पहले पैसे गिनवा लेते हैं फिर काम को हाथ लगाते हैं। हम उन लोगों की तरह नहीं हैं कि सामने तो बिना पैसे लिये काम कर दें और उधर पीछे के दरवाजे से पच्चीस हजार रुपए रखवा लें।''

''याने कि आपके कहने के अनुसार पिछले दरवाजे से पैसे लेना बेईमानी का काम है? और जो लोग इस तरह पैसा लेते हैं वे बेईमान हैं?''

''हमने कहाँ कहा जी कि वे बेईमान हैं — वे भी ईमानदार हैं तभी तो आज सरकार के ऊँचे पदों पर हैं। लेकिन उनकी ईमानदारी का तरीका अलग है। वे बेईमानी नहीं करते लेकिन बेईमानी की रोटी जरूर खाते हैं — बेईमानी के पैसों से अपने बच्चों को देहरादून के स्कूल में पढ़ाते हैं, बेईमानी के पैसों से अपनी बीवियों को विदेशों की सैर कराते हैं।''

वे थोड़ी देर रुके और फिर विस्तार से मुझे समझाते हुए बोले, ''अब देखिए जी, आपने कह दिया कि वे आपका काम कर देंगे, आपको कह दिया कि वे आपको किसी ऊँची पोस्ट पर बिठा देंगे लेकिन यह काम उनके हाथ में नहीं है, ऊपर वाले से कहना होगा। फिर आपसे कहेंगे कि ऊपर वाला पचास हजार माँगता है इसलिए वे दुःखी हैं। आपसे यह भी कहेंगे कि ईमानदार आदमी होकर वे इस देश में बेईमानों के बीच फँस गए हैं। उनके हाथ में होता तो वे बिना पैसा लिये आपका काम कर देते। अब यदि आप अपनी तरक्की चाहते हैं तो आप उनसे कहेंगे ही कि चाहे जो हो, काम जमा दें। आप ऊपर वाले के नाम से पचास हजार एक ब्रीफकेस में ले जाकर उन्हें दे आएँगे। अब ऊपर वाला कौन है यह तो केवल वे ही जानते हैं। ऊपर वाले ने कितने पैसे लिये हैं यह भी केवल वे ही जानते हैं। हम ऐसे नहीं हैं — हम नीचे वाले जरूर हैं लेकिन ईमानदार हैं। समझे आप?''

मैं उनसे बात कर ही रहा था कि एक-दूसरे ईमानदार आ गए। बोले, ''भाई जी, इससे बचना। ये साला एक नम्बर का बेईमान है। सही ईमानदार तो केवल मैं ही हूँ। इससे पूछो — कल साले ने एक मरीज को अस्पताल में पहुँचा कर डॉक्टर से पाँच रुपए कमीशन के लिये। साला दिन-भर दलाली करता है और अपने आपको ईमानदार बताता है। बोलो भाईजी, क्या दलाली खाने वाला ईमानदार हो सकता है?''

तभी पहले ईमानदार ने कहा "अबे चोप्प साले, कमीशन खाते हैं, तेरे बाप का कुछ नहीं खाते। देने वाला देता है और हम ईमानदारी से लेते हैं तो तेरी क्यों फटती है? बेटा, पहले अपने मुँह पर लगी कालिख को साफ करके आ। साले, साहबों को पैसा खिलाकर फौजदारी के मामले से छूट गया और यहाँ आकर ईमानदारी बता रहा है? जिस दिन पुलिस ने हेरा-फेरी के जुर्म में गिरफ्तार कर हवालात में बन्द कर दिया था उस दिन कहाँ गई थी तेरी ईमानदारी? बोल? चुप क्यों है।"

दूसरे ईमानदार ने सन्तुलित होकर कहा "ये मेरा व्यक्तिगत मामला है और व्यक्तिगत मामले का मेरी ईमानदारी से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस देश में लोगों के व्यक्तिगत मामले और ईमानदारी के मामले अलग-अलग होते हैं। सार्वजनिक रूप से मैं आज भी ईमानदार हूँ। कोई मेरी ईमानदारी पर उँगली नहीं उठा सकता। इट इज माई परसनल मामला।"

"बड़ा आया परसनल माऽऽमऽऽलाऽऽ वाला। शर्म नहीं आती दिन-भर बड़े अफसरों के पीछे दुम हिलाता फिरता है और अपने को ईमानदार कहता है?"

दूसरा ईमानदार बोला, "दुम हिलाने से ईमानदारी का कोई सम्बन्ध नहीं है। ईमानदारी अपनी जगह है और दुम अपनी जगह है। मैं तेरी तरह नहीं कि गुंडागिरी करके ईमानदार बना रहूँ।"

"अबे गुंडागिरी करते हैं तो अपने दम पर करते हैं और डंके की चोट पर करते हैं। ये भी हमारा परसनल मामला है, समझा? कोई हमारी ईमानदारी पर कुछ कहेगा तो हम उसकी जुबान काट देंगे हाँ।"

मुझे लगा कि उसकी इस धमकी से दूसरा वाला आदमी कुछ कमजोर पड़ रहा है। मैंने दूसरे ईमानदार से कहा, "आप पीछे मत हटिए ये तो ईमानदारी की लड़ाई है और ईमानदारी के मसले को लेकर पीछे हटना ठीक नहीं है।"

दूसरा ईमानदार तैश में आ गया। बोला, "कौन पीछे हट रहा है? पहले इसे बोल लेने दो। अपने संविधान में सबको बोलने का अधिकार है। यह अपनी बात पूरी कर लेगा तो मैं इसका जवाब दूँगा।"

पहला ईमानदार बोला, "अबे तू क्या जवाब देगा। मार्केट में एक पैसे की क्रेडिट नहीं है और कहता है जवाब दूँगा। अबे पहले समाज में अपनी इज्जत तो बना,



बाद में देना जवाब। जिसका उधार लिया उसी का पैसा डुबा दिया और अपने आपको ईमानदार कहता है? अबे ईमानदार बनने का इतना शौक था तो उधार क्यों लेता है दूसरा से?"

दूसरा ईमानदार अभी भी सन्तुलित था। बोला, "उधार लेने का ईमानदारी से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम अपने विकास के लिए दूसरे देशों से उधार लेते हैं इसका यह मतलब नहीं कि हमारा देश बेईमान हो गया। उधार उसे ही मिलता है जिसकी हैसियत होती है। तुम्हारे जैसे फटीचर आदमी को कौन देगा? ईमानदारी अपनी जगह है और उधार अपनी जगह है। मैं तेरी तरह नहीं कि किसी को कोई माल दिलवा दिया और बीच में कमीशन मार दिया। शर्म तो तुझे आनी चाहिए। साले हर काम में कमीशन खाता है और अपने को ईमानदार बताता है?"

पहला ईमानदार इस बार ठहाका लगा कर हँसा। बोला, "अरे वाह रे ईमानदार की औलाद! मेहनत की कमाई को कमीशन कहता है? इस कमीशन के लिए कितना खतरा मोल लेना पड़ता है, कितनी मेहनत करनी पड़ती है, जानता है? अपनी जान जोखिम में डाल कर दो पैसा कमाते हैं और इसे तू कमीशन कहता है? देश में इतने कमीशन एजेण्ट हैं तो क्या वे सब बेईमान हो गए? बेटा कमीशन खाना भी एक आर्ट है। अब मैं भी कहता हूँ कि कमीशन अपनी जगह है और ईमानदारी अपनी जगह है। अब बोल बेटा?"

मुझे लगा कि दूसरा ईमानदार ईमानदारी की बातें करते-करते थक गया है। मुझे लग रहा था कि ईमानदारी के मामले में वह पहले आदमी के सामने समर्पण कर देगा। मुझसे यदि कोई कहे कि दिन-भर ईमानदारी की बातें करो तो सच कहता हूँ कि मैं थक जाऊँगा। ईमानदारी चीज ही ऐसी है कि आदमी को बहुत जल्दी थका देती है।

दूसरा ईमानदार बोला, "ठीक है शाम को मिलना तब फुरसत से बहस करेंगे ईमानदारी पर।"

पहले ईमानदार की छाती फूल गई। उसके चेहरे पर ईमानदारी की विजय थी। उसने मुझसे कहा, "देखा साहब जी मैं अभी भी आपसे कहता हूँ कि केवल मैं ही ईमानदार हूँ। आप मुझ पर विश्वास करते हैं या नहीं?"

मैंने कहा, "मेरे विश्वास करने या न करने से क्या होगा?"

वह बोला "देखो साहब जी, हमारे लिए आप ही पब्लिक हो। अपना सिद्धान्त है कि कितनी भी गुंडागिरी करो, मारकाट करो, कमीशन खाओ लेकिन पब्लिक को समझा दो कि हम ईमानदार हैं। हमने आपको समझा दिया या नहीं? अब बोलो हम ईमानदार है या नहीं?"

मैंने कहा, "लेकिन जिस तरह आप दोनों ईमानदार लड़ रहे थे, मुझे लगा कि आप दोनों ही ईमानदार नहीं हैं।"

वह फिर ठहाका लगाकर हँसा। बोला, "साहब जी, ईमानदारी की लड़ाई ऐसी ही होती है। हर आदमी दूसरों को बेईमान सिद्ध करके ही अपनी ईमानदारी स्थापित करता है। वैसे वह आदमी भी ईमानदार ही था लेकिन वह जब तक आपके सामने मुझे बेईमान सिद्ध नहीं कर देता आप उसकी ईमानदारी पर विश्वास नहीं करते।"

मेरा जवाब सुनने से पहले वह आगे बढ़ गया।

शाम को मैंने फिर दोनों को देसी दारू की दुकान पर देखा। दूसरा ईमानदार पहले को समझा रहा था, "अब फालतू बक-बक कर रहा था पब्लिक के सामने इस तरह पब्लिक के सामने बक-बक करने से हमारी ईमानदारी किसी दिन खतरे में पड़ जाएगी। और लोगों को पता चल जाएगा कि हम ईमानदार नहीं हैं।"

फिर दोनों ने देसी दारू की बोतल अपने-अपने गिलास में उड़ेली और ईमानदारी से पीने लगे।

प्लाट खरीद लिया है मकान बनाने के लिए

यह सार्वभामिक सत्य है कि मकान बनवाने वालो को अपना बनता हुआ मकान लोगो को दिखाने की जबरदस्त खुजली होती है। कुछ लोग इस देश मे ऐसे भी पाये जाते है जो मकान बनाने के लिए जमीन खरीदने के बाद कम से कम सौ पचास लोगो को तो खाली प्लाट ही दिखाते है और यह सिद्ध करते हैं कि वे कितने बुद्धिमान है।

ऐसे ही एक बुद्धिमान से मैं परेशान हूँ।

जैसे ही उन्होंने मकान बनवाने के लिए प्लाट खरीदा, मेरे घर के दस चक्कर लगा गए। गनीमत उस दिन मै बाहर गया हुआ था। रात देर से लौटा और सुबह नींद ठीक से खुली भी नहीं थी कि वे मेरे घर आ गए। बोले, "यार, तुम जैसा कुम्भकरण मैंने नहीं देखा। धूप सिर पर चढी है और तुम सो रहे हो। अब यह देश तरक्की करेगा भी तो कैसे?"

मैंने कहा, "देश की तरक्की के लिए तुम अकेले ही काफी हो। मुझे क्यों इस विकासशील कार्यक्रम में घसीटते हो।"

वह बोले, "कल से चक्कर लगा रहा हूँ और तुम हो कि मिल ही नहीं रहे हो। मैंने मकान बनाने के लिए प्लाट खरीद लिया है। चलो, तुम्हें दिखाता हूँ।

मैंने कहा "भजन-वजन तो कर लेने दो।"

वह बोले, "अरे मारो गोली भजन को और भी कहीं मुँह धोना है। आधे घंटे में तो लौट आओगे यहीं पास ही तो है।"

मैंने कहा, "प्रेशर बन रहा है।"

वह बोले, "इसी प्रेशर के नाम से तो पूरा देश माग खा रहा है। ऐन वक्त पर लोगों को प्रेशर आता है। अब देखो ना, उधर कुछ चुनाव के संकेत मिल रहे हैं तो इधर कई लोगों को एक साथ प्रेशर आ रहा है। कल एक जनमोर्चा वाले लोटा लेकर जाते हुए दिखे थे सुबह-सुबह। इतनी जल्दी में थे जैसे लग रहा था कि नामांकन दाखिल करने की अंतिम तारीख में केवल कुछ ही मिनट बाकी रह गए हैं।"

इसके बाद वे ठहाका लगा कर हँसे। मुझे हाथ पकड़कर घसीटते हुए बोले, "अरे यार चलो जल्दी बाद में निपट लेना। इतना प्रेशर तो इमरजेन्सी में भी नहीं आया था लोगों को।"

अब हालत यह थी कि मैं उनसे बार-बार पूछ रहा था कि प्लाट कितनी दूर है और वे हमेशा कह रहे थे कि 'बस थोड़ी दूर और है' लेकिन कोई चार किलोमीटर तो उन्होंने मुझे पैदल चलवा ही दिया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने बताया कि यह प्लाट जो है वह उन्हें किस तरह मिला। भाव कैसे तय हुआ, कितना एडवांस दिया और कितना रजिस्ट्री के समय दिया। फिर उन्होंने प्लाट के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा 'अब देखो, यदि इस तरफ मकान का दरवाजा डाल दोगे तो पूरा शहर दिखेगा एक नजर में लेकिन मैं सोच रहा हूँ दरवाजा इधर डालना बेकार है। मैं तो उस तरफ डालूँगा दरवाजा। अब पूछो क्यों?"

मैंने पूछा—क्यों? तो वह बोले, "अपने को शहर देखकर क्या करना है।"

मेरी इच्छा हुई कि इस मौके पर मैं उनका सम्मान कर ही दूँ। एक तो सुबह से जल्दी उठा दिया और अब पीछा ही नहीं छोड़ रहा है। तेरे दरवाजे की ऐसी तैसी मुझे जल्दी घर जाने दे। लेकिन वे थे कि मुझे छोड़ ही नहीं रहे थे। बोले, "अब देखो इधर खिड़की रहेगी। इससे फायदा यह है कि हवा आयेगी।"

मेरी इच्छा दो तमाचे मारने की हुई। मूर्ख, खिड़की से हवा नहीं आयेगी तो क्या जानवर आयेंगे? लेकिन उन्हें तो नशा चढ़ा हुआ था प्लाट का। बोले, "उधर चलो तुम्हें दिखाता हूँ।"

वे मुझे घसीट कर दक्षिण दिशा की तरफ ले गए जहाँ एक भैंस-थान था। बोले 'इसीलिए मैं खिड़की उधर ——— उधर लगाने से गोबर की गंध आयेगी'

जब मकान बनाना तो सोच-समझ कर और आगे-पीछे देखकर बनाना चाहिए। मान लो इधर लगा दी तुमने खिडकी जैसे ही सुबह-सुबह खिडकी खोलोगे, एक भैंस नित्यकर्म से निवृत्त होती हुई दिखेगी यानि कि सुबह की शुरुआत ही गलत हो गई अब इधर खिडकी लगाने मे क्या फायदा इसलिए मैंने तय कर लिया है कि खिडकी तो उधर ही लगेगी।''

मैं चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा तो वे झल्ला गए। बोले, ''यार कुछ तो सलाह दो तुम्हे प्लाट दिखाने लाया हूँ और तुम हो कि कुछ बोल ही नही रहे हो? अच्छा, ये बताओ कि यदि खिडकी इधर लगा भी दे तो क्या हर्ज है? मे इसलिए कह रहा था कि मकान मे इस तरफ एक भी खिडकी नहीं है। बताओ खिडकी देना जरूरी है क्या?''

मैंने कहा, ''बिल्कुल जरूरी नहीं है। मैं तो कहता हूँ एक भी खिडकी मत डालो। अब, चलो जल्दी, मेरी सहनशक्ति जवाब दे रही है।''

वे बोले, ''अरे बडे विचित्र आदमी हो यार। पाँच मिनट मे सहनशक्ति जवाब दे गई तुम्हारी। हमे देखो, इस प्लाट क लिए कितने चक्कर लगाए तब कहीं जाकर मिला हमे। पचास लोग लगे थे सौदा खराब करने के लिए। लेकिन जिसकी किस्मत मे भूमि-योग लिखा होता है, उसे कोई नहीं टाल सकता।''

मैंने पूछा, ''इस प्लाट के आसपास कोई तलाब-वलाब है या नही?

वह बोले, ''अपन तो कुँवा खुदवा लेगे पहले। इसमे फायदा यह होता है कि मकान बनवाते समय पानी की झझट नही रहती। जो मलबा निकलता है उसमे प्लिथ प्लेन हो जाती है। इस कोने मे कुँवा बनाऊँगा लेकिन सोचता हूँ कि यहाँ जमीन का सरफेस कुछ हार्ड होगा। और सेप्टिक टैंक भी पास पडेगा। क्यों?''

मैंने कहा, ''सेप्टिक टैंक किधर है?'' वह बोले, ''अभी तय नही किया है लेकिन सोचता हूँ कि कुवे से जरा दूर ही रखूँ। तुम बताओ किधर ठीक रहेगा?''

मेरी इच्छा हुई कि इस आदमी को सेप्टिक टैंक मे धकेल दूँ और मैं तालाब से निपट कर आ जाऊँ। इसलिए मैंने कहा, ''यार, तुम यहाँ बैठ कर सोचो कि सेप्टिक टैंक किधर रहेगा मैं जरा तालाब से आता हूँ ''

वह बोले, "बस थोड़ी देर और समझ लो। इधर से एण्ट्री हुई, सीधे बैठक में। यहाँ एक छोटा दरवाजा। फिर उससे लगा हुआ बारह–अट्ठारह का हॉल। इधर एक बेडरूम। यहाँ ओपन स्पेस। महिलाओं के लिए चावल वगैरह चुनने के लिए। फिर इधर डायनिंग। उससे लगा हुआ गेस्टरूम और उसके सामने बेडरूम। इस बेडरूम में बाथ–लेट अटैच करने की सोच रहा हूँ। क्यों ठीक रहेगा या नहीं? भई रात के टाइम बाहर निकलना ठीक नहीं है। अन्दर निपट लें तो अच्छा है। क्या?"

मैंने लगभग कराहते हुए कहा, "अच्छा है। चलो अब चलें।"

वह बोले, "लेकिन यदि इस हॉल को यहाँ से इधर शिफ्ट कर दें और इधर लेट–बाथ डाल दें तो कैसा रहेगा?"

मैंने कहा, "बिल्कुल ठीक रहेगा।"

"और यदि इस गेस्टरूम को किचन के पास ले आएँ तो?"

"बिल्कुल ठीक रहेगा।"

"और यदि किचन को यहाँ से हटाकर इस बेडरूम के राइट साइड में डाल दें तो?"

"वो भी ठीक रहेगा।"

"और यदि इस बेडरूम से भी लेट–बाथ अटैच कर दें तो?"

"बिल्कुल ठीक रहेगा।"

"लेकिन यहाँ लेट–बाथ डालने में प्राब्लम यह रहेगा कि गेस्टरूम में जो आदमी सोया है वह डिस्टर्ब हो जायेगा। घर के बाल–बच्चे इसी तरफ से जायेंगे। क्यों?"

"हाँ जायेंगे।"

"इसलिए सोचता हूँ कि गेस्टरूम यहाँ से निकाल कर पीछे की तरफ डाल दूँ। कैसा रहेगा?"

"बिल्कुल ठीक रहेगा।"

"और यदि गेस्टरूम इधर हॉल के पास रख दें तो?"

"वो भी ठीक रहेगा।"

इस बार वे भड़क गए। बोले, " अजीब आदमी हो यार, जो पूछता हूँ 'ठीक रहेगा' ही कहते हो। मैं पूछता हूँ यार कि तुम्हारे पास विवेक नाम की कोई चीज है भी या नहीं? अपन यहाँ इसी बात पर तो पूरा देश मार खा रहा है। जो अगला कह बस वही ठीक है। अपना दिमाग तो लगाना नहीं है किसी को। मैं पूछता हूँ बताओ सेप्टिक टैंक कहाँ बनेगा?"

मैंने गुस्से में कहा, "तुम्हारे सिर मे यार मैं प्रेशर के मारे परेशान हूँ आ तुम मुझे छोड़ ही नहीं रहे हो। नालायक पूछता हूँ तो बेडरूम बताते हो।"

वह बोले, "एक बात कहता हूँ समझो इसे। प्रेशर को बर्दाश्त करना सीखो। हमें देखो, ऑफिस में प्रेशर, घर में अलग प्रेशर। उधर नेताओं का प्रेशर इधर बच्चों का प्रेशर। ऊपर से यह मकान बनवाना है। इसे कहते हैं प्रेशर और तुम हो कि बस अपने ही प्रेशर से परेशान हो। दस मिनट रोककर रखो यार। अब देखो इधर जो बेडरूम है वह मैसथान मे लगा हुआ है। अब बताओ, इसे कहाँ शिफ्ट करें?"

मैंने कहा "नही मालूम।" वह बोले, "अच्छा यदि इस हॉल को सेन्टर मे डाल दे तो?"

मैंने कहा "बिल्कुल ठीक रहेगा।"

"और यदि इसे गेस्टरूम में मिला दे तो?"

"तो भी ठीक रहेगा।"

इस बार उन्होने मुझे इस तरह देखा जैसे वे मुझे कच्चा चबा जायेंगे। बाले "अच्छा चलो, बाद मे सोचेंगे। तुम जल्दी मचा रहे हो तो मेरा भी दिमाग काम नहा कर रहा है।"

इसके बाद की स्थिति यह थी कि वे रोज शाम को मेरे यहाँ आ जाते थे कहते, "यार चलो, प्लाट की तरफ घूम आते हैं।"

एक-दो बार मैंने बहाना बनाया लेकिन वे मुझे जबरदस्ती पकड़कर ले गए। वहाँ जाकर उन्होने मुझे कई बार गेस्टरूम, बेडरूम और सेप्टिक टैंक मे पटका। और अब तो हालत यह है कि डर के मारे मैं शाम को घर पर ही नहीं रहता। पता नहीं

यह भूत कब मुझे पकड़ ले। वे घर पर आते और मेरा पता पूछते। मैंने घर वालों को समझा दिया था कि वे उन्हें यह न बताएं कि मैं कहाँ मिलूँगा। मेरी हालत यह थी कि मैं दबे छिपे रात को दस बजे घर आता और चुपचाप सो जाता। सुबह वे आते और पूछते। मेरे बच्चे कह देते कि पापा रात-भर घर नहीं आए हैं।

लेकिन वे निराश नहीं हुए। मुझे ही निराश होना पड़ा। मैंने एक माह की अर्नलीव के लिए आवेदन पत्र दिया और लिखा कि इन दिनों मैं मानसिक रूप से परेशान हूँ इसलिए अपने गाँव जाना चाहता हूँ।

छुट्टी सेंक्शन हो गई और मैं बच्चों सहित गाँव चला आया।

एक माह बाद जब मैं लौटा तो वे मुझे स्टेशन पर ही मिल गए। बोले "यार अचानक क्या हो गया था? पिताजी तो ठीक है ना? तुम बिना कुछ बताए चले गये ना मुझे चिंता हो रही थी। कोई प्राब्लम तो नहीं है? मैं तो महीने-भर से तुम्हारा रास्ता देख रहा हूँ। रोज स्टेशन आता हूँ। शाम को घर पर रहोगे ना?"

मैंने पूछा, "क्यों? कोई खास बात?"

वह बोले, "वो अपना मकान बन रहा है ना एक बार आपको दिखा देता मैंने कुछ चेंज किया है मैं शाम को पाँच बजे आता हूँ बात ये हुई कि उधर से भैंसथान हट गया है। नगरपालिका वालों ने हटवा दिया वहाँ से। इसलिए हुआ ये कि पूरा नक्शा ही बदलना पड़ा शाम को चलकर दिखाता हूँ तुम्हें अब सेप्टिक का प्राब्लम नहीं है। उसी तरफ डाल दिया है जिधर भैंसथान था। खिड़कियाँ भी निकाल दी है उस तरफ तुम देखोगे तो खुश हो जाओगे ऐसा नक्शा लगाया है कि पूरी फेसिलिटी अन्दर ही अन्दर बाहर झाँकने तक की जरूरत नहीं। अच्छा, मैं शाम को आता हूँ।"

अब कुल मिलाकर स्थिति यह है कि रोज बेडरूम से निकल कर लेटबाथ और वहाँ से निकलकर किचन में जाता हूँ। वहाँ से हॉल में आता हूँ। कभी यह खिड़की खोलता हूँ और कभी वह दरवाजा बन्द करता हूँ। उनके मकान के बारे में वे जितना नहीं जानते, उससे अधिक मैं जानने लगा हूँ। कभी-कभी वह मुझसे पूछते हैं, "क्यों यार वो दरवाजा किधर खुलता है?" मैं तुरन्त कहता हूँ, "ओपन स्पेस की तरफ।" वह पूछते हैं "पहले अपन ने यह सिंटेक्स किधर लगाई थी?" मैं कहता हूँ, "भैंसथान

की तरफ।'' वे पूछते हैं, ''पहले यह सेप्टिक टैंक डालने का अपना प्लान कहाँ था?'' मैं कहता हूँ, ''तुम्हारे सिर में।''

वे हँसते हैं। कहते हैं, ''तुम हास्य अच्छा कर लेते हो। जिन्दगी में हँसने-बोलने के सिवाय बचा ही क्या है। मेरी मानो तो एक मकान तुम भी बनवा ही लो। जिंदगी का क्या भरोसा।''

मैं सोचता हूँ कि जब इतने लोग परेशानियों में जी रहे हैं तो मैं भाग कर कहाँ जाऊँगा? यही सोचकर मैं उनका बनता हुआ मकान काफी साहस और धैर्य के साथ देख रहा हूँ। जब हम देश में इतने लोगों को बर्दाश्त कर रहे हैं तो आखिर उन्होंने क्या बिगाड़ा है?

❑

बन रहा है उनका मकान

उसे देखता हूँ तो लगता है जैसे यह आदमी पागल हो जायेगा। भरी दुपहरी में सिर पर पंछा लपेटे इधर से उधर भागता रहता है। रात में बराबर सोता नहीं। चौंक कर उठ जाता है। गिट्टी, रेती, पत्थर, लोहा, सीमेंट और छड़ के अलावा कोई दूसरी बात करता नहीं। उधर अपने पा. एम. कामराज नगर में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित कर रहे थे और इधर यह आदमी भगत मिस्त्री को समझा रहा था कि कितना रद्दा बोल्डर देने के बाद डी पी सी मारना है।

इसे कहते हैं समर्पण भावना। एक मकान क्या बनवा रहा है दीन-दुनिया को भूल गया। उस दिन एक भिखमंगा 'मिले माई बाप' बोल कर खड़ा नहीं हुआ कि उसने तुरन्त बच्चे से कहा, "दे दे रे इसको एक गिलास मुरम।"

बाद में उसे याद आया कि भिखमंगा मुरम खा जायेगा तो पुलिस वाले उसे परेशान करेंगे। लेकिन किया भी क्या जा सकता है। उसकी विवशता थी। उसकी आदत थी कि जिस काम को हाथ में लो, उसमें डूब जाओ। मकान बनवाने का काम लिया है तो उसमें इतना डूबना ही पड़ता है। एक रात नींद में उठकर चिल्लाने लगा, "पकड़ो... पकड़ो। चोर सीमेंट बोरा चुराकर भाग रहा है।" कहने का मतलब यह है कि मकान बनवाने के पीछे वह बेधुन हो गया है।

सुबह मंजन करने के पहले एक चक्कर मकान का लगाता है। वहाँ जाकर देखता है। थोड़ी देर इधर-उधर घूमता है और फिर वापस आ जाता है। उसे हर रोज यही डर रहता है कि भगत मिस्त्री दूसरा ठीहा पकड़ लेगा तो उसका मकान अधूरा रह जायेगा। मंत्री और मिस्त्री का कोई भरोसा नहीं, कब किधर चले जाएँ।

जिस दिन उसके मकान की प्लिंथ पूरी हुई उसके दूसरे दिन से वह साजा, सरई, बीजा, हल्दू आदि का नाम रटने लगा। कौन-सी लकड़ी सस्ती पड़ेगी, रेट क्या है, फारेस्ट गार्ड का घर कहाँ है, सुन्दर बढ़ई कितने बजे घर पहुँचता है, एक चौखट में कितने फिट लकड़ी लगती है, और होलफॉम कहाँ सस्ता मिलता है आदि महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर उसने अपने आपको केन्द्रित कर लिया।

उस दिन पान ठेले पर उससे मुलाकात हो गई। मैंने मीठा पान लिया और एक रुपये का नोट महती जी को दी। महती जी ने कहा, "हो गया।"

मैंने कहा, "क्यों? कल तक तो मीठा पान पचहत्तर पैसे का था!"

महती ने कहा, "पान के भाव बढ़ गये हैं। सुपारी महँगी हो गई। कत्था महँगा हो गया। इतनी महँगाई बढ़ रही है कि क्या कहें।"

मकान मास्टर ने पंछा कंधे पर लटकाया और कहा, "ठीक कहते हो महती जी। देखो, सरई एक सौ चालीस रुपया फिट हो गई। अब कोई मकान बनवाये तो बनवाये कैसे। बीजा जैसी लकड़ी जिसको कुत्ता नहीं सूँघता था, अनाप-शनाप भाव पर बिक रही है। मैं तो कहता हूँ कि महँगाई कम करना है तो पहले सरई-बीजा का रेट उतारो। सरकार आवास सुविधा की बात करती है लेकिन सरई-बीजा का भाव नहीं उतारती। अब तुम ही कहो, कोई मकान कैसे बनवाए?"

मैंने कहा, "उड़ीसा में बीजा सस्ता है। दो नम्बर का माल अच्छा मिलता है।"

मेरा इतना कहना ही मेरे लिए घातक हो गया। उसने महती को छोड़ा और मुझे पकड़ लिया। पूछा, "कहाँ मिलेगा?" मैंने कहा, "कहीं भी मिल जायेगा।"

एक दिन ऐसा हुआ कि रात को बारह बजे किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो देखा कि मकान मास्टर खड़े हैं। मुझे देखते ही बोले, "आपने कहा था कि उड़ीसा में लकड़ी सस्ती है। मुझे दो-चार लोगों के नाम बता दीजिए। मैं कल जाऊँगा।"

मैंने कहा, "मुझे नहीं मालूम।"

वह हँसा। बोला, "बता दीजिए। मैं किसी को नहीं बताऊँगा।"

मैंने फिर कहा, "कह दिया ना कि मुझे नहीं मालूम।"

वह बोला, "आपको मालूम है। समझ लीजिये कि आपका ही मकान बन रहा है बता दीजिए ना... सच कहता हूँ मैं किसी से नहीं कहूँगा।"

मेरी इच्छा हुई कि इस आदमी को दो तमाचा मारकर भगा दूँ। खामोखा मेरी नींद खराब कर रहा है। लेकिन उसका चेहरा देखकर लगा कि दो तमाचा मारूँगा तो वह कहेगा "लगे तो दो तमाचा और मार लो लेकिन बता दो कि लकड़ी कहाँ सस्ती मिलती है।"

यह सोचकर मैंने कह दिया "अच्छा सुबह बता दूंगा।"

सुबह चार बजे फिर किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैंने आँखें मलते हुए दरवाजा खोला तो मकान मास्टर बोले, "आपने कहा था ना कि सुबह बताऊँगा... इसलिए मैं आया हूँ।"

मैंने सोचा, साला ये आदमी है या भूत। मैंने कहा, "सुबह का मतलब है सात बजे।" वह बोला, "तीन घंटे में क्या फरक पड़ता है। अभी बता देते तो मैं भी एक नींद मार लेता।"

लोग कहते हैं कि मकान बनवाना परेशानी का काम है लेकिन मैं कहता हूँ कि मकान बनवाने के बदले मकान बनवाने वाले से मिलना अधिक परेशानी का काम है। सुबह मैं तो देर तक सोता रहा और वह साढ़े छः बजे से मेरे मकान के चक्कर लगाने लगा। घर वालों ने कहा कि सो रहे हैं तो वह बोला "जरा उठा दो, मुझे जरूरी बात करनी है।"

घर वालों ने मुझे उठाया और बताया कि कोई आदमी मुझसे जरूरी बात करना चाहता है। मैंने उठकर देखा तो मकान मास्टर खड़ा मुस्करा रहा था। मुझे देखते ही बोला, "आपने कहा था ना कि सात बजे बताऊँगा। सवा सात हो रहा है।"

मैंने पीछा छुड़ाने के लिए दो-चार उल्टे-सीधे नाम बता दिये।

फिर आश्चर्य हुआ कि वह सस्ती लकड़ी भिड़ा आया। मुझसे एक हफ्ते बाद मिला। बोला, "आपने सही रास्ता बताया। अब एक समस्या और हल कर दीजिए मेरी।

इसके पहले कि मैं कुछ कहता उसने कहा, "कुँवा नही जम रहा है। आप मेरे साथ चल कर मुझे समझा दीजिये कि कुँवा कहाँ खुदवाऊँ।"

मैंने कहा, "मुझे कुवे का अनुभव नहीं है।" वह हँसा। बोला, "मजाक मत कीजिए। आपको सब अनुभव है। समझ लीजिए कि आपका ही मकान बन रहा है। बाल-बच्चे नहायेंगे और आपको दुआ देंगे। थोडा चलिए ना मेरे साथ।"

मुझे लगा कि यह आदमी कहीं कुँवा खुदवाकर उसमें कूद मत दे। कोई ठिकाना नहीं है। मकान के पीछे इतना पागल हो गया है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। यही सोचकर मैंने कहा, "कुवे के चक्कर में मत पड़ो। नगरपालिका के नल से काम चला लो।"

उसने कहा, "मैंने सब हिसाब लगाकर देख लिया। कुँवा ही सस्ता पड़ता है। हर मौके पर साथ देता है।"

उसका मन रखने के लिए मैं उसके साथ गया। वहाँ जाकर देखा तो उसने एक इंच जगह भी नहीं छोडी थी। पडोसी की दीवाल से लगाकर दीवारें बनाई थी मैंने कहा, "कुछ जगह छोड देते तो कुँवा भी बन जाता।"

उसने कहा, "जगह नहीं है, इसीलिए तो आपको लाया हूँ। आप सरकारी विभाग में काम करते हो। बिना जगह के भी फाइल में कुँवा निकाल देते हो। अपना मकान समझकर मेरे लिए भी कुँवा निकाल दो। बस यही विनती है आपसे।"

अब मुझे लगा कि यह आदमी पागल नहीं है। अपने लिए सुविधाएँ जुटा रहा है। जब प्रजातंत्र में सभी लोग अपनी सुविधाओं के लिए परेशान हैं तो इस आदमी का एक मकान के पीछे परेशान होना वाजिब है।

उसने पूछा, "मुख्यमंत्री को दरख्वास्त देने से काम बनेगा? ऐसा कुछ हो तो पकडता हूँ किसी जी को। और मैं भी चला जाता हूँ कांग्रेस में।"

मैंने पूछा, "कुँवा अपने लिए बनवा रहे हो या दूसरों के लिए?"

इस बार वह मुस्कुराया। बोला, "कुँवा भई कुँवा जिसके भी काम आ जाए। आप तो अपना मकान समझकर हमें सलाह दो। बताओ किधर से निकलेगा कुँवा?"

मैं जानता हूँ वह जिसके पीछे पड़ जायेगा, उसे निपटा कर ही रहेगा। वह कुँवा खोदकर ही दम लेगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कहीं से भी जगह निकाल लेगा। उसे इस बात की चिन्ता नहीं है कि यह किसके काम आएगा।

अपने इस मकान के लिए वह कुछ भी कर सकता है, यह मैं भी महसूस करता हूँ और मेरे साथ कई लोग महसूस करते हैं। लोग उसे भले ही पागल कहें वह अपनी जिद पूरी करके ही रहेगा। जिद से मेरा मतलब उसके मकान में कुवें से है आप अन्यथा न समझें।



पागलों के सान्निध्य में

इन दिनों हमारे यहाँ दो पागल स्थायी रूप से चौक पर डेरा डालकर बैठे हैं। दोनों पुरुष पागल हैं। महिला पागलों का अभाव हमारे यहाँ कभी भी नहीं रहा लेकिन उनका मन हमारे शहर में लगा नहीं। आती है और चली जाती है। पिछले चुनाव के समय एक महिला पागल आई थी। उम्मीदवारों को देखकर जोर का ठहाका लगाती थी और फिर जमीन पर थूककर चली जाती थी। कुछ बोलती नहीं थी। महिलाओं की यही विशेषता मुझे पसंद आती है—बोलती कुछ नहीं लेकिन अपनी अदाओं से सब-कुछ कह जाती हैं। चुनाव-प्रचार चलता रहा और महिला थूकती रही, ठहाके लगाती रही। वह क्यों ऐसा करती थी, किसी की समझ में नहीं आया।

मेरे एक मित्र ने मुझसे पूछा, "यार, तुम ही बताओ कि वह ऐसा क्यों करती है?"

मैंने कहा, "वह इस व्यवस्था पर थूकती है। देख रहे हो सभा में घुसने के लिए लोग पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं। विधानसभा में जायेंगे तो इससे कई गुना कर्मचारियों के तबादले करवाकर और लाइसेंस परमिट दिलवाकर वसूल कर लेंगे।"

वह बोले, "तो इसमें थूकने की क्या बात है? यह तो हमारा चरित्र है। हम इनवेस्टमेंट करते हैं तो उसके रिटर्न की अपेक्षा भी रखते हैं। यह व्यावसायिक प्रवृत्ति हमारे खून में है। इसमें उन चुनाव लड़ने वालों का क्या दोष?"

मेरे मित्र ने बात सही कही थी। अब राजनीति उद्योग हो गई है। आजादी के बाद प्रारम्भिक दशक में जो राजनीति के मूल्य थे, वह नहीं रहे। गिरावट आ गई

है इन मूल्यों में। लेकिन पागलों की स्थिति वही है जो आजादी के साथ-साथ थी। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे शहर में एक पागल नंगा घूमता है। किसी से बात नहीं करता। कपड़े दो तो फेंक देता है। इस पर टिप्पणी करते हुए मेरे मित्र ने कहा, "यार, इस आदमी से किसी कपड़े की दुकान का उद्घाटन करवा दो।"

इसके बाद मित्र हँसे। मैं जानता हूँ वे इसलिए हँसे क्योंकि ऐसा कहकर उन्होंने अपनी बात में व्यंग्य पैदा कर लिया था। यह प्रासंगिक इसलिए था कि उसी शाम हमारे शहर में एक कपड़े की दुकान का उद्घाटन हमारे विधायकजी के कर-कमलों से सम्पन्न होने जा रहा था।

मैंने कहा, "जिसे तुम पागल समझ रहे हो, वह पागल नहीं है। मुझे यह बताओ कि शहर में नंगापन कहाँ नहीं है? हर वीडियो सेन्टर में थ्री-एक्स फिल्में चल रहा है। हमारे संस्कार दूषित हो रहे हैं। केवल कपड़े पहन लेने से हम अपने नंगेपन को ढँकने का ढोंग रचते हैं। अब यदि पागल नंगा घूमता है तो इसमें क्या बुराई है?

वह समझ गये कि मैं व्यंग्य को नहीं समझ रहा हूँ। बोले, "यार, मैं तो समझता था कि तुम्हारी समझ व्यंग्य के मामले में अच्छी है। इतने सालों से व्यंग्य लिख रहे हो और छोटा-सा व्यंग्य-संकेत भी नहीं समझ सके?"

मैं समझ रहा था कि वे कपड़ा की दुकान, विधायक और पागल को मिलाकर यह बताना चाहते थे कि हमने इस बार जो जन-प्रतिनिधि चुना है, वह पागल है। लेकिन उनमें साफ-साफ यह कहने का साहस नहीं था क्योंकि वे सरकारी नौकरी में थे। विधायक जी को पता चलेगा कि वे ऐसा कमेन्ट कर रहे थे तो तुरन्त उन्हें प्रदेश के दूसरे छोर पर भेज दिया जाएगा और कहा जाएगा, "लो बेटा, अब देखो हमारा पागलपन! ले जाओ अपने बाल-बच्चों को वहाँ और भुगतो अपने व्यंग्य पर।"

मैंने कहा, "मित्र, साफ-साफ कहो कि तुम किस पर व्यंग्य कर रहे हो?"

वह 'हे-हे' कर हँसने लगे। बोले, "यार, मैं तो मजाक कर रहा था... तुम्हें व्यंग्य लिखने की प्रेरणा देने के लिए मैंने यह कहा था।"

मैंने कहा, "दूसरों को प्रेरणा देना अपने देश में आसान काम है। मैं कहता हूँ कि साफ-साफ कहो कि अपना जन-प्रतिनिधि पागल है।"

वह बोले, ''मैं ऐसा नहीं कह सकता। इस बार हमने जिस व्यक्ति को चुना है, वह बहुत योग्य है।''

मैं समझ गया कि वे मुझसे डर रहे हैं। मेरी आदत है कि व्यंग्य में जो संवाद लिखता हूँ, वे ऐसे ही लोगों के होते हैं। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं यदि मैंने उनके इस संवाद का उल्लेख व्यंग्य में कर दिया तो वे विधायक जी की ब्लैक-लिस्ट में आ जायेंगे। आजादी के बाद सरकारी नौकरी करने वालों का यह नैतिक कर्तव्य है कि जन-प्रतिनिधियों की गुड-बुक्स में रहें।

ठीक उसी समय चौराहे का दूसरा पागल हमारे पास आ गया। उसकी यह आदत थी कि वह आँखें फाड़कर लोगों को देखता था; और उसके बाद कहता था 'हरामजादे... सूअर की औलाद... साले हिजड़े।' इन तीन शब्दों के अलावा उसके मुँह से और कोई शब्द हम लोगों ने आज तक नहीं सुना।

मैंने मित्र से पूछा, ''बताओ, यह पागल ऐसा क्यों कहता है?''

मित्र चुप हो गये। शायद उन्हें इन शब्दों से शर्म आने लगी थी। वे कुलीन परिवार के थे। पिछले कई सालों से सरकारी सेवा में थे। बोले, ''पागल है इसलिए जो मन में आता है कह देता है। इसकी बातों पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने संविधान में पागलों के लिए यह छूट है। यदि ऐसा नहीं होता तो क्रांति आ जाती। हम पागलों को अपने से अलग समझते हैं।''

मैंने तुरन्त कहा, ''शायद इसलिए पागलों को वोट देने का अधिकार नहीं है।''

वह फिर हँसे। बोले, ''इस बात पर व्यंग्य लिख दो, मजा आ जायेगा।''

मैंने उनसे कहा, ''इस बार तुमने अपना वोट किसे दिया था?''

वह फिर डर गये। उन्हें मेरी बातों से डर लगने लगा था क्योंकि उनके चेहरे पर ऐसे भाव आ रहे थे कि मैं उनके व्यक्तिगत मामलों की छान-बीन करने लगा हूँ। बोले, ''छोड़ो यार फालतू बातें... अच्छा बताओ कि तुमने पागलों पर कोई व्यंग्य लिखा है?''

मैं समझ रहा था कि मेरी बात को वे फालतू बात क्यों कह रहे हैं। पिछले चुनाव में उन्होंने जिस उम्मीदवार के प्रति अपनी हमदर्दी जाहिर की थी, वे हार गये थे। अब वे यह स्वीकार करना नहीं चाहते थे। शायद उनके मन में इस बात का डर हो कि कहीं अपने विधायक जी को पता चल जाए कि उन्होंने अपना वोट विरोधी उम्मीदवार को दिया है, तो वे तकलीफ में पड़ सकते हैं। सरकारी नौकर को तकलीफ में डालने का यही अचूक अस्त्र है। इन दिनों जो छोटे-छोटे लोग सत्ता की दलाली कर रहे हैं, वे ऐसे ही लोगों की तलाश में रहते हैं। उनमें से एक उनके पास आयेगा और कहेगा, "हमने सुना है कि आप शासकीय कर्मचारी होकर राजनीति में भाग लेते हैं?"

यह सवाल सुनकर उनका पाजामा ढीला हो जाएगा, यह बात मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ। इस स्थिति में वे किस तरह निपटेंगे यह अलग बात है। यह भी हो सकता है कि वे छोटे कार्यकर्ताओं के लिए अपनी तरफ से कोई महीना बाँध दें या फिर उनके पैर पकड़ लें।

कार्यकर्ता कहेगा, "आपके खिलाफ बड़ी शिकायत है। आप बिना पैसे लिए किसी का काम नहीं करते। विधायक जी से मेरी बात हुई थी आपके बारे में। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उन्हें सही जानकारी दूँ। कहिए, आपका क्या कहना है?"

इस तरह की भूमिका के पीछे क्या होता है, यह आप और हम अच्छी तरह जानते हैं। पिछले कई सालों से ऐसा ही होता आया है। सरकारी अमला लाखों रुपए चन्दे के रूप में देता है जिससे मंत्री अपना स्वागत करवाते हैं, छोटे कार्यकर्ता अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं। पिछले दिनों एक मंत्री जी आए थे। नगर में पचास गेट बनवाने का जिम्मा एक अधिकारी ने लिया। दूसरे अधिकारी ने डिनर की व्यवस्था कर दी। ठेकेदारों ने हजारों रुपया नगद दे दिया और कहा कि मंत्री जी पहली बार हमारे नगर में आ रहे हैं, उनके स्वागत में कोई कमी नहीं आनी चाहिए, लगे तो पैसा और ले जाना।

मैं समझता हूँ, ठेकेदार दो हजार देगा और बीस हजार का घपला करेगा। इन लोगों पर ही मंत्रियों के स्वागत का भार होता है। वे सबसे आगे होते हैं। अधिकारी को नौकरी करनी है, सत्ता में रहने वालों को प्रसन्न रखना है। वे गेट नहीं बनाएँगे तो

कब गेट के बाहर हो जाएँगे पता ही नहीं लगेगा। डिनर में मंत्री जी और उनके चमचों को अच्छा खाना नहीं खिलवाएँगे तो प्रशासन में उनका खाना-पीना बंद हो जाएगा।

पागलों का प्रसंग चल रहा था और बीच में व्यवधान के लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ। आ जाइए फिर से उन्हीं पागलों पर जिनसे मैंने बात प्रारम्भ की थी।

मित्र मेरी ओर देखते रहे और सोचते रहे कि जाने मैं क्या कहने वाला हूँ मैंने कहा, "अभी तक तो पागलों पर कोई व्यंग्य मैंने नहीं लिखा है, सोचता हूँ इस बार कुछ लिख दूँ। क्या तुम मेरी मदद करोगे?"

वह बोले "कैसी मदद? क्या तुम मुझे पागल समझते हो? यार, थोड़ा बहुत व्यंग्य तो हम भी समझ लेते हैं। कुछ नहीं बोल रहे हैं, इसका यह मतलब नहीं कि तुम हमें कुछ भी कहते रहो और हम चुपचाप सुनते रहें। हमने भी अपनी माँ का दूध पिया है कायर मत समझना हमें। इसी चौक पर धर लेंगे तुम्हें और

मैं समझ रहा हूँ, इसके बाद वे कहना चाहते थे, 'और लगाएँगे दो जूते।' लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं कहा। उन्हें इस बात का डर था कि मैं थाने में उनके खिलाफ एफ आई आर दर्ज करवा दूँगा मारपीट की। मुँह से कुछ भी कहो लेकिन हाथ मत चलाओ। इसी में सरकारी कर्मचारी की वीरता है। वह यह भी जानते थे कि थाने में रिपोर्ट दर्ज हो गई तो दरोगा साहब उनसे अच्छी रकम भुना लेंगे। डिपार्टमेंट की रिपोर्ट की एक प्रति मैं ही भेज दूँगा तो बड़े साहब उनसे कुछ न कुछ मँगवा लेंगे। इस तरह के अनेक डर उनके मन में थे। माँ का दूध पीने का दावा वे जरूर कर रहे थे, लेकिन डरे हुए मन से।

मैंने कहा, "तो ठीक है मैं तुम पर ही व्यंग्य लिखूँगा तुम कायर नहीं हो। बहादुर कर्मचारी हो। समझदार हो, और अपने जन-प्रतिनिधियों को पागल कहते हो। मैं यह भी जानता हूँ कि पिछले चुनाव में तुमने किसे वोट दिया है। अपने व्यंग्य में मैं यही बातें लिखूँगा। फिर चाहो तो मुझे धर लेना चौक पर।"

वह तुरन्त बोले "अरे यार, यह बात नहीं है। भई, तुम तो नाराज हो गए मैं तो शहर के इन पागलों के बारे कह रहा था जो चौराहे पर बैठे हैं उनके बारे में

कुछ लिखो। तुम तो मेरे मित्र हो इसलिए तुमसे मजाक कर रहा हूँ। देखो दादा, बचा के लिखना जो भी लिखना हो। तुम तो जानते हो हम सरकारी नौकर हैं। समझते सब है लेकिन खुलकर बोल नहीं सकते।''

मुझे उस महिला पागल की याद आ गई जो उम्मीदवारों को देखकर थूक देती थी और ठहाके लगाती थी। मैं कहता हूँ वह हम पर ही थूकती थी, हमारे गिरते हुए चरित्र पर थूकती थी हमारे मित्र की तरह कायर लोगों पर थूकती थी, हम जैसे मौकापरस्त मतदाताओं पर थूकती थी, हमारी नैतिकता पर थूकती थी। वह पागल होकर प्रसन्न थी और हम जैसे लोग लेखक होकर दुःखी हैं।



सच के उद्घाटन पर

पिछले दिनों हमारे यहाँ एक कपड़े की दुकान का उद्घाटन हुआ। दुकानदार हमारे पास आए और बोले—उद्घाटन आपके कर-कमलों से करवाने का विचार है आशा है आप निराश नहीं करेंगे।

हमने सोचा कि हम जैसे नंगे लोग जिस दिन कपड़े की दुकान का उद्घाटन करेंगे तो देश कहाँ जाएगा? हम तो यही जानते हैं कि आज हमें पद पाकर के कारण इज्जत मिल रही है। हम तो नंगे थे, नंगे हैं और नंगे रहेंगे। यह तो इस देश की महानता है कि हमें इज्जत मिल रही है। जिस तरह विदेशों में लोग सच्ची बातें सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेते हैं उसी तरह हमारी इच्छा हुई कि दुकानदार से कहें—देखो भाई साहब, हम नंगों से कोई उद्घाटन मत करवाओ। जिसका उद्घाटन हम करेंगे वह भी नंगा हो जाएगा।

लेकिन हम यह सोचकर चुप रह गए कि अपने देश में अभी राजनीति करने वालों की इज्जत इसीलिए बची है कि 'कनफेशन' यहाँ नहीं है।

हमने कहा—उद्घाटन तो आप किसी मंत्री से करवा लेते तो अच्छा था मैं तो बहुत छोटा आदमी हूँ। और आप तो जानते ही हैं कि भले ही आप उद्घाटन मुझसे करवा लें लेकिन सौ रुपये का कपड़ा मुझे उधार देने के पहले आप सौ बार सोचेंगे। क्यों?

सज्जन जरा झेंप गए बोले—भाईजी, आप भी कैसी बात करते हैं। क्या हम आपको नहीं जानते? हमारी जान हाजिर है आपके लिए और आप हैं कि कपड़े की

बात कर रहे हैं। लगे तो पूरी दुकान ले जाइए। आपको मना करेंगे तो क्या हम इस शहर में रह पाएँगे?

आपको सच बताता हूँ कि ये जो सेठ है ना, एकदम मौकापरस्त है। जब मैं चुनाव में खड़ा हुआ था तो वह मेरे विरोधी को सपोर्ट कर रहा था। आज मैं जीत गया तो मुझसे उद्घाटन करवाने आया है। हम नंगों को सिखाने आया है कि कपड़ा कैसे पहनते हैं? अरे वाह रे सेठ! सोचना होगा हम उद्घाटन करने के लिए आ जा रहे हैं।

लेकिन मैंने उससे ऐसा कुछ नहीं कहा। जब अपने देश में सच बोलने के लिए कड़े कानून लागू कर दिए जाएँगे तब मैं उससे यह बात कहूँगा। जब ऐसा कोई कानून ही नहीं है तो सच बोलकर क्यों अपनी फजीहत करवाएँ।

मैंने कहा—अच्छा सेठ उद्घाटन करने तो आ जाऊँगा लेकिन तुम्हें किसी दूसरे को अध्यक्ष बनाना होगा। मैं अकेला नहीं आऊँगा।

आप सोच रहे होंगे मैंने ऐसा क्यों कहा। दरअसल मैं अपने चाहने वालों की लाबी बना रहा हूँ। किसी बड़े आदमी को अपने साथ फिट कर लूँगा तो मौके पर मेरा साथ देगा। सच कहता हूँ मैं देश सेवा या जन सेवा की भावना से राजनीति में नहीं आया हूँ। आप फिर सोच रहे होंगे कि आज भैयाजी को क्या हो गया कि जो भी बात करते हैं बिल्कुल कनफेशन के मूड में कर रहे हैं। बात ऐसी है कि पिछले कई सालों से झूठ बोलकर मैं कुंठित हो गया हूँ। अब सोचता हूँ कि कुछ साल सच बोलकर भी देखूँ। लेकिन हिम्मत नहीं हो रही है। सच बोलना बहुत मुश्किल काम होता है।

मैंने उद्घाटन का आमंत्रण स्वीकार कर लिया। सेठ ने मुझे धन्यवाद दिया। फिर धीरे से कान में पूछा:अध्यक्षता के लिए किसे बुला लूँ?

मैंने भी लगभग उसी स्टाइल में एक नाम बता दिया।

मैंने दुकान का उद्घाटन किया। बहुत लोग आए थे। बड़े अफसर सरकारी नौकर अफसरों की चहकती बीवियाँ। मैंने फीता काटा। लोगों ने तालियाँ बजाईं। लो, इस देश में कपड़े की एक और दुकान खुल गई। अब कोई नंगा नहीं रहेगा। लेकिन जो नंगे रहने के लिए ही इस देश में पैदा हुए हैं उनके लिए कपड़ा क्या और दुकान क्या

शुभकामनाएँ देते हुए मैंने कहा:दोस्तो, यह प्रसन्नता की बात है कि आज नगर में एक कपडे की दुकान खुल गई। स्वतंत्रता के बाद हमने कपड़ों के मामले में बहुत प्रगति की है। सच कहा जाए तो आजादी के बाद ही हमें कपडे पहनने की तमीज आई है। आज विदेशों में हमारे कपडों की धूम है। मैं इस विश्वास के साथ इस दुकान का उद्घाटन कर रहा हूँ कि अब जनता को अच्छी से अच्छी और ऊँची से ऊँची वरायटी का कपडा यहीं मिलने लगेगा। सेठजी बहुत परिश्रमी हैं। उन्होंने श्रम का महत्त्व समझा है। कभी पर कपडे का गट्ठा लेकर उन्होंने यह व्यवसाय प्रारम्भ किया था और आज वे इस विशाल दुकान के मालिक हैं। मैं कामना करता हूँ कि उनकी दुकान खूब चले ताकि देश कपडे के मामले में आत्मनिर्भर बने।

तालियाँ बजीं। मैं झूठ बोल रहा था इसलिए तालियाँ बज रही थीं। पिछले कई सालों से देश में ऐसा ही हो रहा है। हम सच से झूठ बोलते हैं और लोग तालियाँ बजाते हैं। फिर स्वल्पाहार हुआ। लोगों ने कीमती कपडे खरीदे। गल्ला नोटों से भर गया।

सेठजी ने मुझे कहा—भैयाजी, आपके लायक तो

मैंने बीच में ही कहा—सेठजी हम नेता तो बस खादी पर ही जीवित हैं। जिस दिन हम लोग पाँच सौ रुपये मीटर का कपडा पहनने लगेंगे, तब बापू की आत्मा हमें धिक्कारेगी कि हम उनके सिद्धान्तों पर नहीं चल सके।

सेठ ने मेरे कलफ लगे झक सफेद खादी के कपडों की ओर देखा फिर मुस्कुराने लगा। मुझे लगा जैसे इस उद्घाटन अवसर पर उसकी भी इच्छा हो रही थी कि वह भी एक बार सच बोल दे।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। सच बोलने के लिए बहुत बड़ा कलेजा चाहिए। सच बोलकर भूखों मरने से अच्छा है चुप रहा जाए। वह भी सच बोलने लगा तो हम जैसे नंगे लोग देश का विकास कैसे करेंगे?

❑

अलविदा हो थानेदार साहब !

लगभग तीन साल तक पूरे शहर का उन्होंने क्षुब्ध पुरुष की तरह रौंदा और अब इस नगर से विदा ले रहे थे। स्वभाव तो उनका वैसे भी मुकम्मल था लेकिन पुलिस की नौकरी में आने के बाद गालियाँ सीख जाने के कारण वह जरा प्रभावशील लगने लगे थे। जब पहली बार हमारे शहर में आये तो हमें लगा था जैसे कोई अनाथ आश्रम की बेसहारा बालिका चंदा लेने आ गयी है। उन दिनों उनके चेहरे पर एक मासूमियत थी जो पुलिस में भरती होने से पहले हर समझदार आदमी में होती है। जब कोई महिला थाने में रिपोर्ट दर्ज करवाने आती तो पहले वह शर्म से लाल हो जाते और बाद में बड़ी हिम्मत करके उसे कम वजन की गाली देकर बताते कि वह इस नगर में थानेदार हैं।

कभी-कभी वह सिल्क का कुरता पहनकर बाजार में निकलते तो हर सब्जी बेचने वाला लड़का उन्हें ललचाई नजर से देखता। इत्र के भी वह शौकीन थे, बीच बाजार में जब महमहाता हुआ थानेदार निकलता तो लोग कहते—कहाँ बेचारा पुलिस की नौकरी में फँस गया। इसे तो किसी हरम में होना था।

किसी तरह उन्होंने अपने आपको पुलिस में एडजस्ट कर ही लिया। पहले घर में गालियाँ देने की प्रैक्टिस की और जब बाद में गालियों के मामले में उनका आत्मविश्वास बढ़ा तो खुले रूप से थाने में प्रयोग करने लगे। लेकिन एक बात तो जरूर थी। जब वह थाने की कुरसी पर बैठकर किसी को पुलिस स्तर पर गालियाँ देते तो उनका चेहरा या तो दीवार की ओर होता या फिर खिड़की से बाहर सड़क पर चलने वालों की ओर होता। मुँह के सामने गालियाँ देने के मामले में अभी भी वह अन्य पुलिस-कर्मियों की अपेक्षा उन्नीस ही थे।

अचानक एक दिन बड़े साहब का आदेश आ गया। वह अपनी आदत के अनुसार गालियाँ देने की प्रैक्टिस कर ही रहे थे कि बड़े साहब का आदेश आया। लिफाफा देखकर मजमून भाँपने की कोशिश की और एक गाली देकर लिफाफा खोल दिया तो पता चला कि वे अब इस नगर के थानेदार नहीं रहे।

उन्होंने प्रधान आरक्षक वनस्पतिसिंह को बुलाकर इस दुःखद घटना से अवगत कराया। वनस्पतिसिंह लगभग उसी मुद्रा में खड़े रहे जैसे कहना चाह रहे हों— आना-जाना तो लगा ही रहता है। जिसका दाना-पानी इस मिट्टी में उठ गया उसे भगवान भी नहीं रोक सकता। जो होना था सो हो गया। अब बोरिया-बिस्तर बाँध लेना चाहिए। यदि हममें पुलिस का भाईचारा है तो हम तत्काल आपको घर तक पहुँचा देंगे।

थाने में सन्नाटा छा गया था। सिपाही 413 अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने थानेदार साहब के पास आया। उसने थानेदार की ओर देखा और बिल्कुल अब-तब रोने के स्टाइल में खड़ा हो गया। लेकिन वह रोया नहीं। पुलिस में भरती होने वाला आदमी रोता नहीं हमेशा दूसरों को रुलाता है। जब पहली बार सिपाही बना था तो दद्दा ने कहा था—"बेटा, पुलिस में जा रहे हो तो याद रखना पुलिस वाला अपने बाप का भी नहीं होता।"

थानेदार बोले—"हम तो जा रहे हैं। हो सके तो जाते-जाते हमारी विदाई के लिए कुछ इंतजाम कर दो।"

413 ने वनस्पतिसिंह की सलाह ली। वनस्पति ने कहा—"विदाई समारोह तो जोरदार होगा। बुलाओ साले पाकिटमारों को।"

शाम को पन्द्रह-बीस पाकिटमार लड़के थाने में आ गये। उनकी तलाशी ली गई। चार सौ तेरह रुपये पन्द्रह पैसे जमा हुए। फिर दूसरे दिन नगर के आठ-दस लोगों को दफा 151 में गिरफ्तार करने के लिए बुलाया गया और उनसे विदाई समारोह के लिए आदरपूर्वक चंदा माँगा। उन्होंने श्रद्धापूर्वक चंदा दिया। थानेदार ने आभार प्रदर्शन किया। दारू भट्ठी के पहलवानों ने खारे-मीठे का इंतजाम करवा दिया। अब केवल कमी थी तो पुष्पहार की। थानेदार बोले—"वो मैं घर से बनवा के ले आऊँगा।"

वनस्पतिसिंह ने सलाह दी कि अध्यक्षता किसी प्रतिष्ठित मुलज़िम से करवा

लेते हैं, तो इस समारोह की गरिमा बढ़ेगी। सौभाग्य से एक प्रतिष्ठित अभियुक्त उपलब्ध भी हो गये। थाने के सामने गोधूलि बेला में किराया भण्डार का पंडाल लग गया।

सबसे पहले आरक्षक ने थानेदार का परिचय दिया। कहा— "ये जो हैं बहुत सीधे थानेदार हैं... हमको कई बार कहते रहे कि पुलिस जो है बड़ी ईमानदार है... मैं हम ही बोले कि क्या कहते हो साहब जी... जो है सो हम तो इनको बोले आप तो चालू कर दो सब... लेकिन नहीं न माने... तो इनसे अच्छे थानेदार तो हमने कहीं नहीं देखे... अब तो जा ही रहे हैं... हमसे जो गलती हुई हो खाने-पीने के मामले में... तो हमको क्षमा करना... बहुत भले आदमी रहे... इतने साल यहाँ रहे फिर भी किसी को गाली तक देना नहीं जाने... हम सब पुलिस वाले दुःखी हैं... भगवान उनको अच्छा रखे... जहाँ वो जा रहे हैं वो भी इलाका अच्छा ही है... हमार मौसिया वहीं हैं... वो कहते हैं कि लोग घर में जाकर दे जाते हैं... और क्या कहें... हम तो पुलिस वाले हैं कोई नेता थोड़े ही हैं कि बोलते चले जायें... हम तो इतना ही कहते हैं कि देश-सेवा और जन-भक्ति करना है तो करो लेकिन अपने बाल-बच्चों को भी देखो... उनका पेट भी तो भरना है... हम जो थाने की तरफ से... सब सिपाही लोगोन की तरफ से और मुंशीजी की तरफ से साहब की तरक्की के लिए प्रार्थना करते हैं... वो जहाँ कहीं भी रहें बस... फूलें फलें... जय हिन्द।"

फिर नियमानुसार अध्यक्ष ने भी लगभग वनस्पतिसिंह के स्तर का ही भाषण दिया।

थानेदार साहब आभार-प्रदर्शन के लिए खड़े हुए। बोले—"मैं तो जा रहा हूँ... अब इस शहर की जनता को तुम लोगों के भरोसे छोड़ रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि वनस्पति जैसे अनुभवी लोगों के कारण लोगों को मेरा अभाव नहीं खटकेगा। मेरी आप लोगों से विनती है कि जैसा सहयोग आप लोगों ने मुझे दिया वैसा ही नये थानेदार साहब को भी देते रहें। हम पुलिस वाले भाई-भाई हैं। मिल-बाँटकर काम करोगे तो किसी को कष्ट नहीं होगा।"

विदाई समारोह सम्पन्न हुआ। राजू साउंड सर्विस का भोंगा बजने लगा— "खोल मेरा ताला... ओ चाबी वाले।"



पोस्ट मास्टर की अंतर्कथा

हमारे पोस्ट मास्टर जो हैं बिलकुल अंतर्देशीय व्यक्तित्व वाले हैं—पहला मोड़ घुटने पर, दूसरा मोड़ कमर में और तीसरा मोड़ गर्दन पर। तीनों को मिलाकर आप चिपका दीजिए तो लगेगा जैसे कोई अन्तर्देशीय पत्र लाल डिब्बे से निकलकर चाय पी रहा है। उनकी आदत है कि वह एकनॉलेजमेंट की तरह चिपक जाते हैं। मैंने उनसे कई बार कहा—"आपकी यह रजिस्टर्ड ए.डी. टाइप हरकत मुझे अच्छी नहीं लगती।"

वह कहते हैं—"पोस्ट मास्टर तो सरकारी सुदामा है। एक मुट्ठी चावल में ही प्रसन्न रहता है। जो आता है, गाली देकर चला जाता है और हम हैं कि इस जिन्दगी को मनिआर्डर की तरह जी रहे हैं।"

दिखने में हमारे पोस्ट मास्टर साहब कोई विशेष सुन्दर नहीं है। वैसे भी पोस्टल डिपार्टमेंट का सुन्दरता से क्या लेना-देना? आदमी पोस्ट ऑफिस इसलिए आता है कि अपने रिश्तेदारों को बताए कि वह कुशलपूर्वक है। बहुत हुआ तो साल छ: महीने में एक दिन यह भी बता देता है कि फलाने की शादी जम गई या फलाना अब नहीं रहा। इसके अलावा पोस्ट ऑफिस की कोई सार्थकता नहीं है। जब पोस्ट ऑफिस का महत्त्व इतना सीमित है तो पोस्ट मास्टर का सुन्दर न होना पोस्टकार्ड लिखने वाले के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता।

हम लेखकों का तो पोस्ट ऑफिस से जन्म-जन्मांतर का रिश्ता है। कम से-कम मैं तो पोस्ट ऑफिस की कृपा पर ही जीवित हूँ। हमारे यहाँ एक डॉक्टर लतीफ भी हैं। होता ऐसा है कि जब पोस्ट मास्टर की मुझ पर विशेष कृपा होती है तो उनके मेडिकल बिल मुझे भिजवा देते हैं और मेरे प्रेम-पत्र दवाखाने में डलवा देते हैं। यह

तो मिसेज लतीफ काफी समझदार है इसलिए इस पोस्टल कृपा के बाद भी डॉक्टर साहब का भला आदमी ही समझती है और डॉक्टर साहब भी इस मामले में भले हैं कि साफ-साफ कह देते हैं कि यह पत्र लतीफ धोबी का है। लेकिन जब हजार-बारह सौ रुपये का मेडिकल बिल मेरे पास आता है तो मेरी श्रीमती कहती हैं—"तुम्हारी हरकत जानती हूँ। बताओ किसका इलाज करवा रहे हो?"

मैं जब पोस्ट मास्टर साहब को उनके इस कृत्य की जानकारी देता हूँ तो वह कहते हैं—"पोस्ट मास्टर भी आदमी होता है। उससे भी भूल हो सकती है।"

मैं कहता हूँ—"मुझे पहली बार पता चला कि पोस्ट मास्टर आदमी होता है। जिस विभाग में ऊपरी कमाई की एक बूँद भी न हो, वहाँ आदमी भी क्या होगा?"

पोस्ट मास्टर साहब गोल-गोल चश्मों से अपनी गोल-गोल आँखें लगभग बाहर निकालकर कहते हैं—"हमारी तो यही कामना है कि भगवान हमें स्वर्ग में पोस्ट ऑफिस सुपरिटेंडेंट बना दे।"

मैं कहता हूँ—"ऐसा मत कहिए, हम नरक वालों का तो ख्याल रखिए। आप तो वहाँ मजे से अप्सराओं के बीच बैठे टी एम ओ करते रहेंगे और हम नरक की आग में दहकते रहेंगे। लेखक और पोस्ट ऑफिस के पुराने सम्बन्धों का कुछ तो ख्याल कीजिए। क्या आपका स्वर्ग जाना बिलकुल तय है?"

वह बोले—"पोस्ट मास्टर स्वर्ग नहीं जायेगा, तो क्या सिंचाई विभाग का साहब जायगा? इतनी ईमानदारी से लोगों की गाली खा रहे हैं तो केवल इसी दिन के लिए कि आगे चलकर हमें आराम मिलेगा।"

मैं कहता हूँ—"एक काम कीजिए, थोड़ा-बहुत भ्रष्टाचार इधर भी शुरू कर दीजिए। रसीद टिकिट जो आती है उसको दबा दीजिए। जो लेने आए उसको कहिए कि रसीद टिकिट नहीं है। मैं आपसे बीस पैसे की टिकिट पच्चीस पैसे में ले लिया करूँगा। आखिर आपके भी बाल-बच्चे हैं।"

पोस्ट मास्टर साहब उदास हो गये। बोले—"कर भी लेते लेकिन हेड आफिस वाले तीन महीने से रसीद टिकिट भेज ही नहीं रहे हैं।"

मैंने कहा—"हेड ऑफिस वालों के भी तो बाल-बच्चे हैं। मजा करने दीजिए उनको। चलिए, चाय पीकर आते हैं।"

रास्ते में मैंने उनसे कहा—"एक बात गंभीरता से कहता हूँ। आप स्वर्ग जाकर वहाँ यह आवेदन-पत्र जरूर लगा दीजिएगा कि पोस्ट ऑफिस की एक ब्रांच नरक में भी होनी चाहिए। मुझे उम्मीद है कि आपका बहुत जल्दी वहाँ ट्रांसफर हो जायेगा। आपकी पर्मनेन्सिटी स्वर्ग के लिए नहीं है। आप अप्सराओं के बीच बैठेंगे तो मुझे शर्म आयेगी।"

वह बोले—"शर्म तो मुझे भी आयेगी। आपसे तो कह देता हूँ कि चलो हाफ चाय पिलाओ, अप्सराओं से कैसे कहूँगा?"

मैंने कहा—"सच बताइए, यहाँ का पोस्ट ऑफिस आपको कैसा लगता है?"

वह बोले—"अनाथ आश्रम की तरह।"

मैं जानता हूँ उन्हें स्वर्ग का वातावरण सूट नहीं होगा। अनाथ आश्रम का आदमी हम लेखकों के साथ ही रहने का हकदार है।

चाय पीने के बाद फिर वह पोस्टल सर्विस की मुद्रा में स्थापित हो गये अपने शरीर को तीन जगह से मोड़ा और अंतर्देशीय पत्र की तरह लाल डिब्बे में घुस गये।

❑

बलिहारी गुरु आपकी

वे गुरुगंभीर थे और मेरे गुरु भी। दिखने में भी मानसिक रूप से मेरे गुरु ही लगते थे। मैंने ज्ञान पाने के लिए उन्हें गुरु बनाया था। उनके बिना ज्ञान कहाँ से पाता। वे बहुतों को बना चुके थे। इस बार मुझे बनाया।

तो, गुरु की महिमा कोई ऐसी-वैसी नहीं होती। काफी ऐसी-तैसी होती है तब शुरू होती है। और एक बार शुरू हो गयी तो जल्दी खत्म नहीं होती। अपरम्पार होती है। इसलिए उनकी महिमा संक्षेप में ही लिख रहा हूँ। वैसे तो हमेशा उनका आग्रह रहा है कि लिखने और गालियाँ देने के मामले में कभी कंजूसी मत करो। खाने की बात और है। इस मामले में वे कंजूस हैं। बहुत कम खाते हैं। कहीं छुपकर खा लेते होंगे तो मुझे नहीं मालूम। मैं उनका मुंडिन चेला हूँ। वे मेरे बाल वाले गुरु हैं। बाल वालों और बाल-बच्चे वालों की प्राइवेट लाइफ में दखल देना अच्छी बात नहीं है।

हुआ ऐसा कि गोविंददास आ गये गुरु के साथ। मेरे हाथ चरण-स्पर्श के लिए खुजाने लगे। लेकिन बड़ी दुविधा थी प्राथमिकता देने की। किसके पैरों पर गिरूँ?

गुरु बोले—गोविंददास के चरण छुओ। कल तुम्हारा इंटरव्यू है। ये साक्षात्कार समिति के अध्यक्ष हैं। इनके चरणों की रज बड़ी पावरफुल है। तुम्हें हिन्दी का मास्टर बना देगी।

मैं गोविंद भाई के चरणों में लेट गया। उनका हिन्दी प्रेम फसफसाये जा रहा था। हिन्दी प्रेम के इस चक्रवात में उनके स्कूल में एक हिन्दी मास्टर की जगह खाली हो गयी। लगे हाथ मैंने भी आवेदन दे दिया था। मुझे क्या पता था कि हिन्दी इतनी लोकप्रिय हो जायेगी कि किलो के हिसाब से उनके चरणों में आवेदन जमा हो जायेंगे।

गुरु ने कहा—रिकमंड कर दो। मास्टर बनकर हिन्दी का प्रचार करेगा।

मैंने कहा—आपके दक्षिणपंथी चलों को फ्री मे पढ़ाऊँगा। गम्भीरता म कह रहा हूँ, किसी इंटरव्यू की लालच मे नहीं।

सो गुरु भी हिन्दी के प्रति गंभीर हो गये। इस गोविंद के आगे हिन्दी के विकास के लिए मुझे पटक दिया।

बहुत देर तक मैं उनके चरणों मे पड़ा रहा तो गुरु बोले—कुछ चरणामृत मिलेगा?

गोविंद मुस्कुराये। कहा—वरी आपका चला है तो मिलेगा बाबा कैसे नहीं मिलेगा?

बलिहारी गुरु आपकी। क्या चरण थे। एम ए के बाद हिन्दी में पी एच डी करूँगा और डॉक्टर सेवा चरण त्रिपाठी को गाइड बना लूँगा।

इंटरव्यू हुआ। मै सूर, तुलसी, बिहारी, केशव, जायसी सबसे भिड़ने की मुद्रा मे आ गया था। भारतेन्दुजी सपने म आये। कहा-चिंता मत करो। कल सुबह उठकर गुप्ताजी के पास चले जाना।

मैंने पूछा—कौन गुप्ताजी?

वह बोले—गुप्ताजी को नहीं जानते? हिन्दी की मास्टरी क्या करोगे। किसी गधे से पूछ लेना कि 'भारतेन्दु साहित्य समिति' के सचिव कौन है, बस।

मैं गुप्ताजी से बिना सपने का रिफरेंस देते हुए मिला। वह बोले—इन दिनो मेरी गोविंददास से नहीं पट रही है। मेरी चिट्ठी लेकर जाओगे तो भारतेन्दु की सील देखकर ही वह तुमको रिजेक्ट कर देंगे।

मैंने कहा—मैं मास्टरी के लिए नहीं हिन्दी की सेवा-भावना से आपके पास आया था।

गुप्ताजी बोले—बड़ी ऊँची भावना है। मास्टरी मिल जायेगी तो और एक दो फुट और ऊँची हो जायेगी। इस बहाने चलो सुनो एक कविता मेरी।

उन्होंने डायरी निकाल ली। कविता चली। चलती गयी। मीलों लंबी। दूर

दूर तक फैली घास की तरह। कहीं खत्म होने का नाम ही नहीं लेती थी। पूरी तरह भारतेन्दु युगीन।

मैंने कहा—आपकी कविता में 'अंतिम हे' बोलने की बुरी आदत नहीं है, यह अच्छी बात है। हमारे उधर तो हर कवि इस आदत से लाचार है।

गुप्ताजी समझ गये। पिछले कई सालों से भारतेन्दु साहित्य के निर्विरोध सचिव बनते आ रहे थे। बोले—जाओ, इंटरव्यू देकर हिन्दी के योद्धा की तरह लौटना। तुम्हारा बाल-बाँका नहीं होगा। मेरी दुश्मनी गोविंददास से है हिन्दी से नहीं। मैं एक पत्र लिख देता हूँ। जो सज्जन तुम्हें सबसे बेवकूफ दिखें उसको यह पत्र दे देना। वही मेरा दोस्त है—गोविंद का खास आदमी। निरालाजी की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। हिन्दी समृद्ध होगी। जय हिन्दी—जय नागरी।

अब सोचता हूँ कितने उम्मीदवार मैदान में हैं गुरु पद के लिए। गुप्ताजी को गुरु मानता हूँ तो असली गुरु बुरा मान जायेंगे। बुरा मानने की इस भारतीय परम्परा से लोहा लेते हुए मैं किसान लोहा भण्डार तक आ गया। देखा तो गुरु लोहे का हथौड़ा खरीद रहे थे। मैं समझ नहीं सका कि यह प्रगतिशील विचार उनके मन में अचानक कैसे आ गया। मुझे देखकर उन्होंने हथौड़ा अपने हाथ में ले लिया। बोले—चादर लाये हो?

मैंने कहा—किसलिए?

बोले—हथौड़ा किसमें बाँधकर ले जाओगे?

बड़ी अध्यात्म की बातें कर रहे थे गुरु आज। वे जब मूड में होते हैं तो अक्सर अध्यात्म की ओर ही मुड़ जाते हैं। उनसे अधिक सवाल करो तो नाराज हो जाते हैं। फिर भी मैंने पूछ ही लिया—गुरु, यह हथौड़ा किसलिए ले जा रहे हैं? वे गुस्से में बोले—हिन्दी के सर पर मारने के लिए। तुम्हें किसने कहा था गुप्ताजी के पास जाने को?

मैंने किस्सा शुद्ध हिन्दी में बता दिया। गुरु भी भारतेन्दुजी की कद्र करते थे। कहा—उनकी आत्मा से मेरी मुलाकात कल हुई थी।

मैंने पूछा—कहाँ? तो बोले—गाइड फिल्म में। मैं अपर में था। वे लोअर में बैठे थे। नजदीक में वहीदा रहमान को देख रहे थे।

'पिया तोसे नैना लागे रे... जाने क्या हो अब आगे रे।'

तो आगे इंटरव्यू था मास्टरी का। मेरी जिन्दगी का संघर्षमय क्षण। घुमावदार रास्ता था और मेरे हाथों में गुरुजी का पत्र और गोविन्ददासजी की चरण धूल की एक पुड़िया थी। मेरे आगे एक लंबी कतार थी हिन्दी प्रेमियों की जो मेरी तरह हिन्दी की सेवा करने के लिए मरे जा रहे थे। इंटरव्यू के कमरे में बैठे गोविन्ददासजी हिन्दी की स्पर्शिका बाँट रहे थे और मैं धक्के खाता हुआ कई घंटों से लाइन में खड़ा था। हिन्दी की दुर्दशा देखकर अश्क आ गये आँखों में।

कोई तीन घंटे बाद मेरा नंबर आया। नंबरी लोगों का नंबर जरा देर से ही आता है। गोविन्ददासजी ने मेरी ओर देखा और अपना दाहिना पैर खुजाने लगे। मैंने अपनी नजर हिन्दी साहित्य में गुंडों के बीच घिरी हुई नायिका की तरह झुका ली। वे समझ गये। अहिन्दीभाषी होकर हिन्दी की सेवा कर रहे थे। पूछा—तुम्हारा बाप क्या करता है?

मैंने सोचा था महादेवी पर कुछ पूछेंगे। उनके आँसू मेरी जुबान पर थे। मैंने कहा—ठेकेदारी करता है। ईंट बनाता है।

वह बोले—अच्छा-अच्छा, तुम ईंट वाला का लड़का है क्या? वो तो हमारा पक्का दोस्त है ना। हम उसके साथ बहुत रमी खेला। ईंट नई बनाता, बड़ा प्राफिट वाला धंधा है।

मेरी इच्छा ईंट का जवाब पत्थर से देने की हुई लेकिन चुप रह गया क्योंकि फादर कभी-कभी पत्थर की खदान का भी ठेका ले लेते थे।

फिर पाँच मिनट तक शून्य काल रहा।

गोविंददासजी ने इंटरव्यू लेने वाले हिन्दी प्रेमियों के कान में कुछ कहा और मैं हिन्दी का आदर्श मास्टर हो गया। इंटरव्यू में आने वाले अनेक हिन्दी प्रेमी निराश हो गये। मैंने अकेले हिन्दी के विकास का बीड़ा गुरुजी की कृपा से उठा लिया। मेरा हिन्दी के लिए बस इतना ही योगदान है। बीड़ा सामने था तो उठा लिया। कोई गलती तो नहीं की। गुरु का आभारी हूँ कि उन्होंने सही गोविंद बताकर मुझे हिन्दी सेवा का अवसर प्रदान किया। अब रोज उनको विलय शुद्ध हिन्दी में स्मरता हूँ। मुखर्जी का पत्र और भारतेन्दुजी का सपना अभी भी मेरे पास सुरक्षित है। दरअसल इंटरव्यू लेने वालों में कोई भी हिन्दी प्रेमी सज्जन मुझे ऐसा न दिखा जो इस पत्र को ग्रहण करने की पात्रता रखता हो। सभी एक जैसे लग रहे थे। किसे देता!

और सच बात तो यह है कि पत्र की जरूरत ही नहीं पड़ी। गोविंददासजी के चरण ही काफी थे हिन्दी सेवा के लिए।



पतझड़ के बहाने

अपने देश मे बजट और पतझड़ आगे-पीछे आते हैं। कभी ऐसा होता है कि उधर वित्तमंत्री ने कोई नया टैक्स लगाया था, और इधर पतझड़ ने दरख्त से कहा—अबे ओये, सम्हल जा तेरा बाप आ गया साले मटियामेट करके धर दूँगा।

दरख्त भी जानता है कि उसे साल मे एक बार तो झड़ना ही झड़ना है। वह यह भी जानता है कि कितने भी आवेदन वह इस पतझड़ को देगा कि उसकी माली हालत इस साल ठीक नहीं है, कि वह पत्तों से ऑक्सीजन भी खींच नहीं पाया है, कि राह चलने वालो को वह छाया भी नही दे पाया है या कहेगा कि कि दादा इस बार कुछ सब्सीडी दे दो, लेकिन पतझड़ जो है वो मानने वाला नहीं है। वह आयेगा और उसे झड़ाकर इस तरह चला जायेगा, जैसे यह उसके नैतिक धर्म मे शामिल हो और अपनी सार्थकता सिद्ध करने के लिए उसका ऐसा करना नितांत आवश्यक हो।

इसीलिए इस बार जब दिल्ली, भोपाल से होता हुआ पतझड़ इस दुबले-पतले दरख्त के पास आकर खड़ा हुआ, तो दरख्त ने आत्मसमर्पण की टोन में कहा—आइये पिताजी, हम कब से आपकी प्रतीक्षा मे खड़े हैं कहिए तो हम अभी झड़ जाये या कहे तो दो-चार दिन रुक जाये।

होता यह भी है कि अपने देश की चिड़िया अंडे देना भी जानती है। उसकी एक बहुत बुरी आदत यह होती है कि वह तिनके जमा करके घोंसला बनाती है। इस दरख्त पर जो चिड़िया थी वह तिनको के साथ परिवार नियोजन के पोस्टर का एक टुकड़ा भी ले आई थी, लेकिन इससे क्या फायदा? हरामजादी ने चार अंडे दे दिये एक

साथ और फटाफट फाड दिये चार बच्चे। मार्च महीने मे बच्चे फोडेगी तो बच पायगी पतझड से? हॉ, मै आपसे ही पूछ रहा हूँ। व्यग्य पढ रहे हो और कल के दिन 'आर्गलिखी' मे दो लाइन की चिट्ठी थमा दोगे कि ललीफ घोषी अपनी छवि का ख्याल करें। अरे यार ऐसी-तैसी मे गई छवि हम कहते हैं कि इन बच्चों का क्या होगा जब यह पतझड़ दरख्त के सारे पत्ते झडा देगा? क्या घोसला बच पायेगा? अब तुम व्यग्य के जागरूक समीक्षक हो तो बताओ व्यग्य आगे कैसे बनगा? दरख्त बनकर पतझड को पिताजी कह लोगे मरे साली चिडिया और मरे साले चिडिया के बच्चे , इधर पतझड गया और इधर तुमने धडाधड़ नई कोंपलें उगाकर अपने आपको एडजस्ट कर लिया। तिनकवाली चिडिया की बात जिस दिन सोचोगे, तब पता चलेगा गुरु कि व्यग्य कहाँ से पैदा होता है।

मै व्यग्य को आगे बढाने की सोच ही रहा था कि मेरे एक समीक्षक मित्र आ गये—बोले—बीडी पिलाओ यार।

मैंने कहा—हिन्दी समीक्षा की दुर्गति क्यों बना रहे हो? एकदम बीडी मे उतर गये?

वे बोले—हम उतरे नहीं है भइया हमे उतार दिया है इन व्यापारियो ने सिगरेट मार्केट से गायब है बजट आ रहा है ना

मैने छोटे राजा का बडल जेब से निकाला। दो बीडियाँ एक साथ सुलगाकर उस हवा मे लहराया और उनकी ओर बढाते हुए कहा—तो टैक्स लग जायेगा इस साल सिगरेट पर?

—बिल्कुल लगेगा और तबियत से लगेगा सरकार विकास के काम किससे करेगी देश मे? सरकार भी जानती है कि सिगरेट पर कितना भी बड़ा 'स्वास्थ्य के लिए हानिकारक' का लेबल लगा दे, हिन्दुस्तानी आदमी आठ-दस करोड़ दे ही देंगे सरकार को सिगरेट के नाम पर।

—याने कि तुम नकारात्मक सोच वाले हो। मैं कहता हूँ कि यह क्यो नहीं सोचते कि तुम अपनी एक सिगरेट मे देश में एक पुल बना रहे हो—सूखे खेतो के लिए पाँच सिगरेटे फूँककर सिचाई योजना तैयार कर रहे हो। व्यापारियो को क्यो गाली देते हो? आखिर उनके भी तो बाल-बच्चे हैं। मार्च लगेगा तो फल्ली तेल तो बढेगा

ही बढ़ेगा। बेचारा अपने बच्चों का भविष्य कैसे खिला पायेगा ये नहीं सोचते? जब लेखन में ईमानदारी नहीं रही तो व्यापार में कहाँ से रहेगी।

जैसा कि हिन्दी समीक्षकों की आदत होती है, वे तुनक गये। बोले—शर्म नहीं आती, अपने को व्यंग्यकार कहते? व्यवस्था के तलवे चाट रहे हो? सरकार की वकालात कर रहे हो। व्यापारियों के पक्षधर हो गये हो?

उन्होंने मेरे सामने एक साथ कई प्रश्न दाग दिये। यदि उनको छोटे गंजे बीड़ी की कृपा से खाँसी नहीं आती, तो वे दो-चार और इसी तरह के प्रश्न दागते। सिगरेट पीनेवाले समीक्षकों को यह सुविधा रहती है कि उन्हें खाँसी नहीं आती और इसलिये वे धाराप्रवाह हिन्दी लेखकों की रचनाओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए धाराप्रवाह बोलते जाते हैं। मेरा विचार तो यही है कि हिन्दी के समीक्षकों को बीड़ी ही पीना चाहिए। इससे हिन्दी बेचारी का उद्धार तो होगा ही, हम जैसे कई व्यंग्य लेखक तर जायेंगे।

मैं यह भी जानता था कि अब वे व्यंग्य को विधा मानने पर एक लम्बा भाषण भी देंगे और यह भी बतायेंगे कि मुझे व्यंग्यकार होने के नाते क्या लिखना चाहिए? ये बात और है कि वे व्यंग्य लिखना नहीं जानते। उनका कहना भी सही है। हिन्दी समीक्षक को क्रिएटिव लेखन से क्या लेना-देना। उसका काम है समीक्षा करना। इसलिए आप लाख सिर पटक लीजिए वे यह सिद्ध कर देंगे कि आज का व्यंग्य-लेखन नकारात्मक है शोषित वर्ग का पक्षधर नहीं है, और सबसे अंतिम और अच्छी आदत हिन्दी के समीक्षकों में यह होती है कि वे दो-चार विदेशी लेखकों के नामों का उल्लेख अपनी बातों के दौरान जरूर करते हैं।

बीड़ी का ठस्का बंद हुआ तो वे बोले—स्टेट्स में रखो, सरकार खाने की वस्तुएँ अपने देश में बेची जा रही कीमत से कम दाम पर देती है। यहाँ चावल चार रुपये किलो है तो आप निश्चित मानिये कि अमेरिका में इससे कम दाम में ही मिलेगा। सरकार नहीं चाहती कि नेसेसिटीज पर कोई टैक्स लगे और एक अपनी सरकार है। हम चाहे सूखकर काँटे हो जायें, लेकिन टैक्स लगेगा तो रोजमर्रा की चीजों पर साल में एक बार झड़ा के रख देती है हमें।

झड़ाने का उल्लेख हुआ तो मुझे याद आया कि पतझड़ पर मैंने जो व्यंग्य शुरू किया था, वह तो अधूरा ही रह गया है।

मैंने कहा—गुरु मुझे बताओ कि यह व्यंग्य आगे कैसे बढ़ेगा?

वे बोले—दिखाओ हम भी देखें कि आखिर तुमने क्या तीर मार दिया है इस व्यंग्य में।

मैंने चार पैराग्राफ्स जो अभी थोड़ी देर पहले लिखे थे, उनके हाथों में दे दिये उन्होंने उसे पढ़ा और बोले—यार, एक बीड़ी और पिलाओ।

मैं समझ गया कि बीड़ी के बहाने वे अपना व्यंग्य साहित्य का पाण्डित्य मुझ पर मारने की भूमिका बना रहे हैं। वे व्यंग्य पर अपनी बात शुरू करने हो वाले थे कि फिर छोटे राजा की कृपा से उन्हें खाँसी आ गई। बोले—साली बीड़ी के साथ यही तो दिक्कत है ऐन वक्त पर गले को खरखराकर पूरी वैचारिकता को नष्ट कर देती है लेकिन क्या करें, बजट वाले इस देश में इसका कोई विकल्प भी तो नहीं है।

मैंने कहा—मुझे यह बताइये कि इस व्यंग्य को आगे कैसे बढ़ाया जाये? इस चिड़िया पर आकर मेरी कलम अटक गई है।

वे बोले—तुम बेसिकली गलत हो इस व्यंग्य में तुम्हारे सारे सिम्बल आई मीन प्रतीक गलत हैं अब जो व्यंग्य का ट्रीटमेंट होगा वह पूरे का पूरा वेग क्या कहते हैं, उसमें गड्डमड्ड हो जायेगा इसलिये तुम एक काम करो, इस व्यंग्य को नष्ट कर दो। तुमने जो पतझड़ की फैंटसी से बात शुरू की है वह भी पूरी तरह गलत है पतझड़ को निम्न मंत्रालय से कनेक्ट करना गलत है और खासकर उस समय यह बिल्कुल गलत हो जाता है जब दरख्त यह कहता है कि 'पिताजी, कहिये तो हम अभी झड़ जायें' व्यवस्था के प्रति समर्पण का यह समझौता तुम्हारी लेखकीय प्रतिबद्धता को संदिग्ध कर देता है। हमें संघर्ष करना है इस व्यवस्था से यह नहीं कि पतझड़ आया तो हम झड़ गये इसे आगे ही बढ़ाना है तो इस तरह बढ़ाओ कि दरख्त पतझड़ के सामने सीना तानकर खड़ा हो गया इससे एक वर्ग संघर्ष की थ्योरी तुम्हारे व्यंग्य में स्टेब्लिश होगी।

मैंने पूछा, फिर क्या होगा? क्या उसके पत्ते बच जायेंगे इस मार से?

वे बोले—बचें या न बचें यह सोचना लेखक का काम नहीं है लेखक का काम है संघर्ष की भूमिका का निर्माण करना और रही बात चिड़िया की, तो तुमने परिवार नियोजन के प्रचार की भावना के कारण उसे एक असहाय घरेलू बनाकर रख

दिया है। भारतीय नारी के प्रति तुम्हारे व्यंग्य में यह भावना एकदम पुरुष है। चिड़िया का काम है चोंच मारना। पत्थर से टकराकर लहूलुहान हो जाना। ये क्या कि तुमने उसे अंडे और बच्चों में उलझा दिया। सार्थक व्यंग्य संवेदना से नहीं बनता।

मैंने पूछा— फिर उन बच्चों का क्या होगा? इस पतझड़ में क्या होगा उन बच्चों का भविष्य?

वे बोले—एक बीड़ी और पिलाओ।

मैं समझ गया कि बीड़ी के बहाने फिर वे अपना पांडित्य झाड़ने की भूमिका बनायेंगे और यह पतझड़ अधूरा ही रह जायेगा।

❑

अपन तो लेखक हैं

पहले लेखक के बारे में जान लीजिए फिर चाहे व्यंग्य बने या न बने।

कद छोटा। बाल बढ़े हुए। चेहरे पर दाढ़ी। लम्बा मोटे कपड़े का कुरता। सकरी घेर का अलीगढ़ी पाजामा। कन्धे पर लटकता झोला। झोले में कुछ पुरानी पत्रिकाएँ, मुड़े-तुड़े फुलस्केप कागज। आँख मिचमिचाने की आदत। चाल ठीक-ठीक, हर चीज को उठाकर देखने की आदत। उनके शब्दों में यह 'आब्जरवेशन'। कोई भी बात प्रारम्भ करने के पहले कहना—'अपन तो लेखक हैं ''

कहानी लिख कर मेरे पास लाए थे। बोले, ''भई, अपन तो लेखक हैं कल देखा और आज लिखा।''

मैंने पूछा ''क्या देखा?''

वह बोले, ''वही, जो सब देख रहे हैं। लेकिन मैंने कहा न कि अपन तो लेखक हैं इस तरह किसी आदमी का खून हो जाए तो अपनी संवेदना तो जागेगी ही।''

मैंने कहा, ''तो आपकी संवेदना जाग ही गई।''

वह बोले, ''हाँ। बिल्कुल जाग गई। सेंट परसेंट जाग गई। भई, लेखक हैं तो अपने पास जगाने के लिए संवेदना के अलावा और है ही क्या?''

उन्होंने अपनी आँखें मिचमिचाईं और मेरे टेबल पर पड़ी डाट-पेन उठा ली। उसे पहले देखा और दो-चार बार ऊपर का बटन दबाकर रिफल अन्दर-बाहर किया

और फिर उस टेबल पर रख दिया। टेबल पर अखबार रखा था। उसे भी उठाया। इलट पलट कर देखा और फिर उसे अपनी जगह पर रख दिया।

मैंने कहा, "फिर क्या हुआ?"

वे बोले, "बस, पिस दी रात को एक कहानी। अपन तो लेखक हैं, अपन को कुछ दिखना भर चाहिए।"

"जिसका खून हुआ वह कौन था? मेरा मतलब है हिन्दू था या मुसलमान?"

"आदमी था जी। अपन को क्यों हिन्दू-मुसलमान के लफड़े में पड़ना। इन्सान पहले आदमी होता है। अपन तो लेखक हैं, इसलिए आदमी की बात करते हैं हिन्दू-मुसलमान के चक्कर में वे रहते हैं जिन्हें अपनी नेतागिरी चलानी है। अपन तो लेखक हैं, एक आदमी को मरते हुए देख भर लें, पचास कहानियाँ लिख देंगे अलग अलग ऐंगल से। हिन्दू या मुसलमान मरेगा तो कहानी में उतनी जान नहीं होगी जितनी एक आदमी के मरने पर होगी।"

"खून क्यों हो गया आदमी का?"

"अपन को इस लफड़े में क्यों पड़ना? खून तो रोज हो रहे हैं। कारण कुछ भी हो, अपनी संवेदना जगाने के लिए इतना ही काफी है कि खून हो गया। होगा कोई चक्कर। कोई रंजिश होगी। रंजिश के बिना खून तो नहीं होता ना। लेकिन अपन तो लेखक हैं, रंजिश नहीं बतायेंगे। लिखेंगे कि आदमी बिल्कुल बेकुसूर था। जैसा कि आम आदमी होता है। न उसका समाज से लेना-देना और ना राजनीति से। अपने रास्ते पर जा रहा है। किसी ने उसका खून कर दिया। याने कि कहानी में व्यवस्था की जिम्मेदारी है। आदमी सुरक्षित नहीं है, बस।"

"किसी आतंकवादी ने खून कर दिया होगा?"

"अपन क्यों कहें कि खून करने वाला आतंकवादी था? भई, अपन तो लेखक हैं। कोई कमिटमेंट की बात क्यों करें? आतंकवादी हो तो ठीक और न हो तो ठीक।"

"याने कि आपका भी डर है आतंकवादियों की हिट-लिस्ट में।"

"हाँ बिल्कुल डर है। बाल-बच्चे हैं, परिवार की जिम्मेदारी है। भई हम

तो इतना जानते हैं कि हमें साहित्य को समृद्धि देना है। हमारी कहानी पढ़ कर किसी आतंकवादी के दिमाग में यह बात जम गई कि हम उनके खिलाफ हैं तो अपना नम्बर लग जायेगा। और जब नम्बर लग गया तो हम साहित्य को कैसे समृद्धि देंगे? इसलिए सारी जिम्मेदारी व्यवस्था पर डालो। अपन बिल्कुल सेफ। भई अपन तो लेखक हैं, पहले अपनी सेफ्टी देखेंगे। अपना काम है संवेदना को जगाए रखना। हमने जगा दी और लिख दी कहानी। बाकी अगला जाने।''

''फिर क्या हुआ?''

''एक गोली चली कहीं से। आदमी को लगी। वह गिर पड़ा सड़क पर। छटपटाने लगा। खून बहने लगा सड़क पर। सड़क लाल हो गई। बस, हमने देखा। हमारी संवेदना जाग गई।''

''गोली किधर से चली?''

''सच बतायें, हमने नहीं देखा। हम तो सड़क पर बिखरा हुआ खून देख रहे थे। अपन तो लेखक हैं, इसलिए खून की बात करेंगे। आदमी का खून। कितना सस्ता हो गया है इस देश में? अपने पास दो ही बातें हैं, आदमी और देश। अपनी संवेदना का क्षेत्र इतना ही है।''

''भीड़ जमा नहीं हुई?''

''हुई थी। लोग मरने वाले को पहचानने की कोशिश कर रहे थे। किसी ने कहा कि नौकरी करता है। किसी ने कहा, अपन शहर का नहीं है।''

''आपने पहचाना उसे?''

''भई, अपन तो लेखक हैं। व्यक्ति से अपन को क्या लेना-देना। कोई भी हो अपन तो बात को व्यापक सन्दर्भ में लेते हैं।''

''लेकिन जब भीड़ में उसे पहचानने की बात चल रही थी तो आपको ध्यान देना था।''

''भीड़ व्यक्ति को पहचानती है, आदमी को नहीं। भीड़ की पहचान कभी प्रामाणिक नहीं होती। भीड़, भीड़ होती है। भीड़ की दृष्टि लेखक की दृष्टि से हमेशा अलग होती है। व्यक्ति को पहचानने या नहीं पहचानने में हमेशा भीड़ का एक स्वार्थ होता है। अपन तो लेखक हैं इस भीड़ के लफड़े में क्यों पड़ें।''

"जिसने गोली चलाई उसे पहचाना भीड ने?"

"हम क्या जाने। कह दिया ना कि भीड मे हम हमेशा दूर ही रहते हैं।

"आपने पहचाना गोली चलाने वाले को?"

"हम क्यों पहचाने? उसे पहचान लेते तो पुलिस हमें परेशान करती। थाने मे बुलाती, पूछताछ करती। हमारा टाइम वेस्ट होता। भई, अपन तो लेखक है, थाना कचहरी से दूर ही रहते हैं। हम तो बस सडक पर बिखरा खून ही देख रहे थे। खून को पहचान लिया हमने कि यह आदमी का ही खून है। इतने में तो एक जानदार कहानी बन जाती है।"

फिर उन्होंने झोले मे से कुछ कागज निकाले। बेतरतीब कागजों को समेटा और उसका क्रम जमाते हुए अपनी रचना प्रक्रिया पर बोले, "भई, अपन तो लेखक है टुकडो में कहानी लिखते हैं और बाद मे उसकी एडिटिंग कर लेते हैं। अब यही कहानी देखो हमने बात इस तरह शुरू की है कि हम बाजार जाने के लिए थैला माँग रहे हैं अब तुम इस झोले को मामूली मत समझो। झोला एक प्रतीक है देश का। इस झोले मे बहुत कुछ है। आदमी की पूरी जिन्दगी यह झोला भरने में बीत जाती है। यह झोला ही आम आदमी का पेट है। अब हमने सोचा कि पहले झोले पर दो तीन पेरेग्राफ लिख डालो। इसे किसी भी कहानी के आगे जोड देंगे।"

मैं झोले पर कुछ कहना चाहता था। वे समझ गए। बोले "ये पूछापाछी बाद मे करना। इससे हमारा कान्सन्ट्रेशन खराब होता है तो देखो दूसरा पोर्श हम सडक से चले जा रहे है। बायी तरफ चल रहे हैं। हाथ मे झोला है। अब तुम इस बायीं तरफ को गभीरता से लो। चलने का भी गंभीरता से लेना है। कहानी मे एक-एक शब्द बड़ा मूल्यवान होता है। हाँ, हम चल रहे हैं सामने देखते हुए। सोच भी रहे हैं

मैंने पूछा, "क्या सोच रहे हैं?"

वे बोले, "वही जो सभी सोच रहे है आजकल। यह 'सोच' शब्द सकेत हैं पाठक को विचार देने के लिए मैंने जान-बूझ कर इसे कहानी में डाला है। सामान्य पाठक इसका अर्थ यही लगायेगे कि लेखक सोच रहा है कि आज कौन-सी सब्जी खरीदी जाए। सब्जी के भाव इतनी तेजी से बढ रहे है कि सोचना पड़ता है। अब जो प्रबुद्ध पाठक होंगे वह सोचेंगे कि लेखक देश के बारे मे सोच रहा है। बायीं तरफ भी

चल रहा है और सोच भी रहा है कि इन वर्तमान स्थितियों में विकल्प का क्या रास्ता है। झोला तो मैंने पहले ही समझा दिया है। अब यह विकल्प है पेट, देश और आदमी की सोच के सन्दर्भों का।''

वे थोड़ी देर रुके। आँखें मिचमिचाने लगे। मुझे लगा कि वे जरूर देश के बारे में ही सोच रहे हैं।

थोड़ी देर के बाद बोले ''भई, अपन तो लेखक हैं। आ गये चौराहे पर। अब तुम चौराहे को मामूली मत समझना। यही चौराहा तो कहानी में असली है। हम किस रास्ते पर मुड़ना है, कौनसा रास्ता सही है। हम खड़े हो गये चौराहे पर। फिर सोच रहे हैं। इतने में खून हो गया। हमने सोचा कि अब बात बन गई। जगाओ अपनी संवेदना। सो हमने तुरन्त संवेदना को जगाया। सब्जी खरीदी और घर आ गये और लिख दी यह कहानी। किसी भी बड़ी पत्रिका में छपेगी तो दो सौ रुपये मिल जायेंगे। भई अपन तो लेखक हैं, अपन को और चाहिए भी क्या एक कहानी के दो सौ बन जाएँ बस।''

मैंने कहा, ''याने कि उस बेकुसूर आदमी के खून की कीमत सिर्फ दो सौ रुपया है?''

वे बोले, ''यह खून की कीमत नहीं है। यह हमारी संवेदना की कीमत है जो आदमी के खून से जुड़ी है। अपने देश में हजारों लोग रोज मर रहे हैं लेकिन संवेदना किसके मन में जाग रही है? भई, अपन तो लेखक हैं जब मरने वाले के प्रति संवेदना जगा रहे हैं तो क्या दो सौ रुपये के भी हकदार नहीं हैं? भई, अपन तो लेखक हैं और इतना जानते हैं कि अपने यहाँ आदमी के इस खून से अच्छी रकम बन सकती है। जब इतने लोग इस खून को भुना रहे हैं तो लेखक ने क्या बिगाड़ा है?''

उन्होंने अपनी कहानी को झोले में वापस डाला और आँखें मिचमिचाते हुए सड़क पर आ गये।

व्यंग्य बना? जी हाँ, मैं आपसे ही पूछ रहा हूँ।

❑

सीनियर का बसन्त

जिरहगिरी के पेशे में आने के बाद लोगों को उनके पसीने से भी 'लीगल फ्लेवर' आने लगी थी। इस महक से वे कई लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। उनकी जेबें अधिनियमों और संहिताओं से ठसाठस भरी रहती थीं। उन्होंने जब मे हाथ डाला नहीं कि आप समझ जाइए कि वे कुछ वैधानिक आपत्तियाँ निकाल कर आप पर फेंकेंगे और आपका कूट-परीक्षण किए बिना आपको नहीं छोड़ेंगे। प्रक्रिया में जब तक वे आपको पूरी तरह से कूट नहीं लेंगे उन्हें आत्मिक संतोष नहीं मिलेगा।

मैं तो उन्हें सीनियर ही कहता था क्योंकि वे मुझसे हर मामले में वरिष्ठ ही थे। उनकी खुराक भी मुझसे अधिक थी। जब तक वे आठ-दस नजीरें खा नहीं लेते थे, उन्हें डकार नहीं आती थी। यही उनका रोज का भोजन था। मेरी स्थिति यह थी कि मैं एक केस-लॉ पढ़ता था तो मेरा पेट गड़गड़ाने लगता था।

वे मुझे हम-पेशा न समझ कर मित्र ही समझते थे और इसका कारण यह था कि जिरहगिरी के अतिरिक्त उन्हें साहित्य से भी लगाव था। वे कविताएँ लिखते थे। विशेषकर होली, दीवाली, बसंत पंचमी के अवसर पर तो वह लिखते ही थे। केवल लिखते ही नहीं थे, अपनी रचनाएँ छपने के लिए भेजा भी करते थे। कविताओं के लिए उन्होंने उपनाम रखा था—जिरहगीर।

इस बार जब पत्रिकाओं ने बसन्त अंक की घोषणा की तो वे कविता लिखने के लिए छटपटाने लगे। किसी की जमानत का आवेदन-पत्र दे रहे हैं तो उसमें भी प्रार्थना

वाले हिस्से में एक मुक्तक मार ही देते थे। यह तो उनका टाइपिस्ट काफी समझदार था कि इस प्रेयर का गद्य में रूपान्तर कर देता था। बलवे के एक मामले में तो उन्होंने पूरे तर्क कविता में ही दिए। बाद में जो आदेश पारित हुआ, वह भी काफी काव्यमय ही था। जिन लोगों के लिए उन्होंने जिरह की थी, वे जब वापस लौटेंगे तो जरूर कोई महाकाव्य लिखेंगे जिसका शीर्षक होगा—'अधे सफर की कविताएँ' या प्रगतिशील ढँग से लें तो होगा 'ये सलाखें क्यों नहीं बोलतीं?'

एक दिन मुझसे कहने लगे—बसन्त अंक के लिए तुमने अपनी रचना भेज दी या नहीं?

मैंने कहा—कहाँ सीनियर मूड ही नहीं बन रहा है इन नकबजनों से पीछा छूटे तो कुछ साहित्य-सेवा भी करें।

वे बोले—अपराध-प्रवृत्ति मानवीय प्रक्रिया है। जब तक आदमी रहेगा, अपराध रहेंगे। हमें देखो, इतना व्यस्त रहने के बाद भी हम तीज-त्यौहारों पर कविता लिख ही लेते हैं। इन चोर-डकैतों के पीछे तुम क्यों अपना साहित्यिक कैरियर खराब कर रहे हो।

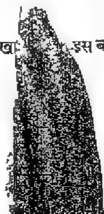
इसके बाद उन्होंने जेब में हाथ डाला मैंने समझा कि वे इलाहाबाद 1977 या मद्रास 1952 निकालेंगे लेकिन इसके बदले उन्होंने एक समंस निकाला जिसकी पीठ पर उन्होंने बसन्त की एक कविता लिखी थी।

फिर वे कुछ गंभीर हुए। बोले—सुनो।

वरिष्ठ होने के नाते वे मुझे प्रेरणा देने के लिए ही कविता सुना रहे थे। मुझमें इतना साहस नहीं था कि उनकी कविता की समीक्षा कर सकूँ। फिर भी जब उन्होंने कविता सुनाना प्रारम्भ किया तो मुझे लगा कि जरूर वे किसी को आज महाकाव्य लिखने के लिए धँसाएँगे।

उन्होंने पहले समंस को उलट-पुलट कर देखा। इस बार बसन्त पर एक अछूता ऐंगल निकाला है मैंने, सुनो—

किसी कारागार से मुक्त होकर
जब तुम आते हो बसन्त



सीनियर का बसन्त

जिरहगिरी के पेशे में आने के बाद लोगों को उनके पसीने से भी 'लीगल फ्लेवर' आने लगी थी। इस महक से वे कई लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। उनकी जेबें अधिनियमों और संहिताओं से ठसाठस भरी रहती थीं। उन्होंने जेब में हाथ डाला नहीं कि आप समझ जाइए कि वे कुछ वैधानिक आपत्तियाँ निकाल कर आप पर फेंकेंगे और आपका कूट-परीक्षण किए बिना आपको नहीं छोड़ेंगे। प्रक्रिया में जब तक वे आपको पूरी तरह से कूट नहीं लेंगे, उन्हें आत्मिक संतोष नहीं मिलेगा।

मैं तो उन्हें सीनियर ही कहता था क्योंकि वे मुझसे हर मामले में वरिष्ठ ही थे। उनकी खुराक भी मुझसे अधिक थी। जब तक वे आठ-दस नजीरें खा नहीं लेते थे, उन्हें डकार नहीं आती थी। यही उनका रोज का भोजन था। मेरी स्थिति यह थी कि मैं एक केस-लॉ पढ़ता था तो मेरा पेट गड़गड़ाने लगता था।

वे मुझे हम-पेशा न समझ कर मित्र ही समझते थे और इसका कारण यह था कि जिरहगिरी के अतिरिक्त उन्हें साहित्य से भी लगाव था। वे कविताएँ लिखते थे। विशेषकर होली, दीवाली, बसन्त पंचमी के अवसर पर तो वह लिखते ही थे। केवल लिखते ही नहीं थे, अपनी रचनाएँ छपने के लिए भेजा भी करते थे। कविताओं के लिए उन्होंने उपनाम रखा था—जिरहगीर।

इस बार जब पत्रिकाओं ने बसन्त अंक की घोषणा की तो वे कविता लिखने के लिए छटपटाने लगे। किसी की जमानत का आवेदन-पत्र दे रहे हैं तो उसमें भी प्रार्थना

वाले हिस्से में एक मुक्तक मार ही देते थे। यह तो उनका टाइपिस्ट काफी समझदार था कि इस प्रेयर का गद्य में रूपांतर कर देता था। बलवे के एक मामले में तो उन्होंने पूरे तर्क कविता में ही दिए। बाद में जो आदेश पारित हुआ, वह भी काफी काव्यमय हो था। जिन लोगों के लिए उन्होंने जिरह की थी, वे जब वापस लौटेंगे तो जरूर कोई महाकाव्य लिखेंगे जिसका शीर्षक होगा—'अंधे सफर की कविताएँ' या प्रगतिशील ढँग से लें तो होगा 'ये सलाखें क्यों नहीं बोलतीं?'

एक दिन मुझसे कहने लगे—बसन्त अंक के लिए तुमने अपनी रचना भेज दी या नहीं?

मैंने कहा—कहाँ सीनियर...मूड ही नहीं बन रहा है...इन नकबजनों से पीछा छूटे तो कुछ साहित्य-सेवा भी करें।

वे बोले—अपराध-प्रवृत्ति मानवीय प्रक्रिया है। जब तक आदमी रहेगा, अपराध रहेंगे। हमें देखो इतना व्यस्त रहने के बाद भी हम तीज-त्यौहारों पर कविता लिख ही लेते हैं। इन चोर-डकैतों के पीछे तुम क्यों अपना साहित्यिक कैरियर खराब कर रहे हो।

इसके बाद उन्होंने जेब में हाथ डाला, तो मैं समझा कि वे इलाहाबाद 1977 या मद्रास 1952 निकालेंगे लेकिन इसके बदले उन्होंने एक समस निकाला जिसकी पीठ पर उन्होंने बसन्त की एक कविता लिखी थी।

फिर वे कुछ गंभीर हुए। बोले—सुनो।

वरिष्ठ होने के नाते वे मुझे प्रेरणा देने के लिए ही कविता सुना रहे थे। मुझमें इतना साहस नहीं था कि उनकी कविता की समीक्षा कर सकूँ। फिर भी जब उन्होंने कविता सुनाना प्रारम्भ किया तो मुझे लगा कि जरूर वे किसी को आज महाकाव्य लिखने के लिए धँसाएंगे।

उन्होंने पहले समस को उलट-पुलट कर देखा। बोले—इस बार बसन्त पर एक अछूता ऐंगल निकाला है मैंने, सुनो—

किसी कारागार से मुक्त होकर
जब तुम आते हो बसन्त

मैं काँप जाता हूँ भय से
कैसे झेल पाऊँगा तुम्हें
मेरी संवेदनाओं के फूल
भूल गए हैं खिलना
मेरी प्रार्थना है बसन्त
तुम
अकेले में मत मिलना
कालिन में, कूलन में, कछारन में
मत बगरना मेरे भाई
यहाँ कुछ भी नहीं रहा तुम्हारे लिए
लोगों ने
चारों तरफ नाजायज कब्जे कर लिए हैं
जहाँ होनी थी कभी
चमेली, मोगरे और गुलाब की क्यारियाँ
छोले-भटूरे वालों ने ठेले लगा लिए हैं अपने
मैं काँप जाता हूँ भय से
तुम्हारे स्वागत के नाम से काँप जाता हूँ मैं
क्या जवाब दूँगा तुम्हें
जब तुम मेरा कूट- परीक्षण करोगे
मेरी मानोगे?
मरने दो हरियाली को
झरने दो फूलों को
मस्ती के माहौल को दूर भगा दो,
ओ भाई बसंत
इनके खिलाफ स्टे का आवेदन लगा दो।

मेरी ओर देखकर वे बोले—कैसी लगी? कहाँ भेज दूँ छपने? किसी बड़ी पत्रिका में चलेगी?

मैंने कहा—सीनियर, कविता इतनी जानदार है कि कहीं भी छप जाएगी।

वे बोले—किसी पत्रिका का नाम भी बताओ मुझे तो आजकल की पत्र-पत्रिकाओं का टेस्ट ही नहीं मालूम। अपने जमाने में तो सरस्वती और चाँद ही निकलती थी। सच कहूँ, इस पेशे में आकर मेरी प्रतिभा सड़ गई है, दूसरी लाइन में चला गया होता तो आज तक मुझ पर कोई शोध प्रबन्ध हो जाता।

मैं उनके सामने कुल मिलाकर जूनियर ही था। मैंने अपनी राय ज़ाहिर करते हुए कहा—इसे 'रेवेन्यू निर्णय' में क्यों नहीं भेज देते। रेवेन्यू लॉ पर इससे बढ़िया हिन्दी साहित्य में कोई कविता नहीं हो सकती।

वे बोले—साहित्य की इतनी अच्छी पकड़ होने के बाद तुम बिरहख़ोरी के पेशे में क्यों सड़ रहे हो मेरी मानो, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है दूसरी लाइन में चले जाओ।

उसके बाद उन्होंने जेब में हाथ डालकर फिर एक समोसा निकाला तो मैं समझ गया कि इस बसन्त पर अपने सीनियर की तैयारी पूरी है।



मूर्ख होने का प्रमाणपत्र

अब हम इसे अपनी उपलब्धि ही कहेंगे कि अपने यहाँ स्वयं को बुद्धिमान समझने का मौलिक अधिकार हमें प्राप्त है। अब यह आप पर निर्भर है कि आप स्वयं को विद्वान समझते हैं या मूर्ख। परम्परा यही है कि अभी तक हमने किसी को मूर्ख समझते हुए नहीं देखा। जो लोग जन्म से ही मूर्ख पैदा होते हैं और जिन्हें मूर्खता विरासत हक में प्राप्त होती है, वे भी अपने-आपको विद्वान ही समझते हैं। यही 'समझ लेने की आजादी' महत्त्वपूर्ण है जिसमें संविधान कहीं आड़े नहीं आता है। यह सुविधा नहीं होती तो कई लोग केवल इसलिए आत्महत्या कर लेते क्योंकि वे मूर्ख हैं

यही कारण है कि मैं किसी को मूर्ख नहीं मानता। करोड़ों की आबादी में जरूर कुछ प्रतिशत मूर्ख होंगे, लेकिन उनके पास भी विद्वान होने का प्रमाणपत्र जरूर होगा। यह इसलिए कि अपने यहाँ प्रमाणपत्र आसानी से मिल जाता है। आप अदालत में पेशी पर नहीं आना चाहते, सिर्फ बीस रुपये खर्च कीजिए। कोई भी डॉक्टर यह प्रमाणपत्र दे देगा कि आप बीमार हैं और आपका एक हफ्ता आराम करना जरूरी है। आपका ऑफिस से छुट्टी मारने का मन हो रहा हो तो तुरन्त किसी डॉक्टर को पकड़ लीजिए, बीस रुपए थमाइए और आराम से घर पर बैठिए और दिन भर टी.वी. देखिए। घर में बच्चे न हों तो वी.सी.आर. मँगवाकर गन्दी फिल्म भी देखी जा सकती है। कुछ डॉक्टर ऐसे होते हैं जिनके रेट कुछ अलग-अलग होते हैं। लूज-मोशन का रेट बीस रुपया। पीलिया के प्रमाणपत्र का रेट तीस रुपया। हार्ट अटैक का रेट सौ रुपया। अपनी इच्छानुसार बीमारी पसन्द कीजिए और छुट्टी लेकर मौज कीजिए। अब जिन डॉक्टरों ने अलग-अलग बीमारियों के प्रमाणपत्रों के अलग-अलग रेट निर्धारित किए हैं उन्हें

भी विद्वान ही कहना चाहिए, वर्ना प्रमाणपत्र के लिए उपयोग में लाए जाने वाले कागज का रेट तो केवल पच्चीस या अधिक-से-अधिक पचास पैसा होता है, चाहे तो इसे प्रिंट करवा लीजिए या टाइप।

वैसे हर आदमी अपने-आपको विद्वान ही समझता है, लेकिन यह भी सच है कि यदि सरकार कोई योजना बनाकर मूर्खों को पच्चीस हजार रुपए देने की घोषणा कर दे तो अपने यहाँ अस्सी प्रतिशत लोग बुद्धिमानी छोड़कर मूर्ख हो जाने के लिए तत्काल तैयार हो जायेंगे, और किसी भी राजपत्रित अधिकारी से अपने मूर्ख होने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर देंगे। यह इसलिए कि सरकार की सभी योजनाओं में रिकार्ड में प्रमाणपत्र होना जरूरी है। जाति-प्रमाणपत्र, आय-प्रमाणपत्र, निवास-प्रमाणपत्र सभी में तहसीलदार के हस्ताक्षर जरूरी हैं। आपकी जाति तहसीलदार ही प्रमाणित करता है। अब यदि सरकार ने 'शिक्षित मूर्ख स्व-रोजगार योजना' के अन्तर्गत आपको पच्चीस हजार दिए, तो इसमें तहसीलदार की भागीदारी निश्चित रूप से होगी। अपने को मूर्ख प्रमाणित करवाओ और पच्चीस हजार ले जाओ। तहसीलदार से आप निपटो, सरकार का कोई लेना-देना नहीं है।

मैं दावे के साथ कहता हूँ कि जो आजादी के बाद से ही अपने को विद्वान समझते हैं, वे भी इस योजना का लाभ उठाने के लिए मूर्ख हो जायेंगे। सत्ता और राजनीति का लाभ लेने के लिए जिस तरह साधु-सन्त हरकतें कर रहे हैं, उसी से आप हमारे चरित्र का अन्दाजा लगा सकते हैं। कोई हमें पच्चीस हजार दे दे, हम मूर्ख कहलाने के लिए तैयार हैं। पच्चीस हजार के नाम से मूर्खों की भीड़ लग जायगी तहसीलदार के कार्यालय के सामने। यह भी तय है कि इनमें से अधिकांश नेताओं और मंत्रियों के रिश्तेदार ही होंगे। पिछले दिनों एक समाचार आया था कि सरकार कोढ़ियों को पाँच एकड़ काश्तकारी जमीन मुफ्त में दे रही है। 'कोढ़ी उद्धार योजना' के अन्तर्गत कोढ़ी अस्पताल में प्रमाणपत्र लेने वालों की लम्बी लाइन लग गई थी। लोग कोढ़ी होने का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए विधायकों और मंत्रियों की सिफारिशों के जुगाड़ में लग गए थे।

पिछली सरकार ने शिक्षित बे-रोजगारों को बेरोजगारी-भत्ता देने की योजना बनाई थी। तहसीलदार से प्रमाणपत्र लो और सौ रुपया महीना सरकार से मुफ्त में ले

लो। आवेदनपत्रों के साथ तहसीलदार का प्रमाणपत्र भर होना चाहिए कि आपकी या आपके पालक की वार्षिक आमदनी गरीबी रेखा से नीचे वाली है।

एक बेरोजगार हीरो होन्डा से मेरे पास आया। उसके हाथ में बेरोजगारी भत्ते का आवेदनपत्र था। मैंने पूछा, "तुम्हें बेरोजगारी-भत्ते की क्या जरूरत पड़ गई? खाते-पीते घर के हो तीन-तीन दुकानें चल रही हैं दो जीपें हैं, बँगला है

वह बीच में ही बोला "सो तो है। लेकिन जब अपनी सरकार ही मूर्ख हो तो उसका फायदा उठा लेना चाहिए। सौ रुपया महीना मिल रहा है तो लेने में क्या नुकसान है? मेरा सिगरेट-खर्च निकल जायेगा।"

मैंने कहा, "लेकिन तुम्हारे परिवार की आय तो काफी है यह योजना तो गरीबी रेखा से नीचे वालों के लिए है।"

वह बोला, "मैं जानता हूँ, इसलिए आवेदनपत्र में मैंने लिखवा दिया है कि मैं अपनी माँ पर आश्रित हूँ और वह लोगों के बर्तन साफ कर तीन सौ रुपया महीना कमाती है। मैंने पटवारी से आयु प्रमाणपत्र ले लिया है और इसी आधार पर तहसीलदार से भी प्रमाणपत्र ले लूँगा विधायकजी का पत्र मेरे पास है ही भत्ता पक्का। और जब सरकार ही अपना खजाना खाली करने पर तुली है तो इसमें हमारा क्या दोष?"

मैंने पूछा, "लेकिन क्या तहसीलदार प्रमाणपत्र दे देगा? वह तो तुम्हें और तुम्हारे परिवार को अच्छी तरह जानता है?"

उसने कहा, "विधायक जी का पत्र किस दिन काम आयेगा? और आप तो जाने किस जमाने की बात कर रहे हैं। मुझे एक हजार रुपया दीजिए, मैं आपकी मृत्यु का प्रमाणपत्र लाकर आपको दे देता हूँ। अपने यहाँ क्या नहीं मिलता। बस पैसा और थोड़ा-सा टैक्ट चाहिए।"

उसने गाड़ी स्टार्ट की और तेज गति से आगे बढ़ गया। बात मूर्खों और बुद्धिमानों की चल रही थी। मैं एक सज्जन को जानता हूँ जो वज्र-मूर्ख हैं। मूर्खता का ओज उनके चेहरे पर चौबीसों घंटे चमकता रहता है, लेकिन वे जब भी बात करते हैं तो अपने-आपको विद्वान समझकर ही करते हैं। राजनीति की बात हो बेईमानी की हो या फिर गिरते हुए चरित्र और भ्रष्टाचार की हो वे अपनी विद्वता दिखाने में कभी

पीछे नहीं रहते। एक दिन मुझसे कहने लगे, "मुझे जनता प्रधानमंत्री बना दे तो मैं एक दिन में कश्मीर समस्या हल कर दूँगा।"

क्या ऐसी बात करने वाले को आप विद्वान कहेंगे? पहली बात तो यह कि प्रधानमंत्री बनने की कुव्वत नहीं है। फिर क्या प्रधानमंत्री ऐसे ही बन जाते हैं? अपने राजा साहब से पूछिए कि प्रधानमंत्री बनने के लिए उन्हें क्या नहीं करना पड़ा! प्रधानमंत्री बनने के चक्कर में अपने भइयाजी का रिकार्ड इतना खराब हो गया कि आज तक इसके परिणाम वे भुगत रहे हैं, याने कि न आप प्रधानमंत्री बनेंगे और ना ही कश्मीर समस्या हल होगी।

मैंने कहा, "फिर तो आप पंजाब में चुनाव लड़ लीजिए। अभी कई स्थानों पर चुनाव रद्द हुए हैं और सरकार ने चुनाव स्थगित भी कर दिए हैं। मौका अच्छा है प्रधानमंत्री बनने का।"

वह बीच में ही बोले, "अजीब मूर्ख आदमी हैं आप! क्या हमें भी अपने-जैसा मूर्ख समझते हैं? पंजाब में चुनाव लड़कर क्या हमें मरना है? देखते नहीं वहाँ चुनाव लड़ने वालों की क्या हालत हुई है?"

मैंने कहा, "फिर बिना लोकसभा का चुनाव लड़े आप संसद में जायेंगे कैसे? और आपकी स्थिति इतनी अच्छी भी नहीं है कि बिना चुनाव लड़े आपको प्रधानमंत्री बना दिया जाए।"

वह बोले, "यार, हम तो आपको विद्वान आदमी समझते थे लेकिन आप तो बिल्कुल मूर्ख निकले! जब हमारी बात ही आपको समझ में नहीं आ रही है तो बहस करना बेकार है।"

उन्होंने मुझे मूर्ख होने का प्रमाणपत्र दिया और आगे बढ़ गए।

कुछ दिनों बाद जब उनसे दुबारा मुलाकात हुई तो मैंने मजाक में उनसे कहा, "सुना है, प्रदेश सरकार मूर्खों को पच्चीस हजार रुपया दे रही है।"

वह बोले, "कहाँ सुना आपने?" मैंने कहा "अभी राजधानी से एक मित्र लौटे हैं कह रहे थे कि वहाँ योजना का प्रारूप तैयार हो रहा है। मुख्यमंत्री मूर्खों के बारे में गम्भीर हैं।"

वह बोले, "हो सकता है। नई सरकार है कुछ भी कर सकती है। मूर्खों को भी मतदान का अधिकार है। हो सकता है सरकार वोट-बैंक बनाने के लिए ऐसा सोच रही हो।"

थोड़ी देर कुछ सोचने के बाद वह बोले, "यदि ऐसा हुआ तो प्रक्रिया क्या होगी?"

मैंने कहा, "वही जो शिक्षित बेरोजगारों को भत्ता दिए जाने के लिए निर्धारित है। पटवारी से प्रमाणपत्र लो, नगरपालिका या निगम से लिखवाओ कि आप मूर्ख हो और स्थायी रूप से इस प्रदेश में इसी शहर में निवास कर रहे हो। फिर एक शपथपत्र दो और अपने मूर्ख होने का प्रमाणपत्र देकर मूर्ख-राशि सरकार से ले लो। लेकिन यह सब आप क्यों पूछ रहे हैं?"

वह बोले "अपने लिए नहीं पूछ रहा हूँ। मैं जनता की सेवा करता हूँ। इस योजना का प्रचार करूँगा और अधिक-से-अधिक मूर्खों को इसका लाभ दिलवाऊँगा।"

दूसरे दिन वे मुझे नगरपालिका में मिल गए। मुझे देखकर हँसे और बोले, "आप भी आ गए प्रमाणपत्र लेने? चलो अच्छा हुआ। एक से दो भले। भई जब सरकार ने ही पच्चीस हजार देने का सोच लिया है तो हम क्या करें। जरा नगरपालिका-अधिकारी से पता लगाओ कि कोई कागज आया ऊपर से? मैं सोचता हूँ प्रमाणपत्र बनवाकर रख लेने में क्या नुकसान है। क्यों?"

मैंने कहा, "पच्चीस हजार देना तो आपका अपमान करना है। आप तो पचास हजार के लायक हैं।"

वे अपनी विद्वता पर मुस्कराकर आगे बढ़ गए। उनके चेहरे पर वही ओज था जो चौबीसों घंटे रहता है।

☐

क्षमा कीजिएगा

इन दिनों 'क्षमा कीजिएगा' वाले से पूरा शहर परेशान है। पता नहीं ये आदमी किस नक्षत्र में पैदा हुआ है। बात शुरू करेगा तो कहेगा—क्षमा कीजिएगा। फिर दो वाक्य बोलेगा और कहेगा—क्षमा कीजिएगा। थोड़ी देर चुप रहेगा। कुछ सोचेगा और कहेगा—क्षमा कीजिएगा। कभी-कभी तो 'क्षमा कीजिएगा', कहने के बाद ही वह सोचता है कि अब क्या कहना है। रास्ता चलते किसी को भी पकड़ लेगा और कहेगा—क्षमा कीजिएगा।

इसी धर-पकड़ में मैं फँस गया। पान खाने निकला था कि ये 'क्षमा कीजिएगा' वाले दिख गए। दिखने में तो बुद्धिजीवी लगते थे लेकिन बाद में पता चलेगा आपको भी, किस टाइप के बुद्धिजीवी थे। मैंने पान की दुकान पर एक जोड़ा बनारसी का आर्डर दिया तो वे बोले—क्षमा कीजिएगा देश की हालत बहुत खराब है।

मैंने कहा—इसमें आपको क्षमा करने की कौन-सी बात है? क्या आपने हालत खराब की है?

वे बोले—क्षमा कीजिएगा, आप मेरा मतलब नहीं समझे। मैं बहुत स्पष्टवादी हूँ।

—क्या मतलब है आपका?

—क्षमा कीजिएगा बहुत गौर करने का मामला है। इसे इतना लाइटली मत लीजिए। क्षमा कीजिएगा एक बात बता देता हूँ कि हम बहुत कठिन दौर से गुजर रहे हैं

मैं चुप रहा, यही सोचकर चुप हो गया था कि मैंने उनके प्रश्न का उत्तर दिया नहीं कि वे मुझे एक और 'क्षमा कीजिएगा' टिका देंगे।

वे बोले—क्षमा कीजिएगा, आप मेरी बात को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं?

वो तो मैं बिना कुछ कहे वहाँ से खिसक गया नहीं तो वह मुझसे क्षमा माँग माँगकर समझा ही देता कि देश की हालत कितनी गंभीर है। उसकी एक आदत से मुझे एलर्जी हो गई थी कि 'क्षमा कीजिएगा' कहने के बाद वह अपना मुँह श्लोक की तरह बनाता था, आँखें गोल-गोल घुमाता था, चारों तरफ देखता था और बात को इतनी जोर से चबाता था कि किसी की भी इच्छा उसे क्षमा कर देने की होती थी और 'क्षमा करो साले को' और आगे बढ़ने वाली भावना जागृत हो जाती थी।

बम्बई में ट्रेन या टाउन बस में जब खूबसूरत महिलाएँ 'एक्सक्यूज मी' कहकर मुस्कुराती हैं तो अगला आपसे आप रास्ता दे देता है, और एक अपना 'क्षमा कीजिएगा' वाला है। भीड़ में जिससे कहेगा वही उसे दो धक्का मारेगा। उसने 'क्षमा कीजिएगा', कहा और जवाब मिलेगा—अबे अंधा है क्या... देखता नहीं सामने कितने लोग खड़े हैं... तेरे क्षमा माँग लेने से भीड़ कम हो जाएगी क्या?

मैं खिसक रहा था कि वह मेरे पीछे लग गया। थोड़ी देर तो मेरे पीछे-पीछे चलता रहा, बाद में जब रास्ता सुनसान हो गया तो उसने कहा—क्षमा कीजिएगा।

मैंने कहा—मुझे मालूम है देश की हालत बहुत खराब है।

वह बोला—क्षमा कीजिएगा। यह बात नहीं है। बात यह है कि...

मैंने बीच में ही कहा—जानता हूँ। हम बहुत कठिन दौर से गुजर रहे हैं।

इसके बाद उधर से 'क्षमा कीजिएगा' का रिप्लाई नहीं आया तो मैं समझ गया कि अब वह किसी दूसरे आदमी को पकड़ेगा। लेकिन नहीं, वह चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चलता रहा।

आगे चौराहा था। मैं दाहिनी तरफ मुड़ा तो वह बोला—क्षमा कीजिएगा... देश गलत रास्ते पर जा रहा है।

एक बार मेरी इच्छा हुई कि इस आदमी को पास बिठाकर उसकी पूरी बातें सुनूँ। हो सकता है वह फेयरफैक्स वाले मुद्दे पर कुछ कहे या अपने रक्षामंत्री के बारे

से कोई टिप्पणी दे। लेकिन मैंने यह सोचकर उसे लिफ्ट नहीं दी कि साला इतने अहम मसले के आगे क्षमा कीजिएगा लगा कर पूरे घटनाक्रम की सीरियसनेस की ऐसी-तैसी कर देगा। दरअसल अन्दर ही अन्दर मुझे अब इन शब्दों से घृणा होने लगी थी। इस आदमी को किसी मंच पर भाषण देने के लिए खड़ा कर दो तो क्षमा माँग-माँगकर ही वह इस देश को विकासशील राष्ट्र सिद्ध कर देगा।

मैं सोच रहा था कि इस आदमी पर जरूर व्यंग्य लिखूँगा, लेकिन फिर सोचने लगा कि इसमें विसंगति की बात कहाँ है। बेचारा सीधे-सीधे क्षमा माँग रहा है। जहाँ क्षमा होती है वहाँ तो करुणा का भाव होता है। हाँ, इस करुणा के पीछे यदि कोई दर्द छिपा हो तो उसकी पीड़ा का रेखांकन अवश्य एक अच्छे कैरेक्टर सटायर को जन्म दे सकता है। लेकिन ऐसी कौन-सी स्थिति पैदा की जा सकती है जो इस चरित्र को सार्थक बनाए।

चौराहे के पास जिस सड़क की ओर मैं मुड़ा था, उस पर एक पुलिया बनी हुई थी। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो वह पुलिया पर बैठ गया था। शायद सोच लिया हो कि मुझे देश के हालात में कोई दिलचस्पी नहीं है, यही सोचकर उसने मेरा पीछा छोड़ दिया हो।

मैं थोड़ी देर के लिए रुका, एक सिगरेट सुलगाई और उसकी तरफ देखने लगा। पहले तो वह देखता रहा और बाद में उसने अपना मुँह दूसरी दिशा में घुमाकर मेरी ओर पीठ कर दी। जैसे कहना चाहता हो—जाओ मैंने क्षमा कर दिया। जिस आदमी के लिए देश और सिगरेट में कोई अन्तर न हो, उससे बात करने से तो अच्छा है उसकी तरफ पीठ कर लो।

यह तो मैं सोच रहा था। एक लेखक होने के नाते कई तरह की बातें आती हैं मन में। किसी स्थिति को देखकर ही विचार बनते हैं। बम्बई की खूबसूरत महिलाओं के साथ मन में बहुत हल्के-फुल्के विचार ही आते हैं जबकि 'क्षमा कीजिएगा' वाले के साथ जब देश जुड़ जाता है, तो मेरा ऐसा सोचना मुझे स्वाभाविक लगा।

मैं उसके पास आ गया। उसे गंभीरता से देखता रहा। मैं चाहता था कि वह बात शुरू करे। देश की हालत पर कुछ कहे, सही-गलत रास्ते के अन्तर की बात कहे तो मैं उससे बहस करूँ और अपने व्यंग्य के लिए कुछ [illegible] तथ्य निकाल सकूँ

वह मेरी ओर देखता रहा। उसके चेहरे पर पीलापन था। चौराहे पर जो गहरे पीले रंग की रोशनी थी उससे आसपास के वातावरण में भी पीलापन झलकने लगा था। यही तो इस सोडियम लैम्प की विशेषता है। हो सकता है, उसके चेहरे का पीलापन मुझे इस रोशनी के कारण ही अधिक पीलापन लग रहा हो।

मैं थोड़ी देर के रुका रहा। मैंने भी निश्चय कर लिया था कि इस बार भी बात उसकी तरफ से प्रारम्भ होगी तभी मैं जवाब दूंगा और उसकी हर बात को गंभीरता से सोचूंगा। शायद उसे मेरे पहले के व्यवहार से दु:ख हुआ था। मुझसे नाराज हो सकता था।

कोई पांच मिनट तक हम दोनों चुप रहे। बाद में मैं जाने लगा तो उसने कहा—क्षमा कीजिएगा आपके पास पांच का नोट होगा? मैंने कल से कुछ नहीं खाया है।

मैंने पेंट की जेब में हाथ डाले और बिना कुछ उत्तर दिए उसी रास्ते पर मुड़ गया जिस पर खड़े होकर थोड़ी देर पहले मैंने सिगरेट पी थी।

'क्षमा कीजिएगा' वाले से पूरा शहर परेशान तो होगा ही क्योंकि इस शहर में मुझ जैसे ही लोग रहते हैं।

❑

चीर-घर

जब से सोनीजी का चीर-घर बनाने का टेंडर पास हुआ है, उनकी जिंदगी में नया मोड़ आ गया है सुबह-शाम वे चीर-घर में ही दिखते हैं, जहाँ मिलते हैं केवल चीर-घर के अलावा कोई बात नहीं करते।

सोनीजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के पहले आपको यह बताना जरूरी है कि वे काफी चुस्त-दुरुस्त और माँसपेशी प्रधान व्यक्ति हैं। जब भी वे कचहरी आते हैं मैं उन्हें देखकर प्रसन्न होता हूँ, उन्हें चाय पिलाता हूँ, पान खिलाता हूँ।

एक बार वह मुझे बोले, ''घोषी साहब, आप मुझे देखकर प्रसन्न क्यों होते हैं?''

मैंने कहा, ''दरअसल इस कचहरी में रोज मुर्दा किस्म के पक्षकारों को देख-देखकर आँखें पक गई हैं जो भी आता है उदास चेहरा लेकर ही कचहरी आता है आप जैसे स्वस्थ लोग आते हैं तो मन प्रसन्न हो जाता है कि चलो कोई तो मोटा-ताजा आदमी कचहरी में आया।''

सोनीजी हँसे या कहिए कि अपनी हेल्थ की तारीफ सुनकर फूले। मैं 'फूले' शब्द का प्रयोग जान-बूझकर इसलिये नहीं कर रहा हूँ कि वे पहले से ही काफी फूले हुए हैं। कमर 45 इंच से कम नहीं होगी। जिस आदमी की कमर का घेरा इतना हो, उसके बदन की माँसपेशियों का अंदाजा आप लगा सकते हैं। कहने का मतलब है कि वे काफी मटन-दार व्यक्ति हैं। एक रान पन्द्रह किलो से कम तो नहीं होगी। अपने देश में इतना स्वस्थ आदमी देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होगी?

मैंने मजाक में उनसे कहा, "सोनीजी, आप तो विदेश चले जाओ। खूब पैसा कमाओगे।"

उन्होंने पूछा—"वो कैसे?"

मैंने कहा, "आप किसी मीना बाजार में स्टाल लगा लेना। इस विकासशील देश का इतना स्वस्थ आदमी देखने के लिए विदेशी भीड़ लगा देंगे। एक डॉलर टिकट रखोगे तो माला-माल होकर अपने देश लौटोगे।"

वह बड़ी गंभीरता से बोले, "कहना आपका सही है, लेकिन मैं तो इस चीर-घर के मारे मर रहा हूँ। टेंडर पास हो चुका है। जब तक चीर-घर पूरा नहीं होगा, मैं विदेश जाने की नहीं सोच सकता। एक बार काम पूरा हो जाये फिर पास-पोर्ट बनवा लेंगे, क्यों ठीक है ना?"

मैंने पूछा, "लेकिन आपने चीर-घर के लिए ही क्यों टेंडर भरा? कोई बड़ी-सी इमारत का ठेका लेते तो कुछ बचता भी। इस छोटे से चीर-घर में क्या बचेगा?"

वह बोले, "अपने नगर की गरिमा बढ़ाने के लिए ही मैंने यह ठेका लिया है, आपने पुराना चीर-घर देखा है? कितना गंदा है। ऊपर से पचास जगह छप्पर टूटी है। खिड़की दरवाजे का ठिकाना नहीं है। इस गंदे चीर-घर में हमारे सम्माननीय मृतकों का चीर-फाड़ हो, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। आखिर मरने वाले तो यही कहेंगे ना कि क्या अपना नगर इतना गया बीता है कि आदमी को मरने के बाद अच्छा-सा चीर-घर भी नसीब न हो। हमारा नैतिक कर्तव्य है कि हम मृतकों की सुविधा के लिए इतनी सम्मान जनक भावना तो रखें। मैंने ही लोगों के दस्तखत करवा कर शासन से नया चीर-घर बनवाने का आदेश निकलवाया है। इसके पीछे मेरी भावना काम कर रही है।"

मैंने कहा, "फिर तो आपकी भावनाओं का मैं स्वागत करता हूँ। लेकिन मेरा सुझाव है कि इस चीर-घर का नाम किसी जीवित नेता के नाम से हो रखा जाए। "श्रीमान फलाना स्मृति चीर-घर" साथ में आपका नाम भी लिखा जाना चाहिए।"

अपने नाम का उल्लेख सुनकर अपने सोनीजी फिर गंभीर हो गए। दार्शनिक मुद्रा में बोले, "अपने देश के ठेकेदार केवल चीर-घर बनाने में ही अपनी निष्ठा रखते हैं। हमें अपने नाम का कोई मोह नहीं है। मेरे विचार से किसी नेता के नाम से ही इसका नामकरण हो तो अच्छा रहेगा।"

इसके वाद उन्होंने कई नाम सुझाए। पहले अखिल भारतीय स्तर के नेताओं का उन्होंने स्मरण किया और बीच-बीच में कुछ आंचलिक नेताओं के नाम भी व ले आए जिनके कारण उनका टेंडर पास हुआ था।

मैंने प्रसंग को टालते हुए कहा, "अभी तो आपका चीर- घर अधूरा है पूरा बन जाने दीजिए फिर सोचेंगे, अभी आपका क्या प्रोग्राम है?"

वह बोले, "अपना क्या प्रोग्राम रहेगा बस चीर-घर की तरफ ही जाना है प्लास्टर चल रहा है नजर के सामने काम हो तो अच्छा है बाद में शिकायत हो कि प्लास्टर उखड़ कर मृतकों के शरीर पर गिरने लगा है, तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा।"

मैंने कहा, "सरकारी इमारतों का प्लास्टर ऐसा ही होता है. साहबों के घरों में गिरता रहता है। जब वे शिकायत नहीं करते तो मुर्दे क्या करेंगे?

सोनीजी ठहाका मारकर हँसे। बोले, "मैं व्यंग्य समझ गया अब आप मेरे चीर-घर पर कुछ लिख डालो, अपनी भी पब्लिसिटी हो जाये जरा कायदे से।"

मैंने उन्हें यह कहकर टाल दिया कि जब काम पूरा हो जायेगा तब लिखूँगा।

कल सोनीजी मेरे पास आए। बोले, "चीर-घर कम्पलीट है अब आप लिख डालिये इस पर कुछ लेकिन एक बात कह देता हूँ मेरा ध्यान रखना . बहुत पसीना बहा है मेरा इस चीर-घर में।"

मैंने पूछा—उद्घाटन के लिये किसे बुला रहे हो?

वह बोले, "क्या चीर-घर का भी उद्घाटन करवाना पड़ेगा?"

मैंने कहा, "यह तो अपने यहाँ की परम्परा है देश के हर निर्माण-कार्य का श्रेय सरकार को है। जो भी सरकारी भवन बनता है, बिना उद्घाटन के बंद पड़ा रहता है। अपने यहाँ जेल बनी थी देखा नहीं कितने दिनों बाद इसका उद्घाटन हुआ। तब जाकर कहीं जेल चालू हुई।"

सोनीजी गंभीर हो गए, बोले, "यह तो कठिन काम है, उद्घाटन के लिये मुर्दा भिड़ाना पड़ेगा।"

मैंने मजाक में कहा, "किसी अच्छे नेता को पकड़ लो ऐसे संस्थानों का उद्घाटन उनके द्वारा होना चाहिए।"

वह बोले "देखता हूँ लेकिन आप लिख रहे हो ना चीर-घर के बारे में?

मैंने उन्हें आश्वस्त किया लेकिन अब सोच रहा हूँ कि क्या लिखा जाए? चीर-घर से क्या व्यंग्य पैदा किया जा सकता है। सोनीजी को इस चीर-घर में कहाँ फिट किया जाए कि बात पैदा हो और उनका सम्मानजनक स्थान भी बना रहे। चीर-घर का उद्घाटन किस पक्ष के नेता से सार्थक होगा? ऐसे कई सवाल मन में पैदा हो रहे थे।

दो दिन इसी तरह निकल गए।

तीसरे दिन सोनीजी प्रसन्न मुद्रा में आए। बोले, नेता तय हो गया अब आप जल्दी लिख दीजिए।

मैंने नेताजी का नाम और यह पूछा कि भाजपा वाला है या कांग्रेस वाला तो वह बोले, "उन्होंने कहा है कि नाम गुप्त रखा जाए।"

मैं समझ गया कि सोनीजी ब्रंडल मार रहे हैं। अपने देश का नेता ऐसा कभी नहीं कर सकता। उद्घाटन भले ही देर से हो लेकिन बधाई विज्ञापनों के लिए अपना नाम पहले ही दे देता है ताकि लोगों को स्वागत करने का अवसर मिले।

रात में मुझे सपना आया कि मेरी लाश चीर-घर में पड़ी है। चीर-घर के प्रवेश द्वार पर लाल फीता लगा हुआ है। सोनीजी दौड़धूप में लगे हैं। सरकारी गाड़ियों की लाईन लगी है। एक एम्बेसेडर में नेताजी उतरे, लोगों ने उन्हें फूल मालाएँ पहनायीं। सरकारी अस्पताल के डॉक्टर पोस्टमार्टम की तैयारी में हैं। नेताजी ने फीता काटा। लोगों ने तालियाँ बजाई। फिर डॉक्टर साहब ने नाईफ नेताजी के हाथों में देते हुए आग्रह किया कि चाकू चलाकर वे इस मुर्दे के पोस्टमार्टम के साथ ही चीर-घर का उद्घाटन सम्पन्न करें। नेताजी ने मेरी ओर देखा। मैं प्रजातंत्र का मतदाता था। जिंदा नहीं था इसलिए उनके काम का नहीं था। उन्होंने चाकू मेरे सीने पर रख दिया। मैं जानता था कि अब इस चाकू की नीलामी होगी। यह चाकू बीस हजार में जायेगा। नेताजी भाषण देंगे और बढ़ती हुई आबादी, एकता-अखंडता और आतंकवाद में चीर-घर के महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे, अपने सोनीजी की लगन, निष्ठा और मृतकों के प्रति सम्मान की भावना का आदर करते हुए विदा हो जाएँगे, फिर चीर-घर चलेगा। मेरी तरह अनेक लाशें इस चीर-घर में फाड़ी जायेंगी। मृत्यु के कारणों की बारीकी से जाँच होगी। कई हत्या के

आरोपी दोषमुक्त होंगे। लेकिन मुझ जैसे लोगों का क्या होगा जो केवल उद्घाटन के लिए मरे हैं, चोर-घर के लिए मरे हैं, नेताजी के लिए मरे हैं उनकी ख्याति और सम्मान के लिए मरे हैं, उनका चाकू नीलाम करवाने के लिए मरे हैं, चोर-घर की सार्थकता को स्थापित करने के लिए मरे हैं।

सपना देर रात तक चलता रहा। और बीच-बीच में सोनीजी मुझे बराबर याद दिलाते रहे कि मुझे चोर-घर पर जल्दी लिखना है। और सोनीजी के इस सार्थक प्रयास को प्रजातांत्रिक मूल्यों से जोड़ते हुए अपनी भव्य परम्पराओं को जीवित रखना है। देश में होने वाले हर उद्घाटन में अपनी सार्थक भागीदारी निभाना है।

❑

बिजली वाले की बारात में

बहुत दिनों तक दूसरों के फ्यूज सुधारने के बाद आखिर बिजली वाले की शादी तय हो गई। नाम तो उनका तिवारी था लेकिन वे 'बिजली वाले' के नाम से शहर में माने जाते थे। पिताजी बिजली विभाग में ऑफिसर इन्चार्ज थे। खुद उसी विभाग में क्लर्क थे। छोटा भाई शहर में बिजली फिटिंग का काम करता था। घर में माँ-बहनें जब कहीं किसी के घर बैठने जातीं तो लौटते समय एक-दो प्लग और वायर मांग लाती थीं। छोटे बच्चों को हिदायत थी कि जब भी किसी के घर खेलने जाओ, मौके की ताक में रहो और एक बल्ब लेकर ही घर लौटो। यानि कुल मिलाकर पूरा परिवार बिजली विभाग को समर्पित था। साहित्य में जो जगह प्रतिबद्धता की होती है, बिजली विभाग में वही जगह तिवारी जी की थी।

लड़की वाले जब तिवारी जी को देखने आये तो तिवारी जी अपना मेन स्विच रिपेयर कर रहे थे। होने वाले ससुर ने पूछा—"लड़का नहीं दिख रहा है।" समधी ठहाका मारकर हँसे बोले—"वो क्या स्विच सुधार रहा है।"

लड़की वाले जरा झेंप गये। वे लोग उन्हें मैकेनिक समझे थे। तिवारी जी उसी तन्मयता के साथ स्विच सुधारते रहे। थोड़ी देर बाद जब लाइन चालू हो गई तो वह अपने होने वाले ससुर की ओर देखकर मन ही मन अपनी होने वाली पत्नी के स्वभाव का अंदाजा लगाने लगे। पिता ने कहा—"पैर छूओ बेटे।"

तिवारी जी ने टेस्टिंग होल्डर उनके पैरों के पास रखकर होने वाले ससुर जी के पैर छुए और एक झटके में इस तरह हटे जैसे उनके पैरों में 440 वाल्ट का करंट बह रहा हो।

लड़का पसन्द आ गया।

बाबूजी बहुत जिद करते रहे कि लड़की देख तो लो, अपने घर के लायक है या नहीं लेकिन घर की माँ- बहनों की राय थी कि यहाँ आने पर एडजस्ट हो जायेगी। दूसरा डर यह भी था कि लेट करने पर तिवारीजी आजीवन कुँवारे रह सकते थे। यह उनका दसवाँ रिश्ता था जो क्रियान्वित हो रहा था। पहले तो लड़की के बाप तिवारी जी को उनका मीटर देखकर ही रिजेक्ट कर चुके थे।

× × ×

बहुत लजाते- शरमाते तिवारी जी ने मुझे बताया कि उनकी शादी तय हो गई है। जब देश आजाद हुआ था तब वे पैदा हुए थे और आजादी की बत्तीसवीं वर्षगाँठ पर उनकी शादी तय हुई थी। मैंने कहा, "यार तुम तो इस कदर शरमा रहे हो जैसे कोई लड़की शरमाती है।" वह बोले—"बहुत दिनों से करंट लीक हो रहा था। आज वायरिंग ठीक हो गई। तभी मैं कहता था कि बिल क्यों ज्यादा आ रहा है।"

मैंने कहा—"बारात में ले चलोगे या नहीं?" वह बोले—"आप तो मेरे दोस्त हैं। आपको नहीं ले जाऊँगा तो वहाँ कांट्रेक्ट फार्म में गवाही कौन देगा?"

तिवारी जी पहली बार हैरान हुए दिखे। एक सीरियस किस्म की हैरानी जो मातमपुर्सी के समय या घर में बच्ची पैदा होने पर बाप के चेहरे पर होती है। फिर उनके चेहरे पर वही भाव आ गये जो बिना बारिश किये मानसून के गुजर जाने पर होते हैं।

जब से तिवारी जी की शादी पक्की हुई, उनके जीवन में नया मोड़ आ गया था। वे रात को नींद में 'फ्यूज बनाओ और कनेक्शन जोड़ो' बड़बड़ाने लगे थे। कभी-कभी बिजली के खंभे पर भी नींद में चढ़ जाया करते थे। घरवाले परेशान हो गये। ऑफिस में उनकी जितनी भी सी एल बची थीं सब ली जा चुकीं। वोल्टेज डाउन करने के उपाय किये गये लेकिन जब बारात जाने का केवल एक दिन बचा तो तिवारी जी आपसे आप नार्मल हो गये।

× × ×

बारात की तैयारी होने लगी। बैंड वाले आ गये। बाबूजी बोले—"ट्रायल के लिए एक धुन बजाओ।" बैंड वालों ने बजाया—"ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना।"

बिजली विभाग की मेटाडोर आ गई। पीले रंग की गाड़ी में हल्दी वाली धोती पहन कर तिवारी जब ड्राइवर की सीट के पास बैठे तो लग रहा था जैसे मेटाडोर का रंग चाटकर वे बैठे हैं। पीछे मे जानवरों की तरह बिजली विभाग के आदमी लद गए। फिटर और वायरमैनो से गाड़ी भर गई। मैं ही केवल संभ्रात नागरिक था जो उनकी बारात में जा रहा था। बाबूजी मुझसे बोले—"गाडी में घुस जाओ।" मैंने बड़ी मुश्किल से अपना सर गाड़ी मे डाल दिया। मेरा धड गाड़ी के बाहर लटक रहा था। लगता था जैसे विक्रमादित्य बैताल को कंधे पर लिए तिवारी जी की बारात में जा रहे हो।

जाने किस सज्जन को दया आ गई कि उन्होंने सही सलामत मेरा धड़ गाड़ी मे डाल दिया।

मेटाडोर के पीछे बिजली विभाग का डम्फर था जिसमे महिलाएं बैठी सोहर गा रही थी। कभी-कभी डम्फर की आवाज अधिक सुरीली लगती थी

उसके पीछे बिजली विभाग की ट्रक थी जो बिजली के पोल ढोता था उस पर बैंड वाले जमे थे। तिवारी जी के कुछ नजदीकी रिश्तेदार जो मेटाडोर मे नहीं घुस पाये थे, ट्रक मे जमे थे। हम बैंड वालो से परेशान थे और बैंड वाले उनसे परेशान थे।

बारात जाते-जाते अचानक रुक गई। पता चला कि ट्रक मे बैठे एक बच्चे ने क्लारेनेट पर पेशाब कर दिया। बैंड वालो ने कहा—"यह हमारा अपमान है। हम नहीं जायगे।" बाबूजी समझाने लगे—"अरे बच्चे ने पेशाब कर दिया। मैंने किया होता तो बात और थी। चलो हम धुलाई का पैसा समधी से दिलवा देगे।"

मेटाडोर मे बैठे बिजली मैकेनिक ताव खा रहे थे, बोले—"नहीं जाते तो न जायें। हम बैंड बजा लेगे। समझ क्या रखा है बिजली वालो को। लाइन काट देगे तब पता चलेगा, हाँ।"

बडी मानमनौव्वल के बाद उदास मन मे बैंड वाले तैयार हुए। बैंड मास्टर ने मन-ही-मन कहा "चलो बेटा। वहाँ ऐसी धुन बजाएँगे कि तुम भी क्या याद रखोगे। ' और हुआ भी ऐसा। उन्होने जो धुनें बजायी वो आज तक किसी की शादी मे नहीं बजी होगी। मुझे तो लगा था जैसे मैं किसी की शवयात्रा मे शामिल हो गया हूँ।

× × ×

बारात का स्वागत हुआ। ऐसा स्वागत मैंने पहली बार देखा। लड़की पक्ष वाले इतने मजबूत किस्म के आदमी थे कि मेरी पसलियाँ आज भी दर्द कर रही हैं। कुछ बारातियों को तो अस्पताल भेजना पड़ा। एक–एक आदमी दस–दस बारातियों से गले मिल रहा था। कुछ लोगों ने आवाज उठाई कि इस तरह गले मिलते रहोगे तो बारात में कोई भी आदमी इस लायक नहीं बचेगा कि दूल्हे की घोड़ी के पीछे हो।

भगवान ने हमारी सुन ली। गले मिलने का कार्यक्रम समाप्त घोषित हो गया।

बारातियों ने चैन की साँस ली। बाबूजी मेरे पास कराहते हुए आए। बोले— तुम फौरन जाओ और कुछ पहलवान किराये पर लाओ। बारात विदा होते समय हमारी ओर से समधी से पहलवान गले मिलेंगे।''

× × ×

बारातियों को जिस जगह ठहराया गया था वह पुराने महल का वह हिस्सा था जहाँ जमींदार साहब का अस्तबल था। लेकिन उसे इस बुरी कदर सजाया गया था कि लगता ही नहीं था कि हम अस्तबल में बैठे हैं।

बारातियों ने एक नजर चारों ओर डाली और देख लिया कि मारने लायक क्या है।

अन्दर दाखिल होते ही स्वागत के लिए नाई तैयार बैठा था। जिन बारातियों ने अपनी दाढ़ियाँ बनवाई वे अस्तबल से सीधे केमिस्ट की दुकान पर डेटाल लेने पहुँच गये। जिन लोगों ने मालिश करवाई वे घायल चीते की तरह दरियों पर पसर गये। कुल मिलाकर दूसरा स्वागत अपेक्षाकृत कम हिंसात्मक रहा।

भोजन हुआ। लड्डू की मजबूती मुझे अभी भी याद है। बाबूजी के दो-तीन दाँत जो हिल रहे थे वे वहीं शहीद हो गये। बाबूजी बोले—''यह तो शगुन है। बच्चा जिंदगी भर खुश रहेगा।''

बाबूजी ने बड़ी हिफाजत के साथ उखड़े हुए दाँतों को उस जगह गाड़ दिया जहाँ घोड़े दाना खाते थे। बाबूजी हम लोगों से बोले—''अरे बारात में आये हो तो जरा मौज–मस्ती कर लो।'' लेकिन दाढ़ियाँ बनवाकर और मालिशें करवाकर हम लोग इतना थक गये थे कि आराम करने के पक्ष में थे।

गोधूलि बेला में बारात निकली।

दरवाजे पर सजी हुई घोड़ी देखकर कई लोगों को अपने पुराने दिन और पत्नियाँ याद आ गई। हम सब बाराती दूल्हे की प्रतीक्षा में पान और तम्बाकू खाते रहे। बड़ी मुश्किल से घोड़ी की सजावट के अनुरूप सजे हुए तिवारी जी आए। उन्होंने पहले सड़क पर चलती हुई सम्भ्रांत महिलाओं को देखा और बाद में घोड़ी की ओर देखकर बोले—"मैं नहीं चढ़ूँगा। मुझे डर है यह कहीं गिरा न दे।" बाबूजी ने बहुत समझाया कि घोड़ी अनुभवी है। कई दूल्हों को पार कर चुकी है। लेकिन तिवारी जी के अन्दर जो डर बैठ गया था उसे बाबूजी नहीं निकाल सके।

मैंने धीरे से तिवारी के कान में कहा—"यार, अभी घोड़ी से डरोगे तो जिंदगी कैसे कटेगी।" तिवारी जी बोले—"अपाहिज बनकर जिंदगी काटने से अच्छा है घोड़ी पर न बैठा जाये। तुमने देखा था? अपने दुबेजी जब बारात लेकर लौटे तो दोनों पैरों में प्लास्टर बँधा था।"

घोड़ी वाले ने भी समझाया। होने वाले ससुर जी ने भी समझाया। लेकिन तिवारी जी नहीं माने। बाबूजी बोले—"घोड़ी वाले को आधा किराया देकर रवाना कर दो।" लेकिन घोड़ी वाला भी खानदानी था। बोला—"पैसे पूरे लगेंगे।" बाबूजी बोले—"ठीक है घोड़ी आगे-आगे चलाओ। दूल्हा पीछे जीप में चलेगा।"

तुरन्त लोकल बिजली विभाग की जीप बुलाई गई तब तिवारी जी अगली सीट पर बैठे। खाली घोड़ी बारात में सबसे आगे थी। पीछे तिवारी जी और हम घोड़ी की आहिस्ता चाल के साथ आगे बढ़ रहे थे।

बारात मंडप में पहुँची तो होने वाले ससुर ने तिवारी जी के सालों से कहा—"बारातियों का स्वागत करो।"

भगदड़ मच गई। कई बाराती भागने लगे तो बाबूजी ने कहा—"स्वागत बहुत हो गया। अब जल्दी से फेरे निपटाइये।"

पंडितजी श्लोक पढ़ने लगे और बीच-बीच में भाषण देकर समझाते थे कि सुखी प्रारम्भ-जीवन के लिए क्या अनिवार्य है वधू घूँघट में थी प्रारम्भ में जब वह

फेरो मे आगे थी तो लगता था जैसे उनके पीछे कोई बछड़ा फेरे लगा रहा हो। और जब तिवारी जी आगे हुए तो लगा जैसे कोई पावर हाउस उनका पीछा कर रहा है।

इस बीच एक दुर्घटना और हो गई थी जो मैं आप लोगो को बताना भूल गया अचानक लाइट बद हो गई। ससुर जी ने जल्दी से गैस बत्तियाँ बुलवाई। पता चला कि मडप मे दूल्हा भी नदारद है और समधी जी भी। बाद में पता चला कि समधी जी फ्यूज सुधार रहे थे और दूल्हा पोल पर चढ़ा पोल फ्यूज चेक कर रहा था।

कुल मिलाकर एक रोमाचक अनुभव लेकर हम लोग वापस लौटे थे। दहेज के अलावा तीन ट्यूब लाइट, मात बल्ब, अट्ठारह प्लग और तेरह होल्डर बारातियो के परिश्रम स दहेज मे जुड गये थे।

शादी के बाद तिवारी जी से पहली मुलाकात हुई। मैंने कहा—यार भाभीजी से नहीं मिलाओगे?

वह बाले—क्या मिलाऊँ। एक फेज गायब है।



बेगानी शादी में अब्दुल्ला

शादियाँ बहुत हुईं इस साल। सब अपने वालों की थीं। बहुत दिनों से बेगानी शादी की इच्छा मन में थी। मैंने एक मित्र से पूछा—क्या गुरु! इस साल कोई बेगानी शादी नहीं हुई?

वे बोले—एक-दो हुई थीं। तुम दिल्ली गए थे तब।

—उधर अब्दुल्ला दिखा?

—कौन अब्दुल्ला? अब्दुल्ला फलवाला या लकड़ी की टालवाला?

—मेरा मतलब है अब्दुल्ला दीवाना। मैंने सुना है कि वह अक्सर बेगानी शादी में जरूर दीवाना होता है।

वह हँसा। बोला—समझ गया। उसकी बात कर रहे हो ना? वह तो था जनवासे में जहाँ महिलाएँ थीं वहीं घूम रहा था।

मैं उदास हो गया। उसने कारण पूछा तो मैंने कहा—यार, फिर मैं मिस कर गया।

वह बोला—चलो अभी दिखा देते हैं। अपने पड़ोस में ही तो रहता है।

मैंने पूछा—क्या काम करता है?

वह बोला—बस वही, अब्दुल्ला और क्या करेगा।

वह ठहाका लगाकर हँसा। मैंने सोचा कि एकदम मूर्ख आदमी है। इसमें हास्य तो कहीं पैदा ही नहीं हुआ। मैंने कहा—हँसने की क्या बात है इसमें

उसने हास्य को री-डबल करते हुए फिर एक ठहाका लगाया। मैंने फिर कारण पूछा तो उसने कहा—ठहाका लगाकर हँसने में सामने वाला नरवस हो जाता है। तुमने अपने महाराज को नहीं देखा? हँसने की बात हो या न हो, इतने जोर का ठहाका मारते हैं कि सामने वाला घुटने टेक देता है।

—लेकिन यह तो मूर्खता है।

—तो मैं कब कह रहा हूँ कि बुद्धिमानी का काम है।

फिर थोड़ी देर चुप्पी रही। अचानक बिना किसी बात के वह फिर हँसा तो मैं समझ गया कि मेरा दोस्त भी मूर्ख है। हँसने की कोई बात ही नहीं थी। अंतिम बार मैंने फिर कारण जानना चाहा तो उसने कहा—हिन्दी साहित्य में हास्य की कमी है, इसलिए हँस रहा हूँ।

मैंने सोचा, बड़ा उजबक किस्म का आदमी है। कहाँ की बात को कहाँ लाकर पटक रहा है। बेगानी शादी, अब्दुल्ला, हास्य और हिन्दी साहित्य सब का कॉकटेल बनाते हुए उसने कहा—तुम सोच रहे होगे कि मैं मूर्ख हूँ बिल्कुल ठीक सोचते हो। मूर्ख आदमी ही ठहाके लगा सकता है देश में। जिस दिन बुद्धिमान हो जाओगे—हँसी गुम हो जाएगी। हँसोगे तो हेल्थ बनेगी। पेट के ऊपर चर्बी जमेगी। शादी की है तुमने?

जो आदमी रोज मेरे घर आता हो और जानता हो कि मैं संतान-प्रधान व्यक्ति हूँ और वह मुझसे पूछे कि मैंने शादी की है या नहीं, उस आदमी को आप क्या कहेंगे? यह सवाल सुनकर मैं ठहाका लगाकर हँसा।

मैंने कहा—तुम्हें देखकर मेरा भी मूड हिन्दी साहित्य में हास्य की कमी दूर करने का हो गया।

वही बोला—तब ठीक है, मैं तो कुछ और समझा था।

—क्या समझे थे?

—बस वही।

देखा आपने? एक लेखक को कोई प्लाट मिल जाए और वह उस पर कुछ लिखना चाहे तो कितनी दिक्कतें सामने आती हैं? मेरे दोस्त जैसे दस-बीस लोग इस

देश में हो जाएँ तो साहित्य का सत्यानाश कर देंगे। कहाँ का हास्य और कहाँ का व्यंग्य। अब यदि बेचारे आलोचक अभी भी यह कहते हों कि हिन्दी में हास्य की कमी है तो क्या गलती करते हैं? सोचा था कि इस बार 'शादियों के मौसम में अब्दुल्ला दीवाना' पर व्यंग्य लिखूँगा। एकदम नये किस्म का प्लाट है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कहीं आप यह न समझने लगें कि मैं हमेशा घटिया प्लाट पर ही लिखता हूँ। बिल्कुल चरित्र-प्रधान व्यंग्य बनेगा श्रीमान। बस अब्दुल्ला भर मिल जाए। अब बहुत कुछ तो मेरे इस दोस्त पर डिपेंड करता है। अब आप ये मत कहना कि ये वाक्य ही गलत है। इधर इसी तरह का वाक्य-विन्यास चलता है। हेल्थ का डाउन होना, राज अप-डाउन करना, रिजाइन दे देना, सपोज करना आदि।

कल एक अफसर मिल गए। बोले सपोज करो कि अपने प्रधानमंत्री ने मन्त्रि-पद से इस्तीफा दे दिया।

मैंने कहा—क्यों सपोज करें?

—नहीं, ये बात नहीं। सिर्फ सपोज करना है।

—अच्छा चलो सपोज कर लिया। फिर?

—अब सपोज करो कि अर्जुनसिंह प्रधानमंत्री बन गए।

—मैं ऐसा सपोज नहीं कर सकता।

—देखो, सिर्फ सपोज करने की बात है।

—अच्छा चलो कर लिया। फिर?

—अच्छा अब सपोज करो कि.

मैंने सपोज कर लिया कि ये भी मूर्ख आदमी है। इसका जन्म हिन्दी के व्याकरण के साथ अनैतिक कार्य करने के लिए ही हुआ है। 15 मिनट की अवधि में उसने मुझे पच्चीस बार सपोज करवाया।

यह उदाहरण मैंने इसलिए दिया कि कहीं आप यह न समझने लगें कि 'डिपेंड करना' गलत है। शादी का मौसम है तो कई लोगों पर डिपेंड करना पड़ता है-

मैंने दोस्त से कहा—यार, फालतू बात छोड़ो मुझे बताओ कि अब्दुल्ला कहा मिलेगा।

वह तत्काल बोला—वो तो दिल्ली चला गया। प्रधानमंत्री पर संकट है ना इधर कैसे रहेगा।

—अच्छा तो मुझे बेगानी शादी के बारे मे ही कुछ बताओ। किसकी थी?

—बस उसी की?

—कैसे हुई?

—बस, जैसे होनी है?

—बाजा बजा?

—खूब बजा।

—कौन बजा रहा था?

—अब्दुल्ला, और कौन बजाएगा?

—तुम तो अभी कह रहे थे कि वह जनवासे मे महिलाओं के पास था।

—वो अब्दुल्ला दूसरा है भइया। तुम तो समझ रहे हो कि देश मे एक ही अब्दुल्ला है।

—ये कहाँ से आ गया?

—आएगा कहाँ से यही पैदा हुआ है।

—उसका इस बेगानी शादी से क्या लेना-देना?

—बस वही।

अब आप बताइए कि लेखक क्या अपना माथा फोडेगा? ऐसे आदमी से क्या प्रामाणिक तथ्य निकालेगा? इसीलिए लोग कहते हैं कि व्यग्य लिखना कठिन काम है। देश मे ऐसे कठिन लोग रहेंगे तो हिन्दी साहित्य मे ऐसी ही स्थिति व्यग्य की रहेगी कितना बढ़िया प्लाट उठाया था मैंने व्यग्य के लिए। बेगानी शादी मे अब्दुल्ला दीवाना। लेकिन क्या लिखूँ? इस दोस्त पर डिपेंड कर रहा था तो वह भी गोल बात करता है।

मैंने अंतिम कोशिश करते हुए पूछा—कुछ पहचान तो बताओ यार अब्दुल्ला की।

वह फिर हँसा। बिल्कुल महाराज की तरह ठहाका लगाकर बोला—'समझ करो' वाले साहब को जानते हो?

—मैं बेगानी शादी की बात कर रहा हूँ।

—तो मैं कहाँ अपनी शादी की बात कर रहा हूँ। बोलो जानते हो कि नहीं?

मैंने कहा—जानता हूँ।

—जानते हो तो घर जाओ और कुछ लिखो। मेरे साथ माथाफोड़ी करने से कुछ नहीं मिलेगा।

मेरी इच्छा हुई कि उसकी गर्दन पकड़ कर पूछूँ—बता साले कहीं तू ही तो अब्दुल्ला नहीं है?

❑

फोटो वाला लेटरपेड

कल ही डाक में एक कवि मित्र का पत्र आया। इस पत्र में उल्लेखनीय बात यह थी कि उनके लेटरपेड पर उनका फोटो भी छपा था। इसके पहले वे मुझे पोस्टकार्ड ही लिखते थे। वैसे पिछले कई महीनों से उनका कोई पोस्टकार्ड नहीं आया था लेकिन मुझे लगता है कि साहित्य में उनकी स्थिति लेटरपेड छपवाने की हो गई थी सो इसी बहाने उन्होंने मुझे लेटरपेड भी दिखा दिया और मेरा स्मरण करते हुए इस बात की जानकारी भी दे दी कि उनकी रचनाएँ कहाँ-कहाँ छप रही हैं। उनकी रचनाओं के बारे में मेरे विचार चाहे जैसे हों लेकिन उनकी फोटो के बारे में मेरे विचार हमेशा अच्छे रहे हैं। मैं तो इसे साहस का काम मानता हूँ। मेरी इच्छा भी कई बार हुई कि अपने लेटरपेड पर अपना फोटो छपवा लूँ लेकिन हिम्मत नहीं हुई। और वह इसलिए नहीं हुई कि मेरे बाल समय से पहले सफेद हो गए। लेटरपेड पर सफेद बाल वाला निस्संदेह प्रभावशील नहीं हो सकता, यह मैं जानता था। मेरा संकलनुमा लेटरपेड जब किसी के पास पहुँचेगा तो चाहे उसे अच्छा लगे या न लगे, मुझे तो बिल्कुल अच्छा नहीं लगेगा। मेरे बारे में साहित्य-जगत् में निश्चित रूप से धारणा बन जाएगी कि मैंने बाल धूप में ही सफेद किए हैं। फिर दूसरी झिझक इस बात की थी कि चेहरे-मोहरे से मैं लेखक नज़र ही नहीं आता। लेखकों और कवियों के चेहरे कुछ अलग तरह के होते हैं जो फोटो में अलग और प्रत्यक्ष रूप से बिल्कुल अलग होते हैं। जब सही तालमेल ही नहीं बैठता तो फोटो छपवाने से क्या फायदा? यही सोच कर मैंने यह विचार त्याग दिया। लेकिन मित्र के इस लेटरपेड से मेरी इच्छा फिर से भड़क गई है। "छपवा ही लिया जाए लेटरपेड पर फोटो ... देखा जाएगा" वाले विचार मन में आने लगे हैं।

लेटरपेड एक प्रामाणिक सूचनापत्र होता है। हमारे यहाँ एक सज्जन ऐसे हैं जिनके लेटरपेड के एक पृष्ठ के तीन–चौथाई हिस्से में उनके भूतपूर्व होने की सूचनाएँ संगृहीत हैं। अनेकों ऐसी संस्थाएँ हैं, जिन्हें मैं नहीं जानता, उनके वे या तो वे अध्यक्ष रह चुके हैं या फिर सचिव, उपाध्यक्ष या ऐसे ही और कुछ। मैं उनके लेटरपेड से भी बहुत प्रभावित हुआ था। मुझे इस बात का गर्व था कि अपने आसपास ऐसे लोग भी हैं जो केवल किसी संस्था में भूतपूर्व हो जाने के लिए ही पैदा हुए हैं। मैंने उन्हें भी सलाह दी थी कि वे लेटरपेड पर अपनी फोटो छपवा लें।

मेरी इस राय पर उन्होंने गंभीरतापूर्वक विचार किया और बोले, "फोटो तो छपवा लेता लेकिन लेटरपेड में जगह ही नहीं है... पिछले महीने चार संस्थाएँ बन्द हो गई हैं जिनका मैं संरक्षक था... अब मुझे इसमें भूतपूर्व संरक्षक भी छपवाना पड़ेगा... तुम ही कहो कहाँ खाली है जगह?"

उन्होंने अपना लेटरपेड मेरी ओर बढ़ाया। पिछली बार मैंने जो लेटरपेड देखा था उसका अपेक्षा यह अधिक समृद्ध लगा। अब पृष्ठ पर केवल थोड़ी-सी जगह रह गई थी जिसमें कुछ लिखा जा सकता था। मैंने कहा, "यह जगह खाली है... यहाँ छपवा लीजिए।"

वह बोले, "हद करते हो यार... थोड़ी-सी जगह खाली रखी है पत्र लिखने को और तुम कहते हो वहाँ अपनी फोटो छपवा लूँ... छपवा लूँगा तो पत्र कहाँ लिखूँगा?"

मैंने कहा, "आपको पत्र लिखने की जरूरत भी क्या है? आप तो बस यह लेटरपेड का एक पृष्ठ भेज दिया करें... लोग समझ जाएँगे कि आप क्या लिखना चाहते हैं।"

मेरी इस बात से वे नाराज हो गए। बोले, "हम समझते हैं कि तुम क्या कहना चाहते हो... इतनी संस्थाओं के अध्यक्ष- उपाध्यक्ष हैं इसका यह मतलब नहीं कि हम केवल चंदा खाकर ही जी रहे हैं। बोलो यही मतलब है ना तुम्हारी बात का? तुम समझते हो हम केवल चंदा उगाहने के लिए ही इस लेटरपेड पर लोगों को पत्र लिखते हैं?"

मैंने कहा, "मेरी बात का आशय यह नहीं था।"

वे बोले, "यह नहीं था तो क्या था?"

मैंने उनकी ओर देखा। वे अपने लेटरपेड के पृष्ठ में खाली जगह की स्टडी कर रहे थे। अभी-अभी जो चार संस्थाएँ उनकी कृपा से मृत हुई थीं, उनके भूतपूर्व होने के नाते वे चाहते थे कि इस लेटरपेड में उन संस्थाओं का उल्लेख हो जाए।

मैंने कहा, "दरअसल आपका व्यक्तित्व केवल इस लेटरपेड के कारण ही है मैं सोचता हूँ कि आप इतनी संस्थाओं का क्रियाकर्म सम्पन्न कर चुके हैं कि आपका नाम गिनीजबुक में आ जाएगा। आप इस लेटरपेड का साइज बढ़ा दीजिए और इसका पृष्ठ अखबार साइज का कर दीजिए। अभी तो आपकी उम्र काफी है। पाँच-दस सालों में यह अखबार साइज लेटरपेड भी आपको छोटा पड़ने लगेगा।"

वह बोले, "छोटा तो आज ही पड़ सकता है। मैंने कई संस्थाओं के नाम पहले से छोड़ रखे हैं।"

मैंने कहा, "यह अहसान आपने इस लेटरपेड पर क्यों किया? उन बेचारी संस्थाओं ने आपका क्या बिगाड़ा था? आपने उन्हें गौरवान्वित क्यों नहीं होने दिया?"

वे बोले, "बात यह है कि उन संस्थाओं के उल्लेख से मेरी छवि धूमिल होने की संभावना है। मैं नहीं चाहता कि मात्र लेटरपेड के कारण ही मेरी छवि धूमिल हो।"

मैं उन महान संस्थाओं के नाम जानने के लिए उत्सुक था और यह भी जानना चाहता था कि देश में ऐसी कौन-सी संस्थाएँ हैं जो इस संस्थाप्रेमी सज्जन की सत्क-पब्लिसिटी से बची हुई हैं। मैंने कहा, "कुछ विस्तार से बताइए मैं आपसे कुछ सीखना चाहता हूँ।"

वह बोले, "सन् 86 में मैं जुआड़ी संघ का अध्यक्ष था, उसी वर्ष युवा चोर समिति का भी गठन हुआ तो उसका भी भार मेरे कंधों पर आ गया। बाद में 87 में अखिल भारतीय डकैत संघ बना। वहाँ भी मैं था। सफाई कामगार यूनियन में भी पदाधिकारी रहा। फिर 88 में कुछ बलात्कारी लोगों ने बलात्कार संरक्षण समिति बनाई, उसमें उन्होंने मुझे संरक्षक बना दिया। और इस वर्ष तो स्थिति यह है कि अनेक लोग अनेक तरह की समितियाँ बना रहे हैं पुलिस अत्याचार मुक्ति समिति, उठाईगिर संघ, भंडाफोड़ समिति आदि। अब ऐसी समितियों का नाम यदि अपने लेटरपेड पर दूँगा तो मेरी छवि धूमिल होगी या नहीं? बोलो?"

मैंने कहा, ''इसीलिए तो मैं आपको सलाह दे रहा हूँ कि अपने लेटरपैड पर अपना फोटो जरूर छपवा लीजिए। चेहरे से आप काफी शरीफ नजर आते हैं इसलिए लोग संस्थाओं के नामों के साथ आपकी फोटो देखकर यह राय जरूर बनाएँगे कि शरीफ आदमी गलत जगह फँस गया है।''

वे मुस्कुराए। बोले, ''तुम्हारी सलाह पर विचार करूँगा। फिलहाल तो मेरे लेटरपैड में जगह नहीं है।''

फोटो का महत्त्व मैं समझता हूँ। प्रसिद्ध फुटबाल खिलाड़ी पेले की केवल फोटो से ही सारी चिट्ठियाँ उनके घर पहुँच जाया करती थीं। लोग लिफाफे पर उनकी फोटो लगा दिया करते थे, बस। मैंने भी विनम्र प्रयास किया था। एक लिफाफे में अपनी ही तरफ से एक पत्र लिखा और उस पत्र में अपना ही पता दिया और फिर लिफाफे के ऊपर अपनी फोटो चिपका कर दूसरे शहर में उसे पोस्ट कर दिया। लेकिन वह पत्र मुझे नहीं मिला। दोस्तों ने कहा, ''फोटो के साथ केवल पिन कोड ही लिख देते तो बात बन जाती।'' बाद में पोस्टमास्टर जनरल से एक लिफाफा आया जिसमें मेरा वह पत्र था जिस पर मैंने अपना पता लिखा था और उस पर टिप्पणी लिखी थी, ''पाने वाले का पता अधूरा होने के कारण भेजने वाले को वापस।''

कहने का मतलब यह कि अपनी फोटो के बारे में मैंने जो उच्च विचार बना रखे थे, पी एम जी साहब ने ध्वस्त कर दिए। डाक-तार विभाग ने यह धारणा भी बना ली होगी कि मुझसे बड़ा बुद्धिमान आदमी इस देश में और कोई नहीं मिलेगा।

पिछले दिनों फोटो छपवाने के मामले में एक सज्जन ने क्रांतिकारी कार्य किया। वैसे लेटरपैड पर कई मित्रों के फोटो मुझे देखने को मिलते थे। फोटो भी होते थे और उनका परिचय भी होता था कि वे देश के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं या प्रसिद्ध कवि और सुप्रसिद्ध लेखक हैं। ऐसे मित्रों के पत्र पाकर मैंने सूची बना ली कि देश में कौन प्रसिद्ध लेखक, कवि है। आलोचना साहित्य और बड़े लेखकों की किताबें पढ़ कर यह तय करने की अपेक्षा कि कौन-कौन प्रसिद्ध साहित्यकार हैं, मुझे यह काम आसान लगा। इस दिशा में नया मोड़ दिया था उस सज्जन ने और वह था कि विजिटिंग कार्ड पर ही उन्होंने अपनी फोटो छपवा ली थी। अब देखिए इसका लाभ। आपने अपना विजिटिंग कार्ड अफसर की टेबल पर भेजा। वह फोटो देखकर तुरन्त निर्णय ले लेगा

कि इस सज्जन को अन्दर बुलाना है या बाहर से ही खिसका देना है। या फिर फोटो देखकर वे विचार कर सकते हैं कि उन्होंने आपको कहाँ देखा है। सही जगह पर देखा हो तो बात और है वर्ना वे कुछ भी सोच सकते हैं और उनका समय भी बर्बाद नहीं होगा।

इस सज्जन से मेरी मुलाकात अचानक हो गई। इसके पहले मैं उनसे कभी नहीं मिला था। उन्होंने जेब से अपना फोटोयुक्त विजिटिंग कार्ड निकाला और बोले, "मैं आपसे परिचित हूँ... कभी घर पर आइए... यह रहा मेरा कार्ड।"

मैंने कार्ड देखकर कहा, "यह कार्ड आपका ही है ना?"

वह बोले, "बिल्कुल। लेकिन आपने यह सवाल क्यों किया?"

मैंने कहा, "फोटो में आप काफी जवान और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी लग रहे हैं।"

मैं नहीं जानता कि वे मेरी इस टिप्पणी से प्रसन्न हुए या नहीं लेकिन मैंने देखा कि वे और भी लोगों को अपना विजिटिंग कार्ड दे रहे थे। यह मेरी मूर्खता ही है कि फोटो देखकर मैं व्यक्ति का आकलन करने लग जाता हूँ। दरअसल फोटो फोटो होता है। उसमें बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जो मेरी नंगी आँखें देख नहीं पातीं। अखबारों में छपे फोटो देखकर मैं लोगों का विश्लेषण करने लगता हूँ, जबकि ऐसा नहीं करना चाहिए। जब फोटो छपी है और उसके साथ पूरी जानकारी छपी है तो मुझे विश्वास कर ही लेना चाहिए। बहुत से लोग कर रहे हैं लेकिन मैं ऐसा क्यों नहीं कर पाता यह तो मैं भी नहीं जानता। फोटो की यह राजनीति मुझे सूट नहीं होती। फोटो और व्यक्ति में मुझे बड़ा अन्तर नजर आने लगा है। ऐसा क्यों होता है, मैं लोगों के दुहरे चरित्र को फोटो देखकर क्यों नहीं पचा पाता, यह मैं नहीं जानता।

और अन्त में उस कवि मित्र को धन्यवाद जिसका लेटरपेड देखकर मैंने यह रचना लिखी। लेकिन कवि मित्र इस मुगालते में न रहें कि उनके लेटरपेड में छपी फोटो के कारण ही यह व्यंग्य बना है। दरअसल इस हफ्ते मुझे दो पत्र और मिले हैं जिसमें लोगों ने अपनी फोटो लेटरपेड के पृष्ठों पर छपवा रखी हैं और फोटो में वे काफी धाकड़ नजर आते हैं।

❑

मुँह की दुर्गन्ध तो रहेगी

इधर हमारे हबीब भाई इसलिए परेशान हैं कि बीमारियाँ ठीक से चल ही नहीं रही हैं शहर में। कहाँ गए वे दिन जब एक बार हैजा आता था तो हजारों रुपया की दवाइयाँ बिकती थीं। बीमारियों के उस स्वर्णयुग को याद कर हबीब भाई उदास हो जाते हैं। कुछ-कुछ डेंगू और फ्लू ने अपना योगदान हबीब भाई की आर्थिक स्थिति बढ़ाने में दिया था। उन सम्पन्न बीमारियों का ही आशीर्वाद है कि आज नगर में हबीब भाई की दवाई की दुकान न केवल अपनी पहचान रखती है बल्कि हबीब भाई की तरह काफी मोटी भी हो गई है।

हबीब भाई ने हमसे कहा—यार, क्या हो गया साली बीमारियों को एक नहीं आ रही है एक महीने से ग्लूकोज की एक बाटल नहीं बिकी उल्टी-दस्त बिल्कुल नहीं चलेगा क्या?

मैंने कहा—हबीब भाई, आप यह सोच कर खुश होते हो कि कोई बीमार पड़ जाए। दूसरों के दुःख में खुश होना अच्छी बात नहीं है।

वे बोले—ये तो हम भी जानते हैं। लेकिन एक बात बताओ कि कोई बीमार नहीं पड़ेगा तो हमारा भट्ठा बैठ जाएगा ना। एक लाख की दवाइयाँ हैं स्टॉक में सब की एक्सपायरी डेट खत्म हो गई तो समझो कि हम तो गए बारह के भाव से, ये दवाई की दुकान बन्द करके जाना पड़ जाएगा हमको भी फकीर बन कर कहीं।

हबीब भाई की बातों में मुझे बहुत बड़ी फिलासफी नजर आई। सचमुच हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही जीने वाले लोग होकर रह गए हैं। अपने व्यक्तिगत

लाभ के लिए लोगो को बीमार देखना हमे अच्छा लगता है। यह देश बीमार लोगों का देश है। हम शरीर से भी बीमार हैं और मानसिकता से भी। स्वस्थ बाते सोचना हमे अच्छा नही लगता। ऐसे देश मे बीमारियो के न होने से हबीब भाई का चिंतित हो जाना स्वाभाविक है। हबीब भाई की जगह मैं होता और मेरी भी कफन बेचने की दुकान होती तो मैं भी खुदा से रोज दुआ करता कि वह दो-चार ग्राहक रोज भेजे मेरी दुकान पर। यह पेट हम पर इतना हावी हो गया है कि अपने सिवाय दूसरो के बारे मे कुछ सोचने ही नही देता।

हबीब भाई बोले—यार, इस पर कुछ लिख दो मजा आ जाएगा। लेकिन हमारी दवाई की दुकान का नाम जरूर लिखना इससे हमारा एडवर्टाइजमेन्ट होता है।

अब लेखक और बीमारियो के बारे मे क्या लिखूँ? हमे तो समाज की विसगतियाँ पकडने की बीमारी है। यह बीमारी हमारे साथ नहीं होती तो हमारी यह दुकान भी बद हो जाती।

मैं एक सज्जन को जानता हूँ जिन्हे अजीब किस्म की बीमारी है। उनका मुँह बन्द ही नही रह सकता। और अब तो यह बीमारी इतनी क्रानिक हो गई है कि उनका मुँह बन्द हो जाएगा तो वे चल बसेगे। बात चाहे राजनीति की हो या नगर की किसी दुर्घटना की हो उस पर मुँह खोलना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। सविधान मे अपने विचार व्यक्त करने का जो मौलिक अधिकार हमे मिला है उसका सबसे अधिक लाभ उन्होंने ही उठाया है। यदि आपने उन्हे अपने विचार व्यक्त करने के लिए आमंत्रित किया तो समझ लीजिए कि वे अपनी थूक के माध्यम से नाना प्रकार के जीवाणु आप तक नि सकोच पहुँचा देगे। उनकी खास विशेषता यह है कि उनके मुँह से दुर्गन्ध अच्छी आती है। मैंने एक बार इस महक का रहस्य जानना चाहा तो वे मुझसे बोले—मुँह में पायरिया हो गया है।

मैंने कहा इसका इलाज क्यो नहीं करवाते? देखिए कितनी दुर्गन्ध आ रही है आपके मुँह से।

वे कुछ देर गभीर हो गए। उनका मुँह अन्दर ही अन्दर विचार कर रहा था कि बातो को कहाँ से गति दी जाए। मेरे सवाल पर उन्होने चिंतन किया और बोले—

यही आदत तो अपने यहाँ के लोगों में बुरी है अरे भई दाँत मेरे सड़े हैं दुर्गन्ध मेरे मुँह से आती है तो दूसरों को क्यों तकलीफ होती है माफ करना भइया, हमने तो ऐसे लोग भी देखे हैं जो ऊपर से नीचे तक दुर्गन्ध में सराबोर रहते हैं लेकिन लोग उनसे घंटों चिपके रहते हैं। सच बात तो यह है कि हमसे तुम्हारा कोई मतलब नहीं है तो तुम्हें हमारे मुँह से दुर्गन्ध आ रही है आज हमें बन जाने दो मिनिस्टर फिर देखना ये दुर्गन्ध कहाँ जाती है हमसे मुँह सटाकर घंटों बातें करते रहोगे अपने मतलब की। समझे?

दुर्भाग्य से ये बातें हबीब भाई की दवाई की दुकान के सामने ही हो रही थी। जब वे वायुमंडल की शुद्ध हवा में अपना योगदान देकर आगे बढ़े तो हबीब भाई हमसे बोले—साला बात करता है तो बहुत बस्साता है इच्छा होती है कि दो जूते मार दूँ साले को।

मैंने कहा—तो मार क्यों नहीं देते?

हबीब भाई बोले—अपना ग्राहक है ना यार महीने में पच्चीस-तीस रुपये की दवाई ले जाता है अपनी दुकान से ग्राहकों को जूता मारेंगे तो अपनी दुकान कैसे चलेगी, बोलो!

अपनी दुकान चलाने की सबको फिकर है। किसी के मुँह की दुर्गन्ध का एहसास हमें उस समय तक नहीं होता जब तक उस दुर्गन्ध से कहीं न कहीं हमें लाभ मिलता रहता है। यह दुर्गन्ध समाज को हो सकती है। यह दुर्गन्ध बीमारी के सैकड़ों कीटाणु स्वच्छ वायुमंडल में घोलकर हजारों लोगों को बीमार कर सकती है हमें इसकी चिन्ता नहीं है। हमें चिन्ता केवल इस बात की है कि इन मरने वालों से हमारा कोई रिश्ता है तो बस केवल लाभ का रिश्ता है। वे बीमार रहें और हमारी दुकान चलाते रहें यही हमारी सोच का स्तर है।

यदि हबीब भाई उस दुर्गन्ध फैलाने वाले से प्रसन्न हैं तो इसमें उनका दोष नहीं। अदालतों में जब बलात्कार का मुलजिम पहली बार आता है तो कानून के रक्षक यह सोचकर खुश होते हैं कि उन्हें लाभ दिलाने वाला आ गया है। मुजरिम को छुड़ाना वकील का नैतिक कर्त्तव्य है। वह खुश होता है और अपने कर्त्तव्य के प्रति हमेशा सजग रहता है। उसकी क्लायन्टेज का सवाल है। एक बार बन गई तो उम्र भर साथ देगी।

डॉक्टर उस वक्त खुश होता है जब नगर में कोई वायरस आ जाता है। पुलिस उस समय प्रसन्न होती है जब किसी बड़े घर की लड़की का अपहरण होता है और लड़की का बाप अपनी प्रतिष्ठा के लिए पुलिस की खुशामद करता है। हमारी प्रसन्नता के सारे पैमाने अपने व्यक्तिगत लाभ ही होते हैं। सरकार को यदि शराब के ठेके में करोड़ो रुपये की आय होती है तो यह कहना बेमानी लगता है कि शराब में दुर्गन्ध आती है शराब से कई घर बरबाद होते हैं, शराब प्राणों के लिए घातक है।

अब हमारे हबीब भाई इसलिए परेशान हों कि शहर में बीमारियाँ ठीक नहीं चल रही हैं तो उनकी परेशानी वाजिब ही लगती है। आखिर वे भी तो हमारे इसी समाज के अंग हैं।



जूतियों के बहाने

बड़े लोगों का सम्मान किस बहाने कहां हो जायेगा कोई नहीं कह सकता।

वे कत्थक नृत्य का कार्यक्रम देखने आए थे। सिल्क का कुरता और कंधे पर पशमीना शॉल, पैरों में जरीदार जूतियां किसी क्लासिक कार्यक्रम को देखने या सुनने के लिए इन तीन चीजों के अलावा चेहरे पर एक पारखी दर्शक या श्रोता का भाव होना चाहिए। भाव के मामले में वे वैसे भी धनी हैं। दिन भर भाव-ताव के अलावा उन्होंने कुछ किया भी नहीं है। मौका पड़ने पर भाव देते हैं और दिखाते भी हैं। कुल मिलाकर बड़े लोगों में जो लक्षण होने चाहिए, वे सब के सब उनके अन्दर ठसा-ठस भरे हैं।

सो हुआ यों कि "मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो" के साथ जैसे ही तबले पर थाप पड़ी, उधर उनकी जरीदार जूतियों पर किसी ने थाप मार दी। वे बोल, परन और भाव भंगिमा देखते रहे या यूं कहना सही होगा कि विभोर होकर देखते रहे लेकिन मन कर रहा था कि एक बार गद्दी पर आ कर बम्बई बात कर भी लें। मारकेट पोजीशन जरा टाईट चल रही थी। लेकिन उन्हें फिर अचानक याद आ गया कि वे कत्थक देख रहे हैं, केवल देख ही नहीं रहे हैं, एक बड़े आदमी की तरह देख रहे हैं। सो उन्होंने चेहरे पर पूरी तरह मुग्ध होने के भाव बनाए और जैसे ही नृत्य सम पर आया बोले—वाह! क्या बात है।

वे कई अच्छे कार्यक्रमों में विशेष रूप से आमन्त्रित होते हैं इसलिए ऐसे जुमले उन्हें याद रखने पड़ते हैं और मौके पर उनका सही जगह सही उपयोग करना पड़ता है। पिछली बार शेयर में गिरावट आ गई और उनके मुँह से "वाह क्या बात

है।' निकल गया था। उनके पार्टनर ने उन्हें याद दिलाया कि वे शेयर मार्किट की बात कर रहे हैं, कत्थक की नहीं। बड़े लोग हैं। ऐसी हसीन भूल उनके खाते में सम्मान जमा कर ही देती है। मुनीम जी लोगों को कहते हैं—मालिक कितने भोले हैं उन्हें मुनाफे और घाटे का ध्यान ही नहीं रहता शेयर गिरने पर लाखों का नुकसान हो गया लेकिन मालिक कहते हैं—क्या बात है।

मैं इस तरह की फालतू बातों में आपका समय नष्ट करना नहीं चाहता, लेकिन बड़े लोगों की फालतू बातों में रस लेने की जो परम्परा अपने यहाँ है उसे नकारना भी ठीक नहीं है। और यदि आप इसे फालतू बात कहते हैं तो मैं समझता हूँ कि आपसे फालतू आदमी और कोई नहीं हो सकता। हम लेखक हैं इसलिए जानते हैं कि किसी कथानक में फालतू चीजों का कितना महत्त्व होता है। दरअसल आपको जो चीजें फालतू लगती हैं वे फालतू हैं या नहीं इसका निर्णय समीक्षक करता है और अपने यहाँ फालतू बातों की सही समीक्षा करने वाले अनेक स्थापित समीक्षक हैं।

कत्थक कोई डेढ़ घंटे चला, चक्करदार परन से लेकर लखनऊ घराने के अंदाज से जयपुर शैली तक उनके चेहरे के भाव बड़े लोगों की तरह ही थे। नृत्यांगना के चेहरे पर पसीने की बूँदें उभर आई थीं। उन्होंने महसूस किया कि नाचना परिश्रम का काम है। साधना मेहनत से ही आती है। चलिए, उन्होंने कम-से-कम ऐसा सोचा तो सही। बड़े लोग हैं, जाने क्या-क्या सोचते हैं इस परिश्रम और मेहनत के बारे में। कत्थक देख रहे हैं, कोई बिजनेस नहीं कर रहे हैं या ऐसा सोचने में हर्ज ही क्या है?

कत्थक समाप्त होने के बाद इस कहानी की शुरुआत होती है। अभी तक आपने जो पढ़ा सब फालतू था। मैंने पहले ही कहा है कि हम लेखक कभी-कभी बड़ी फालतू बात लिखते हैं और इन फालतू बातों को बाद में एक रोअलिंग देकर अपने को लेखक सिद्ध करते हैं, लेकिन आप इस बात की चिन्ता न करें।

वे गरिमामय ढंग से उठे। बड़े लोगों के उठने-बैठने में भी एक गरिमा होती है। इसे आप भले ही न समझें लेकिन वह आदमी जरूर समझ लेगा जो बड़े लोगों के साथ उठता-बैठता है। बड़े लोगों के साथ उठने-बैठने वालों का भी सम्मान होता है और यह सम्मान मूल रूप से किसी बड़े आदमी की जड़ से ही जुड़ा होता है। कुछ लोगों का सम्मान जब समाज में कम होने लगता है तो वे कुछ दिनों के लिए बड़े लोगों

के साथ उठने- बैठने लगते हैं। इस तरह बूस्टिंग डोज लेकर वे फिर वापस अपनी सही जगह पर आ जाते हैं।

सभागार के कोने में जब उन्हें अपनी जरीदार जूतियाँ नजर नहीं आई तो एक बार बहुत ही थोड़ी देर के लिए उनके चेहरे पर चिंता की हल्की-सी लकीर उभरी लेकिन वह लकीर इतनी हल्की थी कि लोग देख ही नहीं पाए। मैं उनके बहुत पास था। दरअसल बड़े लोगों के पास रहने का भी अपना अलग मजा है। कुछ फालतू किस्म के लोग इसे 'ठसना' कहते हैं। मैं कहता हूँ कि मूर्ख हैं वे लोग। मुझे बताइए कि आज ऐसा कौन है जो किसी से नहीं ठसा है। मौका देखकर और अपने मतलब से ठसने वालों की कमी नहीं है, ये बात मैं भी जानता हूँ और आप भी जानते हैं। साहबों के साथ ठसने का मोह किसे नहीं होगा? बड़े अधिकारियों के साथ ठसने की इच्छा किसकी नहीं होगी? लेकिन क्या आप इसे ठसना कहेंगे? कोई अच्छा शब्द नहीं मिलता आपको? आपकी हिन्दी इतनी लचर हो गई है? किसी बड़े आदमी के साथ रहने को भी आप 'ठसने' के नजरिये से ही देखते हैं? हद हो गई कितने गिर गये हैं मानवीय मूल्य! कितनी कुंठा भर गई है आपके अन्दर!

वह बोले, "इतना अच्छा कत्थक कभी नहीं हुआ इस नगर में... इस लड़की को कोई अच्छा ब्रेक मिल जाए तो वह देश का नाम रौशन करेगी।"

फिर उनके चेहरे पर एक हल्की-सी लकीर उभरी। वे सोच रहे थे कि उन्हें 'रौशन' शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए था। बड़े लोग इसी तरह शब्दों को तौलते हैं कौन-सा शब्द कब और कहाँ सही बैठता है जिससे उनका सम्मान लोगों में बना रहता है, इस बात की चिंता हर बड़ा आदमी करता है। अपने प्रधानमंत्री जी जब टी वी पर बोलते हैं तो कितने नपे-तुले शब्दों का उपयोग करते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि बड़े लोगों का सम्मान किस बहाने कहाँ हो जायेगा कोई नहीं कह सकता।

कुछ और लोग जो कत्थक की चर्चा कर रहे थे, बिल्कुल चुप हो गए। अब जो फुसफुसाहट हो रही थी वह इस प्रकार थी—

—एक हजार से कम की तो नहीं होगी?

—क्या बकते हो... सोने और चाँदी का काम हुआ था उस पर... जयपुर के विशेष कारीगरों ने बनाई थीं... एक साल पहले आर्डर दिया था

—उनका नाप लेने प्लेन से आदमी यहाँ आया था। मैं तो उस दिन उनके साथ ही था। क्या पैर है उनके बड़े लोगों की बात ही और है।

—तो फिर पाँच हजार मानकर चलें।

—अरे भाई साहब पाँच हजार तो केवल नाप लेने में ही लग गए। तुम उन्हें आज तक छोटा आदमी ही समझ रहे हो मेरे सामने उन्होंने कहा था कि सोने का काम सही होना चाहिए वे इसी तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए जूतियाँ बनवा रहे हैं।

—फिर तो चमड़ा भी विदेश का ही होगा? क्यों?

—नहीं, चमड़ा अपने देश का है। मेरे सामने उन्होंने कहा था कि वे स्वदेशी चमड़ा ही अपने पैरों के लिए पसंद करते हैं।

—क्या जमाना आ गया है भई अब तो इस देश में जूतियाँ भी सुरक्षित नहीं हैं।

मैं उनकी बात सुन रहा था। पिछले दिनों कुछ इसी तरह मेरी चप्पलें भी चोरी हो गई थी। मैं संकट की इस घड़ी में कार्यकर्ताओं की बैठक में भईयाजी का उद्‌बोधन सुनने गया था। मेरा उद्‌बोधन हो गया। तीस रुपए की चप्पल थीं। उस समय भी मैंने ऐसा ही सोचा था कि कितनी गिरावट आ गई है मानवीय चरित्र में। हमारी पार्टी में ऐसा कौन हो सकता है जिसकी नजर मेरी नई चप्पलों पर उद्‌बोधन के पहले से थी। मैं सोचने लगा कि कौन व्यक्ति उद्‌बोधन के बीच में ही उठा था। कौन बाहर गया था। लेकिन मुझे कुछ याद नहीं आया। मैं सोच रहा था कि पार्टी कमजोर नहीं होनी चाहिए। इससे देश टूट जायेगा। इसलिए ध्यान से सुनो उद्‌बोधन, भईया जी का। कभी-कभी ज्यादा निष्ठा दिखाने से तीस रुपए की चपत पड़ जाती है, यह मैंने पहली बार जाना। इस संकट की घड़ी में मैं जितना दुःखी हुआ था, शायद ही कोई हुआ हो इस मार्मिक उद्‌बोधन में।

वे थोड़ी देर खड़े रहे। क्लासिक नृत्य की बातें करते रहे। कलाकारों का सही सम्मान न होने से दुःखी होते रहे। चिंता भी व्यक्त की। लेकिन केवल चेहरे के भावों से। बोले कुछ नहीं।

चर्चा अभी भी चल रही थी।

—इतने अच्छे कार्यक्रम में घटिया लोगों को आने नहीं देना चाहिए।

—साले, जूतों पर नीयत खराब करते हैं मुझे साला दिख जाये तो अभी थानेदार से कहकर उसे बन्द करवा दूँ।

—तो एक काम करते हैं चलो थाने चलकर एफ आई आर डलवा दें

—इसी चमचागिरी में तुम बर्बाद हो रहे हो। उनके चेहरे पर शिकन तक नहीं है और तुम्हें एफ आई आर की पड़ी है। चुप रहो। बड़े लोग ऐसी छोटी चोरी पर ध्यान नहीं देते।

—इतनी कीमती जूतियाँ उठ गईं और तुम इसे छोटी चोरी कहते हो? मैं तो कहता हूँ चोर पकड़ में आ जायेगा। वह सोने के तार निकाल कर बेचने जायेगा ही

—तुम तो ऐसी बात कर रहे हो जैसे वह तुम्हारे पास ही बेचने आयेगा चोर अब पहले जैसे चोर नहीं रहे। जूतियाँ रातो रात कहाँ चली जायेंगी यह पुलिस भी नहीं जान सकती।

लगभग सभी लोगों को पता चल गया कि ज़रीदार जूतियाँ कोई ले गया कत्थक की चर्चा कोई नहीं कर रहा था। तबले और गायन की बात कोई नहीं कर रहा था। लोग कितनी जल्दी भूल गये कि कत्थक एक नृत्य ही नहीं साधना है। हमारे देश की कला है जिस पर हमें गर्व है।

वे कत्थक की बारीकियों पर बातें करते हुए नंगे पैर अपनी कार तक आ गए। ड्राईवर ने दरवाजा खोला। उन्होंने कलाकारों को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कार की पिछली सीट पर बैठ गए। उनके चेहरे पर एक कलाप्रेमी के भाव थे और हमें लग रहा था कि वे कत्थक से बहुत प्रभावित हैं और इस कार्यक्रम से बेहद प्रसन्न हैं।

जूतियों की फिक्र हम जैसे छोटे लोगों को होती है। बड़े लोगों की चर्चा हम करें, यही बड़े लोगों का सही सम्मान है। इसीलिए कहता हूँ बड़े लोगों का सम्मान किस बहाने कहाँ हो जायेगा, कोई नहीं कह सकता।

□

नेताजी के जनाज़े में

मन्त्रिमंडल का विस्तार होने के पहले ही नेताजी चल गये। इन्ना लिल्लाहे व इन्ना अलैहे राजेऊन।

उन्होंने संकट के समय पार्टी को कन्धा दिया था। फिर उनकी पार्टी की सरकार बनी। वे सरकार को कन्धा देते रहे। आज लोग उन्हें कंधा देने जमा हो रहे थे।

नेताजी अल्पसंख्यक वर्ग के थे। राजनीति के साथ जब यह शब्द जुड़ता है, तो मुख्यमंत्री भी ध्यान देते हैं। उन्होंने कहा था—इस बार जरूर आप को लेंगे अभी आलाकमान से बात करना बाकी है आप थोड़े दिनों तक संगठन का काम देखिए।

और संगठन का काम देखते-देखते ही उनकी रूह कब्ज हो गई। मौत का फरिश्ता आया और उन्हें ले गया पूरे राजकीय सम्मान के साथ। यही आलाकमान का हुक्म था। सिर-आँखों पर। उसके सामने हम सिर्फ नत-मस्तक ही हो सकते हैं, और नेताजी की ही भाषा में कहें तो सिजदा ही कर सकते हैं।

जनाजा जोहर की नमाज के बाद निकलेगा। कुछ लोग छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस से आने वाले हैं। मुख्यमंत्री के संवेदना सन्देश की भी प्रतीक्षा है। दिल्ली से भैया जी ने हॉट-लाइन पर शोक व्यक्त किया है, और कहा है कि अल्पसंख्यकों के लिए यह एक अभाव है जिसे सहने-करने की शक्ति ईश्वर प्रदान करे। जिला पार्टी के अध्यक्ष

और कोषाध्यक्ष व्यक्तिगत रूप में मिलने आ चुके थे। अखबारों में अलग्वद उन्के दुःखद निधन का समाचार आ चुका था, इसलिए कोई चिन्ता की बात नहीं थी। सहकारिता, विद्युत, सड़क, सिंचाई, लोक निर्माण, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, शिक्षा विभाग, जंगल डिपार्टमेंट, पुलिस आदि से लेकर नगरपालिका तक सभी प्रभारी-अधिकारी एक बार आ चुके थे। कृषि विभाग वाले भोपाल गये थे इसलिए नहीं आ सके। लगभग सभी विभागों ने अपनी श्रद्धांजलि दे दी थी। स्थानीय मान्यता यह थी कि ये सारे विभाग अब तक नेता जी के कन्धों के नीचे थे। ट्रांसफर से लेकर प्रमोशन तक। नेताजी ने हर अधिकारी को अपना बहुमूल्य कन्धा दिया था।

नेताजी अंतिम समय तक खादी के कपड़ों में रहे। बैठक में लोभान और उदबत्ती का मिला-जुला धुआँ अभी तक था। कुछ लोग आयतल कुरसी पढ रहे थे। एक सफेद चादर में मय्यत को ढाँक दिया गया था। बड़े भाई साहब ने सिर पर रूमाल बाँध रखा था। जो लोग बैठक में आते, उन्हें बड़े भइया डबडबाई आँखों से देखते जैसे कहना चाहते हों—हमारा तो सब कुछ लुट गया... अब मंत्रिमण्डल का विस्तार हो भी जाये तो क्या!

नेताजी की बैठक में इस फानी दुनिया का एहसास होता था। बाहर आँगन में कुछ कुरसियाँ रखी थी। दो चारपाइयाँ भी लगी थी। जिस पर सुनुल भाई अण्डे वाले, इदरिस भाई उदबत्ती वाले, निजाम भाई प्रेस वाले और बाबा मिस्त्री जमे थे। याकूब भाई चक्की वाले, नजीर भाई और काजी साहब दूसरी खाट पर थे। कुरसियाँ सरकारी विभाग के अच्छे लोगों के लिए थी, जिस पर कुरैशी साहब, हक साब, खान साहब, नवाब मियाँ और तौकीर बाबू बैठे थे।

मैं और बब्बू मियाँ अस्लाम अलैकुम करते हुए इन कुरसियों की ओर बढ गये। खाटवालों ने हमे घूरकर देखा। मेरी बात तो समझ मे आती थी, लेकिन बब्बू मियाँ का खाट से कुरसी का बढ़ता स्तर लोगों को नागवार गुजर रहा था। अब हम उन्हें क्या बताते कि सभी को एक दिन उसी रास्ते पर जाना है।

कुरैशी साहब मडी वाले मुझे देखकर बोले—आइए, इधर आइए मैं जानता था। आप आयेंगे ही, इसीलिए आपके वास्ते कुर्सी खाली रखी है।

बात दरअसल यह थी कि वे बहुत देर से बाहर अकेले बैठे-बैठे बोर हो रहे थे, और उन्हें अपने लायक मुस्लिम जमात मे बात करने वाला कोई आदमी नहीं मिल रहा था।

मैंने कहा—सुनाओ कब तक निकलेगा जनाजा?

वे बोले वह तो उसी दिन निकल गया, जब अध्यक्ष का चुनाव हुआ था मंडी मे। ईमानदारी से काम किया तो इसका नतीजा यह हुआ कि सालो ने मुझे आउट ऑफ डिविजन पाटुर्नी म फेक दिया अब हालत तो तुम देख ही रहे हो मडी की। रोज व्यापारी धान खरीदी बंद कर रहे हैं। किसान परेशान हैं सो अलग। अब हम लोग मौसमवाले हो जाते है दल के रहो तो भी यही हाल है।

मैंने उन्हें याद दिलाया कि मैं नेताजी के जनाजे की बात कर रहा हूँ। कुरैशी साहब चुप हो गये। बब्बू मियाँ ने मेरी ओर देखा और जेब से गोला बीड़ी का कट्टा निकालकर मिट्टी के तेल वाला लाइटर जलाने मे लीन हो गये।

तब तक याकूब गुरुजी भी आ गये। बब्बू मियाँ उन्हें देखकर बोले—क्या हो गुरुजी, बच्चो की छुट्टी कर दी क्या?

जैसी गुरुजी की भीतर ही मुस्कुराने की आदत थी, वे कुछ इसी स्टाइल में अल्पसख्यक मुद्रा म हँसे। बोले—जब से सरकार ने दस धन दो धन तीन प्रणाली शिक्षा जगत में लागू की है, बस छुट्टी ही समझो। लडको के दिमाग मे कुछ घुसता ही नहीं ईमान से, हम इस नयी शिक्षा नीति के नाम से परेशान हैं। अभी तक सरकारी किताबे छपकर नहीं आई हैं . अब छुट्टी न दें तो क्या अपना सिर पीटें?

मैंने कहा—डी ओ साहब से ठीक पट रही है या नहीं?

वे बोले—पटा के रखना पड़ता है। उनके लिए तो सौ खून माफ हैं, लेकिन इधर अपने वालों से गलती हुई नहीं कि तुरन्त ट्रांसफर आर्डर मिल जाता है, पेट लगा है, इसलिए डरकर और दबकर सरकारी नौकरी में लगे हैं।

बात चल रही थी कि मछली वाले साहब अस्सलाम अलैकुम कहते हुए इसी तरफ आ गए। अब्बू मियाँ ने कहा—यार मछली साहब एकाध दिन हमको भी खिलाओ यार मच्छी-वच्छी। हम भी तो देखें सरकारी मच्छी का टेस्ट।

मछली साहब बोले—अरे क्या खिलायें तुमको अपने बड़े आफिसरों से बचे तब ना। अपना डिपार्टमेंट भी इतना खोतुआ हो जायेगा, इसको मुझे उम्मीद नहीं थी। जनता जाये भाड़ में, बस उनके पेट में मच्छी डालते रहो।

बाहर का माहौल देखकर लगता भी नहीं था कि लोग मैयत में आये हैं। अन्दर बैठक में अभी भी लोभान और उदबत्ती की खुशबू आ रही थी। देखा तो अपने वाले नेताजी आ रहे थे। सब लोग खड़े हो गये। यही बात तो हम लोगों में अच्छी है। वैसे अपने नेताजी जनता शासन में मंत्री रहे। ये बात अलग है कि अब जनता पार्टी नहीं रही, लेकिन अपनी कौम के लोग अभी भी अपने नेताजी की इज्जत करते हैं।

पहले वे बैठक में गये। वहाँ थोड़ी देर सत्तार की इस मैयत को देखा और दोनों हाथ सामने बाँधकर कुछ पढ़ते रहे। जनता शासन में जब वे विधान सभा में किसी प्रश्न का उत्तर देते, तो भी अपने दोनों हाथ सामने बाँध लेते थे। जनता पार्टी राहे-लिल्लाह में चली गई, लेकिन उनकी यह आदत अभी भी बनी है। सान्त्वना देने के लहजे में उन्होंने बड़े भइया के कन्धे पर हाथ रखा और बोले—मौत तो बरहक्क है एक दिन सभी को जाना है हिम्मत से काम लो और खुदा पर भरोसा रखो।

बड़े भइया कुछ नहीं बोले। अभी भी वे अपनी आँखें मिचमिचा रहे थे जैसे कहना चाहते हों—क्या भरोसा रखें खुदा पर? हमारा तो सब कुछ बरबाद हो गया हम लुट गये।

अब अपने नेताजी हमारे बीच आ गय थे। मुझे लगा जैसे प्रतिपक्ष ने सरकार को एक श्रद्धांजलि दी और जनता के बीच आ गया।

बब्बू मियाँ अभी तक चुप थे। अपने नेताजी को देखकर उन्होंने मुझे कुहनी मारी और धीरे से कहा—अपने नेताजी से कुछ बात कर लो यार . जनपद की कुछ जमीन और मिल जाती, तो मैं अपनी दुकान बढ़ा लेता।

अब बाहर सब लोग अपने नेता जी को घेरकर बैठे थे। खाटवालों ने अपनी खाटे पास सरका ली थीं। कुछ और सरकारी विभाग वाले भी आ गये थे। मौत का एहसास केवल बैठक मे ही होता था। अपने नेताजी ने मोअज्जम साहब को बुलाकर कहा अब गुस्ल की तैयारी कीजिए। वक्त काफी हो चुका है।

मुझे देखकर नेताजी बोले—क्या लिख रहे हो आजकल? बहुत दिनो से कोई अच्छा व्यग्य नहीं देखा तुम्हारा?

मैने कहा—आप ही कोई अच्छा-सा प्लाट बताइए ना?

वे बोले—इस भ्रष्ट व्यवस्था मे प्लाट की क्या कमी है सरकार के हर महकमे मे भ्रष्टाचार की जडे मजबूत हो रही है ऊपर से दिखने वाली चमक-दमक के पीछे एक खोखलापन रह गया है महँगाई इस कदर बढ़ रही है, कि साँस लेना भी मुश्किल है और ऊपर बैठे लोग विदेशो मे घूम-घूमकर अपनी छवि बना रहे हैं। मै कहता हूँ कि हमे इसके विकल्प के लिए एक सही प्रतिपक्ष की जरूरत है। हम भी मत्री रहे जनता शासन मे हमारी भी सरकार रही, लेकिन रेल किराया और कीमतें हमने नहीं बढने दीं। स्वच्छ प्रशासन का दावा करने वालों को शायद नहीं मालूम कि अस्पताल से लेकर राजधानी तक, बिना पैसे दिये कुछ काम नहीं हो रहा है। आज हम होते तो

मैंने बीच मे ही कहा—सही बात तो यह है कि जनता पार्टी को ही कन्धा दे दिया आप लोगो ने।



लतीफ़ घोंघी

जन्म – 28 सितम्बर, 1935

शिक्षा – बी.ए., एल.एल.बी.

प्रकाशित व्यंग्य कृतियाँ—

तिकोने चेहरे, उड़ते उल्लू के पंख, मृतक से क्षमा-याचना सहित, बीमार न होने का दुख, तीसरे बन्दर की कथा, संकट लाल जिंदाबाद, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, बब्बू मियाँ कब्रिस्तान में, किस्सा दाढ़ी का, जूते का दर्द, सोने का अण्डा, मुहब्बतनामा, मेरी मौत के बाद, बोर न होने का दुख, बुद्धिजीवियों की चप्पल, बधाइयों के देश में, लाटरी का टिकट, व्यंग्य की जुगलबन्दी, सड़े हुए दाँत, क्षमा करना हम दुखी हैं, ज्ञान की दुकान, बुद्धिमानों से बचिए, मेरा मुख्य अतिथि हो जाना, नीर-क्षीर, ईमानदारी की गालियाँ, टूटी हुई टाँग पर चिंतन, खबरदार व्यंग्य, व्यंग्य प्रसंग, मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएँ, व्यंग्य चरितम्, मंत्री हो जाने का सपना तथा यत्र-तत्र

सम्प्रति— वकालत के साथ स्वतंत्र व्यंग्य लेखन

पता— रूबी-9 कालेज रोड,
महासमुन्द, म.प्र. -493445

SBN 8 7056-145-9